युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वे,
जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला ।
अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,
धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः ॥

स्व० दिवाकरजी म० (चौथमलजी म०) सा० के व्याख्यानो का प्रकाशन सुनकर प्रसन्नता हुई। दिवाकरजी म० बडे प्रभाव शाली व यशोनाम प्राप्त महापुरुष थे। जहां भी वे पधारते उनके यशोनाम के प्रभाव से अपार जन-मेदिनी उमड जाती थी। उनके उपदेशो का प्रभाव जैन तो क्या अजैन व मुस्लिम जनता पर भी गहरा था। ऐसे महापुरुषो के वचनामृतो का चयन भविष्य मे उपयोगी सिद्ध होगा। मै आशा रखता हूं कि इस प्रकाशन से जन मानस उज्ज्वल बनेगा यही एक मात्र भावना।

पण्डित रत्न वयोवृद्ध मन्त्री—

मुनि श्री पन्नालालजी महाराज

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ

जगत्‌वल्लभ जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित

मुनि श्री चौथमलजी महाराज

जन्म कार्तिक शुक्ला १३ सं० १९३४ रविवार

दीक्षा फाल्गुन शुक्ला ५ सं० १९५२ रविवार

स्वर्गवास मिगसर शुक्ला ९ सं० २००७ रविवार

:: आग की उपशान्ति ::

❀❀❀❀❀

स्तुति

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नाम कीर्त्तनजलं शमयत्यशेषम् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे महाप्रभो ! छठे आरे के पश्चात् खण्डप्रलय होता है । उस समय सात दिन तक अग्नि की वर्षा होती है । अत्यन्त उग्र आंधी चलती है । उस आंधी के कारण वह अग्नि और भी अधिक भयकर बन जाती है । तो प्रलयकाल की आँधी से उग्र बनी हुई अग्नि के

समान दावानल सुलग रहा हो। उसमे से ऊँची-ऊँची ज्वालाएँ निकल रही हो, चिनगारियाँ उड रही हो। ऐसा जान पडता हो कि यह आग बढती-बढती अखिल लोक को भस्म कर देगी ! ऐसी स्थिति मे हे भगवान् आदिनाथ ! आपका नामकीर्त्तन करने सामने से आती हुई वह आग तत्काल शान्त हो जाती है।

भाइयो ! आदिनाथ की स्तुति की आचार्य महाराज ने जो महिमा बतलाई है, उसे सुनकर आपको आश्चर्य हो सकता है। आप सोचते होगे कि भयानक दावानल भगवान् के नामकीर्त्तन से किस प्रकार शान्त हो जाता है ? परन्तु वास्तव मे इसमे आश्चर्यचकित होने की कोई बात नही है। इस महिमा पर अविश्वास करने का तो कोई कारण नही है। भगवत्-नाम का प्रभाव वाणी द्वारा अगोचर है, कल्पनाशक्ति से परे है और हमारी बुद्धि उसे पूरी तरह समझ नही सकती।

भगवान् के नाम के प्रभाव को समझने के लिए मौलिक तात्त्विक चिन्तन की आवश्यकता है। चित्त को विषय-वासनाओ से पृथक् करके प्रभुमय बनाने की आवश्यकता है चित्त जब प्रभुमय बन जाता है, भगवत्स्वरूप के साथ एकाकार हो जाता है, परमात्मा के रग मे पूरी तरह रग जाता है, तब दृष्टि मे एक ऐसी निर्मलता त्पन्न होती है जैसी पहले कभी नही हुई थी। उस निर्मल और आन्तरिक दृष्टि मे अपूर्व प्रतिभास होता है। उसी से तत्त्व का यथार्थ बोध होता है और परमात्मा की महिमा समझ मे आती है।

इस सबध मे एक बात और स्मरण रखनी चाहिए। यह जगत् जड और चेतन मय है यो तो ससार मे असख्य-अनन्त पदार्थ प्रतीति मे आते हैं, परन्तु उनमे मौलिक दो ही है। शेष सब का समावेश दो मे ही हो जाता है। यद्यपि दोनो जड और चेतन

की सत्ता स्वतत्र है, किसी की सत्ता किसी पर निर्भर नही है, तथापि दोनो ही एक दूसरे के प्रभाव से प्रभावित होते है। जड का चेतन पर प्रभाव पडता है और चेतन का जड पर।

साधारणतया जड का चेतना पर पडने वाला प्रभाव तो हमारी समझ मे जल्दी आ जाता है, परन्तु चेतना का जड पदार्थों पर जो प्रभाव पडता है, उसको समझने मे कठनाई होती है। फिर भी ध्यान दिया जाय तो उसे समझना असभव नही है। एक स्थूल उदाहरण लीजिए। मनुष्य जो भोजन करता है, उसमे नाना प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं पेट मे गया हुआ आहार आमाशय मे पहुँचता है। वहाँ उसके दो भाग हो जाते हैं—खलभाग और रसभाग। खलभाग वह भाग है जो बेकार होता है। वह शरीर मे से विभिन्न मार्गों द्वारा बाहर निकल जाता है। रसभाग से रक्त बनता है, रक्त से मास, मास से मेद, मेद से हड्डिया, हड्डियो से मज्जा और मज्जा से शुक्र धातु बनती है। यह सब उसी भोजन के रूपान्तर हैं, जिन्हे मनुष्य खाता है।

अगर किसी मुर्दे के मुँह मे भोजन डाल दिया जाय तो क्या होगा। पहले तो वह स्वत भीतर जायगा ही नही। अगर आप जबर्दस्ती करके किसी प्रकार ठूस देगे तो उसका खल-रस रूप परिणमन होना असभव है। न उसका रस बनेगा, न रक्त आदि धातुएँ ही बनेगी।

तो जीवित शरीर मे यह सब परिणाम न होता है और मृतक शरीर मे परिणमन नही होता। इसका निष्कर्ष यही निकला कि जीव ही भोजन को नाना अवस्थाओ मे परिणत करता है। यही जीव के द्वारा अजीव पर पडने वाला प्रभाव है। इस स्थूल उदाहरण से हम समझ सकते है कि जैसे अजीव अपने असर से जीव

को प्रभावित करता है उसी प्रकार जीव मे भी अपने असर से अजीव को प्रभावित करने का गुण है ।

रह गई प्रभावित करने की मात्रा, अर्थात् जीव किस हद तक जड को प्रभावित कर सकता है, यह बात जीव के सामर्थ्य पर निर्भर है । जीव की शक्तियो का जितना ही विकास होगा, उतनी ही अधिक प्रभावक शक्ति उसमे होगी ।

जिस मनुष्य की इच्छाशक्ति तीव्र है, जिसका सकल्पबल उग्र है, वह अधिक परिवर्त्तन कर सकता है । यहाँ तक कि अपनी सकल्प शक्ति के द्वारा भी वह जड पदार्थों को प्रभावित कर सकता है ।

भक्त जीव का सकल्पबल जब प्रबल होता है तो परमात्मा का नाम भी अधिक प्रभावशाली बन जाता है । उसके माहात्म्य से अग्नि का शान्त हो जाना कोई कठिन बात नही है ।

भगवान् के स्मरण से अग्नि का शान्त हो जाना कोई अनोखी बात नही है । भारतीय साहित्य मे ऐसी अनेक घटनाओ का उल्लेख है । सती सीता की कथा तो अत्यन्त प्रसिद्ध ही है । सीता ने परमात्मा का स्मरण करके आग के कुड मे प्रवेश किया । दर्शको के दिल दहल उठे । रामचन्द्र का हृदय बैठ गया ! धॉय धॉय करके आग जल रही थी । उसकी ज्वालाएँ आकाश को स्पर्श कर रही थी । आग की ओर देखना भी कठिन था । मगर सीता अनाकुल भाव से भगवान् का नामस्मरण करके उस धधकते कुड मे कूद पडी ।

सारा वायुमण्डल वदल गया । दर्शको के हृदय मे उल्लास की लहरे उठने लगी । लोग पुकार उठे—धन्य, सीते, धन्य हो ! पतिव्रता की देवी, शील की साकार प्रतिमा, तुम्हारी जय हो, जय हो !

अग्नि का वह भयानक कुड लहराता हुआ सरोवर वन गया। उसमे एक कमल और कमल पर सिंहासन बना दिखाई दिया। सती सीता उस सिंहासन पर गभीर और शान्त भाव से आसीन थी।

भाइयो! जरा विचार करो। यह परिवर्त्तन अकस्मात् कैसे हो गया? यह प्रभु के नामस्मरण का ही प्रभाव है।

अमरकुमार की कथा भी इसी प्रकार की है। अमरकुमार को सोने की मोहरो के लोभ मे आकर उसके ब्राह्मण माता पिता ने, वलिदान के निमित्त राजा को वेच दिया। वह भक्त बालक था। पुरोहितो ने अपने मत्र पढे और बालक को आग की लपलपाती ज्वालाओ मे झोंक दिया। बालक ने णमोकार मत्र का ध्यान किया और परमात्मा मे अपना मन स्थिर किया। परिणाम यह निकला कि उसका आग मे गिरना था कि उसी समय आग शान्त हो गई और ध्यानस्थ वालक सही-सलामत वाहर आ गया।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हमारे यहाँ शास्त्रो मे उल्लिखित है। इन सब के प्रकाश मे आचार्य के इस कथन को पढा जायगा तो स्पष्ट होगा कि उसमे लेश मात्र भी अत्युक्ति नही है।

जिनके नामकीर्त्तन से दावानल भी शान्त हो जाता है, ऐसे भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्ही को हमारा वार-वार नमस्कार है।

भाइयो! इस वाहर की अग्नि से भी अधिक जवर्दस्त अग्नि तृष्णा की है। स्थूल अग्नि से तो स्थूल पदार्थ ही जलते हैं, परन्तु तृष्णा की आग मे आत्मा भी जलती है। तृष्णा की आग व्यापक है। सारा ससार इस आग मे जल रहा है। भगवान् के नामकीर्त्तन से वह आग भी शान्त हो जाती है।

एक आदमी विचार करता है—मेरे पास एक हजार रुपया हो जाय तो मैं सुखी हो जाऊँ। लेकिन जब उसके पास हजार की सम्पत्ति हो जाती है तब उसकी तृष्णा और बढ जाती है। वह सोचने लगता है—मेरे पास दस हजार रुपये हो जाएँ तो मैं सन्तोष धारण कर लूँगा। लेकिन इतने की पूर्त्ति हो जाने पर भी उसकी इच्छा तृप्त नही होती। वह लखपति बनना चाहता है। भाग्ययोग से लखपति बन गया तो करोडपति बनने की अभिलाषा करने लगता है। इस प्रकार तृष्णा बढती ही जाती है। उसका अन्त कही नही दिखाई देता। कहा है—

असुरसुरवराणां यो न भोगेषु तृप्तः,
कथमपि मनुजानां तस्य भोगेषु तृप्तिः।
जलनिधिजलपाने यो न जातो वितृष्ण-
स्तृणशिखरगताम्भः पानतः किं स तृप्येत् ॥

अनादिकाल से नाना योनियो मे भ्रमण करता-करता यह जीव अनेक बार असुरेन्द्र भी हो चुका है और सुरेन्द्र भी हो चुका है। मगर उस पर्याय के भोग भोग चुकने पर भी तृप्त नही हुआ। जब देवलोक के दिव्य भोगोपभोग भी इसे तृप्ति न प्रदान कर सके तो मनुष्य के भोगो से उसे कैसे तृप्ति हो सकती है? देवलोक के भोगोपभोगो के सामने मनुष्य भव के भोग किस गणना मे है? । महासागर की तुलना मे एक बूद की जो स्थिति है, वही स्वर्ग के भोगोपभोगो के सामने मानवीय भोगो की है।

उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार कहते है—जो सागर का जल पी करके भी तृप्त नही हो सकता, वह तिनके की नौक पर ठहरे हुए पानी के एक बूद को पीकर क्या तृप्ति का अनुभव कर सकता है? कदापि नही।

तात्पर्य यह है कि तृष्णा की आग किसी भी स्थिति मे शान्त नही होती। जैसे जलती हुई आग को बुझाने के लिए ईंधन डालना विपरीत प्रयास है, ऐसा करने से आग बुझती नही, उलटी वढती है इसी प्रकार भोगोपभोगो को सामग्री जुटाने से तृष्णा मिटती नही, वढती है।

तृष्णा की आग मे मनुष्य के सभी सद्गुण जल कर भस्म हो जाते हैं। तृष्णा के वशीभूत होकर मनुष्य किसी भी पाप का आचरण करने से नही हिचकता। सच पूछिये तो तृष्णा सव पापो का मूल है। कहा है—

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा, नित्योद्वेगकरी स्मृता।
अधर्मबहुला चैव, घोरा पापानुवन्धिनी ॥

अर्थात्—यह तृष्णा अत्यन्त पापिनी है। रात-दिन मनुष्य के हृदय मे व्याकुलता उत्पन्न करती रहती है। अधर्म की जननी है, वडी ही भयानक और पाप कर्मों का वन्ध कराने वाली है।

हृदय मे जव तक तृष्णा विद्यमान रहती है, मनुष्य कभी निराकुलता, और शान्ति का अनुभव नही कर सकता। तृष्णा वडे से वडे सम्पत्तिशाली को भी दरिद्र के समान दुखी वनाती है। कहा भी है—

को वा दरिद्रो हि ? विशालतृष्णः।

प्रश्न किया गया—दुनिया मे दरिद्र किसे समझा जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि सम्पत्ति के अभाव से कोई दरिद्र नही होता, किन्तु जिसकी तृष्णा वढी हुई है, वही वास्तव मे दरिद्र है, भले ही वह करोडपति ही क्यो न हो। आशय यह है कि ... ने विपुल सम्पत्ति का स्वामी होकर भी जो मनुष्य तृष्णा

हो रहा है, लालच के फदे मे फँसा है और रात दिन सम्पदा के लिए दौडधूप और हाय-हाय किया करता है, उसकी सम्पत्ति किसी प्रयोजन की नही। उसमे और दरिद्र मे कुछ भी अतर नही है। इसके विरुद्ध, जिसने तृष्णा पर विजय प्राप्त कर ली है और जो सन्तोष का अमृत पीकर नित्य तृप्त रहते है, वे निर्धन होने पर भी सुखी हैं, समृद्ध है। वे किसी के गुलाम नही, दुनिया ही उनकी गुलाम है। कहा है—

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी, तेषां दासायते लोकः॥

अर्थात्—जो तृष्णा के दास है, वे सारे ससार के दास हैं और आशा को जिन्होने दासी बना लिया है, उन्होने सारे ससार को अपना दास बना लिया है।

अरे मानव! तू अखिल लोक के वैभव को अपनी तिजोरी मे कैद करके क्यो रखना चाहता है? वह तेरे क्या काम आएगा? झे पेट भरने के लिए चार रोटियाँ और सोने-बैठने को चार हाथ मि ही तो चाहिए? इससे अधिक का क्या करेगा? साथ तो छ ले नही जा सकता। फिर क्यो दिन-रात आकुल-व्याकुल बना रहता है? तू शान्तचित्त होकर विचार कर कि तेरे पास जो साधनसामग्री है, वह तेरे लिए पर्याप्त है अथवा नही? अगर पर्याप्त है तो सन्तोष धारण कर। सन्तोष ही सबसे बडा सुख है।

सन्तोषमूलं हि सुखं, दुःखमूलं विपर्ययः।

सुख का मूल सन्तोष है और दु ख का मूल असन्तोष है।

तू चाहता है मैं अधिक सम्पत्तिशाली होकर सुखी बन

जाऊँगा। परन्तु यह तो देख ले कि जिनके पास अधिक सम्पत्ति है, वे क्या सुखी है ? नही। वे भी तो सुखी नही है। वे भी तेरी ही तरह तृष्णा की आग मे जल रहे हैं। ऐसी अवस्था मे तू कैसे सुखी हो जायगा ? सुख के असली साधन तो सन्तोष ही है। अतएव हे भव्य ! अगर तू वास्तव मे ही सुखी बनना चाहता है तो सन्तोष धारण कर।

भाइयो ! जैसे आग को शान्त करने के लिये पानी अपेक्षित है, उसी प्रकार तृष्णा की आग को बुझाने के लिए सन्तोष धारण करने की आवश्यकता है। भगवान् ने फर्माया है कि परिग्रह को कम करोगे और अपनी इच्छा पर नियत्रण कराेगे तभी यह आग शान्त हो सकती है। इच्छाओ की पूर्ति करने का प्रयास करोगे तो यह आग शान्त होने के बदले बढती ही चली जायगी।

तृष्णा की अग्नि को शान्त करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। वास्तविक स्थिति को समझे बिना कोई मनुष्य तृष्णा से मुक्त नही हो पाता। ज्ञान आत्मा का धर्म है। आत्मा को ही ज्ञान होता है। श्रीठाणागसूत्र मे भगवान् ने आत्मा को सामान्य की अपेक्षा एक और विशेष की अपेक्षा अनेक कहा है। मगर यह न समझिए कि ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही सिद्धि प्राप्त हो जायगी। नही, प्राप्त ज्ञान के अनुसार क्रिया करने से सिद्धिलाभ होता है। कहा है —

दोहि ठाणेहि सपन्ने अणगारे अणाइय अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकतारं वीइवएज्जा।

तंजहा विज्जाए चेव, चरणेण चेव।

—श्रीठाणांगसूत्र, २ ठाणा.

भगवान् फर्माते हैं-हे गौतम ! दो स्थानो (गुणो) से सम्पन्न

अनगार अनादि, अनन्त और दीर्घ मार्ग वाले, चतुर्गति रूप ससार अटवी को पार कर सकता है-ज्ञान से और चारित्र से

भगवान् ने दो प्रकार का धर्म फरमाया है—अगारि धर्म और अनगार धर्म। जिसके घर है उसे अगारी अथवा गृहस्थ कहते हैं और जिसके घर नही है, जो घर का त्याग कर चुके हैं, वे अनगार कहलाते हैं। गृहस्थ का धर्म अलग है और अनगार अर्थात् साधु का धर्म अलग है। दोनो के धर्म मे जो भिन्नता है, वह मात्र की भिन्नता है। असल मे तो जो अहिंसा और सत्य आदि साधु के लिये धर्म हैं, वही गृहस्थ के लिए भी है, परन्तु दोनो की कोटियाँ भिन्न-भिन्न है। साधु पूर्ण रूप से जिस धर्म का पालन करते हैं, उसी को गृहस्थ अपूर्ण रूप से, अपनी शक्ति और सुविधा के अनुसार पालते हैं। गृहस्थ जितने अश मे धर्म का पालन करते है, उतना अश ही धर्म है।

जिसके घर है, वह क्या करता है? जो वस्तु मिल जाय उसी को घर मे लाकर रख लेता है। छाने मिल गये तो छाने ही घर मे रख लिये और लकडी, पत्थर, लोहा, गोबर आदि मिल गया तो वह उठा लाया। वह जानता है कि किसी वक्त यह पत्थर भी टेका लेने के काम आ जायगा। यह लोढी किसी समय मसाला पीसने के काम आ जाएगी। यहाँ तक कि वह फटे-पुराने कपडे भी इकट्ठा करने से नही चूकता। रास्ते मे किसी की रकम गिर जाय तो उसे भी उठा लेता है। वह ऐसा क्यो करता है? क्यो कि उसके घर हो गया है। उसने अपनी तृष्णा को जीत नही पाया है। अत एव प्रत्येक वस्तु उठा कर वह घर मे ले जाता है।

इसके विपरीत, जो अनगार है, जिनके घर नही है, वे यह सोचते है कि हम ले जाकर कहाँ रक्खेगे? प्रथम तो उन्होने तृष्णा

को जीत लिया है और फिर इसी कारण वे वस्तुओ के सग्रह से विमुख हो गये है। ऐसे पूरे त्यागी अनगार है।

अनगार यो तो समस्त पदार्थों के त्यागी हैं, किन्तु धर्म स्थानक मे भी ममत्व कर लेता है तो वह भी एक प्रकार का घर ही है। घर हो जाने पर उसमे शास्त्रो, पात्रो आदि का सग्रह शुरु हो जाता है। कहा है —

आछा पातरा वांध धरे, वली टूटा फूटा में गोचरी करे।

वाध बूंध कर जावे बिहारो, यो साधतणो नही आचारो ।।

जो साधु अच्छे-अच्छे और नये-नये पात्र तो सँभाल कर रख लेता है और टूटे-फूटे पात्रो मे गोचरी करता है समझ लीजिए। कि उसकी ममता नष्ट नही हुई है—उसमे सग्रहवुद्धि वनी हुई है। वह अपने स्थानक मे पाने, पोथी, शास्त्र और पात्र एव वस्त्र इकट्ठे करता है। मरने के वाद कपडो के थान और वढिया रगे हुए पात्र निकलते हैं। यह साधुता की मर्यादा के विरुद्ध है। मगर जहाँ मकान खडा हो जाता है, वहाँ अनेक वखेडे खडे हो जाते है।

एक आर्याजी ने हमे सूयगडाग का वढिया लिखा हुआ पुट्ठा दिया। कहा—इसे आप रखिए। लेकिन मैंने सोचा—यह मेरे क्या काम आएगा? उलटा वोझ उठाना पडेगा। तात्पर्य यह है कि जहाँ घर है-फिर चाहे वह किसी भी नाम से क्यो न हो वहाँ झगडे खडे हो ही जाते हैं। मगर मुनिराजो को इन सव वातो से वचना चाहिए। जव मौजूदा घर को स्वेच्छापूर्वक त्याग दिया, सम्पत्ति को ठुकरा कर साधुता स्वीकार कर ली और सिर मुडा लिया तो फिर वस्त्रो और पात्रो पर ममता कैसी? अगर ममता वनी है, लालसा नही मिटी है, अन्त करण मे आसक्ति जैसी की तैसी है, तो फिर वेषपरिवर्त्तन मात्र से क्या लाभ होगा?

वस्तुत· राग द्वेष का परित्याग करके आत्मा के स्वरूप मे रमण करना चारित्र कहलाता है। चारित्र, सम्यक् चारित्र तभी होता है जब वह सम्यग्ज्ञानपूर्वक हो अत ज्ञान और चारित्र दोनो की अनिवार्य आवश्यकता है। इनमे से किसी भी एक के अभाव मे सिद्धि प्राप्त नही हो सकती। इसी कारण शास्त्र मे कहा है कि विद्या और चारित्र से सम्पन्न अनगार ही ससार-अटवी को पार करते है। ससार–अटवी बहुत विशाल है। नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्य-गति और देवगति रूप चार गतियाँ उसका स्वरूप है।

कोई मनुष्य गहन वन मे फँस जाय तो उसके बाहर निकलने का उपाय क्या है? पहले तो उसे बाहर निकलने का सही मार्ग ज्ञात होना चाहिए। मार्ग का ज्ञान न होगा तो वह भटक जायगा, उलटी दिशा मे चला जायगा और सभव है कि वह बाहर निकलने के बदले और अधिक उलझ जाय। पर ठीक रास्ता ज्ञात होने से ही पार नही हो सकेगा। उसे अपने ज्ञान के अनुसार गतिक्रिया भी करनी पडेगी। जो जानता सब कुछ है, किन्तु करता कुछ भी ही है वह कैसे सफलता पा सकता है? ज्ञान के बिना क्रिया करना और ज्ञान होने पर भी क्रिया न करना–दोनो ही सफलता प्रदान करने वाले नही है।

'विद्या' शब्द 'विद् ज्ञाने' धातु से बना है। उसका अर्थ होता है–जानना। उदाहरणार्थ–आपने ज्ञान से जान लिया कि हिंसा करना दु खदायी है। किन्तु इस जानकारी को अगर आप काम मे नही लाते तो यह व्यर्थ ही है। इसी प्रकार आप यह तो जानते हैं कि झूठ बोलना बुरा है, किन्तु झूठ बोलते रहते है तो इस जानने को वास्तविक अर्थ मे जानना नही कह सकते। सच्चा जानना तो वही जानना है जिसके अनुसार क्रिया भी की जाय।

अगर आपको यह ज्ञान हो जाय कि यहा साँप है और वह जह-रीला है तो क्या आप उसके निकट जाएँगे ? या उससे दूर ही भागेंगे ? इसी प्रकार अगर आपने पाप को अकल्याणकारी समझ लिया है तो आप पाप के पास कैसे फटकेंगे ? आपको मालूम हो गया है कि चोरी करने से इहलोक और परलोक दोनो बिगडते है तो उसे छोड ही देना चाहिए। चोरी को छोड दोगे तो जेलखाने की हवा नही खानी पडेगी। आप जानते है कि ब्लेक मार्केटिंग करना बुरा है, लेकिन उसे त्यागते नही तो फिर वह जानना किस काम का ? जान लिया कि व्यभिचार करना घोर अनर्थ का कारण है, फिर भी उसका त्याग न किया तो जानने का सार क्या निकला ? परिग्रह से आकुलता मे वृद्धि होती है, आत्मा मे मली-नता उत्पन्न होती है और अन्त मे उसे छोडना ही पडता है, यह जानकर भी जिसने परिग्रह का त्याग न किया, उसके ज्ञान की कोई कीमत नही है। इसी अभिप्राय से कहा गया है :—

ज्ञानस्य फलं विरतिः।

अर्थात्—ज्ञान का फल चारित्र है। जिस ज्ञान ने त्याग-चारित्र रूप फल को उत्पन्न न किया, वह निष्फल है। उसका होना और न होना समान है।

अभिप्राय यह है कि जब वास्तविक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब जीव मे त्याग की भावना अवश्य उत्पन्न होती है। वह भावना जब चरितार्थ होती है अर्थात् क्रियात्मक रूप मे अभिव्यक्त होती है तभी मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जानते हो कि किवाड खुले रहेंगे तो अवश्य चोर घुस जाएँगे, फिर भी क्या किवाड बन्द नही करेगे ? अरे तू कितना

भी होशियार होकर बैठेगा, लेकिन जरा भी नजर इधर-उधर गई कि चीज गायब हो जायगी ? देखो, रेल मे कितनी सावधानी रखते हो तो भी निगाह चूकी कि बटुआ गायब हो जाता है। मगर जानबूझ कर भी मनुष्य गफलत मे रहते है, तभी तो मनुष्य-जन्म को व्यर्थ गँवाते है। दुर्लभ मनुष्यदेह को निष्फल बना लेते है। कहा है —

जानूं जानूं कर रह्या, चोर ले गया माल।

एक सेठ और सेठानी घर मे सो रहे थे। इतने मे चोर आये और दीवाल मे छेद करने लगे। सेठानी ने सेठ से कहा-मालूम है चोर आया है।

सेठ—हाँ, मुझे पता है।

इतने मे चोर छेद करके भीतर घुस आये और अलमारी का ताला तोडकर जेवर का डिब्बा निकालने लगे।

सेठानी ने घबराकर कहा—देखो, चोर जेवर निकाल रहे हैं।

सेठ—चुप रह, मैं सब जानता हू।

चोर माल लेकर जाने लगे तो सेठानी से न रहा गया। उसने कहा–अजी, वह तो माल ले जा रहा है।

सेठ—मैं क्या देखता नही हूँ ? मुझे सब मालूम है।
सेठजी जानते रहे और चोर माल उठा ले गये। तब सेठानी ने कहा-तुम्हारा जानना किस काम का ? तुम्हारे जानने पर धूल पडे !

एक वैद्यराज ने रोगी से कहा–देखो, इस दवाई पर खटाई मत खाना। रोगी ने कहा–जी हाँ, मुझे मालूम है कि इस दवा पर

खटाई नही खाई जाती। लेकिन घर जाकर वह रायते के कटोरे के कटोरे गटक जाता है। कहो भाइयो ! इस रोगी के जानने की क्या सार्थकता है ?

मनुष्य कहता है—मैं धर्म को जानता हूँ, फिर भी कभी सामायिक नही करता, पौषध नही करता, शीलव्रत का पालन नही करता दान नही देता, रात्रिभोजन का त्याग नही करता, और कह रहा है कि मैं तो सब कुछ जानता हू ! जैसे वह सेठानी सेठ की जानकारी पर धूल डालती है, उसी प्रकार ऐसे मनुष्यो की जानकारी पर धूल पडी समझो ! जो जान कर भी क्रिया नही करता, वह जानना बेकार सिद्ध होता है। सब जानते है कि दही मे मक्खन है, लेकिन जब तक बिलौने वगैरह की क्रिया नही की जायगी, तब तक उसमे से मक्खन निकलेगा कैसे ? कहा है —

कोरी कोरी मटकी मे दही रे जमायो,
माखरण नहीं निकसे, जिया ! बिन धुमके से।
क्यो भटके रे जिया ! तेरा प्रभु तूँ ही है ॥१॥

हे मनुष्य ! कोरी मटकी मे दही तो जमा दिया और यह भी मालूम हो गया कि दही मे से मक्खन निकलता है, लेकिन जब तक उसे दोनो हाथो से बिलोयेगा नही, तब तक उसमे से मक्खन निकल सकता है ? कदापि नही। मक्खन तो पुरुषार्थ करने से ही निकलेगा। और भी —

जैसे घुंघरू पहने पायन मे,
राग नहीं निकसे जिया बिना ठुमके से ॥ २ ॥

दोनो पावो मे घुघरू बांध लिये और बैठ गया। अब

विचार करता है कि इसमे से राग क्यो नही निकलता ? मगर अरे मूर्ख ! जब तक खडा होकर तू कूदेगा फाँदेगा नही, तब तक राग कैसे निकलेगा ?

जैसे रे सांठा लियो हाथन में ,
रस नहीं निकसे जिया ! बिना चुसके से ।। ३ ।।

हाथ मे साठा तो ले लिया, मगर उसमे से रस बिना चूसे तो नही निकल सकता ! चूसने से ही रस निकलता है । इसी प्रकार याद रक्खो, आत्मा को मुक्ति तो प्राप्त हो सकती है, किन्तु करनी के बिना मोक्ष नही मिल सकती ।

मिट्टी मे धातु है । उसमे से सोना, लोहा, पीतल वगैरह निकलता है । किन्तु अपने आप तो कुछ निकल नही सकता ! मिह-नत करनी होगी । क्रिया करने से साधु निकलेगी ।

निठल्ले बैठने से काम नही चलता भाई ! ज्ञानपूर्वक क्रिया ने से ही काम बनता है । जिन महापुरुषो ने छह खड का राज्य ग कर साधुपन लिया और चारित्र का पालन किया, आत्मा का न किया, उन्ही का प्रयोजन सिद्ध हुआ । जिन्होने तपस्या की ग मे अपने शरीर को झौक दिया, मुक्त हस्त से दान दिया और मभाव का गहरा अभ्यास किया तथा दूसरी क्रियाएँ की, उन्ही का नाम आज दुनिया गा रही है ।

किसान खेत को जोत कर तैयार करेगा और उचित समय पर गेहूँ बोएगा, तभी उसे गाड़ियाँ भर कर अनाज मिलेगा और उसके बाल बच्चे साल भर पलेगे ।

इस प्रकार थोथी बाते करके सफलता चाहने वाले पागल

हैं । जो जानना जानना कहते हैं, लेकिन करनी नही करते, समझना चाहिए कि अभी तक उन्हे कोई सद्गुरु नही मिले हैं । कहा है—

हाँ मुझे सद्गुरु समझायो, वक्त अमोलक तू ने पायो ।
वोधि वीज कर दान मेरो मिथ्यात्व हटायो रे ! ॥टेर॥

वलिहारी है उन गुरु महाराज को जिन्होने नि स्वार्थ वुद्धि ने ज्ञान प्रदान किया है कि देखो भाई यह अनमोल अवसर प्राप्त हुआ है । जिन्होने सम्यक्त्व रूपी रत्न का दान दिया है, जिससे जन्म-मरण की यातनाओ का अन्त आ जाएगा । सद्गुरु की महिमा का वखान नही हो सकता । उनका उपकार असीम है । सद्गुरु के प्रसाद के विना न तो कोई तिरा है और न तिरेगा ही ।

कहा जा सकता है कि तीर्थङ्कर किसी को गुरु नही वनाते, फिर भी वे तिर जाते है तो दूसरे क्यो नही तिर सकते ? मगर ऐसा समझना भ्रमपूर्ण है । तीर्थङ्कर ने इस जन्म मे गुरु नही वनाया तो क्या हुआ ? पूर्वभव मे वे गुरु वना कर आये हैं और उन गुरु की कृपा से इस भव मे उन्होने उच्च कोटि की आत्मिक विशुद्धि प्राप्त की है । वे अपूर्व ज्ञानदीपक लेकर आये हैं । उनका समकित-रत्न भी अपूर्व आभा से दीप्त होता है । उन्होने सद्गुरु के संयोग से दिव्य दीपक प्राप्त किया । काल करके स्वर्ग मे देवता वने । वहाँ भी वह दीपक जगमगाता रहा है । श्रेणिक जैसी कोई नरक मे गये तो वहा भी वह दीपक जगमगा रहा है । यह सव सद्गुरु का ही प्रताप है । इसीलिए कहा है—

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अर्थात्—अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे जीवो को ज्ञान रूपी

अजन की सलाई आज कर सूझता बनाने वाले श्रीगुरु महाराज को नमस्कार हो और भी कहा है:—

बिना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो,
जानाति तत्त्वं न विचक्षणोऽपि ।
आकर्णदीर्घायितलोचनोऽपि,
दीपं बिना पश्यति नान्धकारे ।।

कोई मनुष्य कितना ही कुशल क्यो न हो, जब तक वह गुणो के सागर गुरु महाराज की शरण ग्रहण नही करता, तब तक उसे तत्त्व का ज्ञान नही हो सकता । जब चारो ओर घोर अधकार छाया हो तब मनुष्य दीपक की सहायता लिये बिना नही देख सकता, चाहे उसके नेत्र कितने ही बडे क्यो न हो ! कानो तक लम्बे नेत्र होने पर भी उसे दीपक का आश्रय लेना ही पडेगा । इसी प्रकार बडे से बडे बुद्धिमान् को भी गुरु की शरण लेनी ही पडेगी ।

वैष्णव ग्रन्थो मे कहा है:—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही महादेव है और . रु ही साक्षात् परम ब्रह्म हैं । उन श्रीगुरु को नमस्कार हो ।

भाइयो ! जिस गुरु-पद को इतना महान् गौरव दिया गया है, जिसे देव कोटि मे रख दिया गया है, वह गुरु कैसा होना चाहिए ? कहा है—

महाव्रतधरा धीरा, भैक्षमात्रोपजीविनः ।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः ।।

अर्थात्—गुरु का सब से पहला लक्षण यह है कि वह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप महाव्रतो का अस्खलित रूप मे पालन करता हो। फिर कठिन से कठिन कष्टपरीषह और उपसर्ग आने पर भी अपनी मर्यादाओ का उल्लघन न करे। सब प्रकार के सकटो को सहन करता हुआ भी अपने सयम पर दृढ रहे। अपने जीवन-निर्वाह के लिए दुनियादारी की खटपट मे न पडे, बल्कि भिक्षा से अपना निर्वाह करे। सदैव राग द्वेष से मुक्त रहकर समभाव मे स्थिर रहे। जगत् के अज्ञान एव भ्रान्त जीवो को धर्मोपदेश देकर सन्मार्ग बतलाता हो। वही सच्चे गुरुपद का अधिकारी है।

जिसमे इस प्रकार की विशेषताएँ नही है, जो कामनाओ के क्रीत दास है, आहार-विहार मे मर्यादाशील नही है, लोभी लालची है, ब्रह्मचर्य का पालन नही करते, केवल साधु का वेष बनाकर जगत् को ठगते फिरते है, वे गुरु नही हैं। यथा —

सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः।
अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न ते ॥

जिन्होने अपने अन्त.करण पर लेश मात्र भी नियत्रण नही किया है, जो अभिलाषाओ की आग मे झुलस रहे है, जिनके खान-पान का कोई ठिकाना नही है, निमत्रण पाकर भोजन करने जाते है, अपने निमित्त से बना भोजन करने से परहेज नही करते, जो परिग्रह के धारक है, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन नही करते और जनसमूह को मिथ्या उपदेश देकर गलत राह बतलाते है, इस प्रकार स्वय नष्ट हुए और दूसरो का भी नाश करते है, वे गुरु कहलाने योग्य नही है।

सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि —

गुरु किया जाय ऐसे जन को, जो गुरुता का अधिकारी हो।

तात्पर्य यह है कि गुरु वही होता है जो उच्च कोटि के ज्ञान और उच्चकोटि के सयम से सम्पन्न हो। शास्त्र मे ज्ञान के साथ चारित्र को भी बहुत महत्त्व दिया गया है।

कोई मुनि आचाराग, सूयगडाग, ठाणाग आदि सूत्रो का ज्ञाता हो, किन्तु कालान्तर मे स्मृतिदोप से इनमे से एकाध सूत्र को भूल जाय तो उसे दण्ड नही आता, किन्तु यदि प्रतिलेखन करना भूल जाय या उसमे गलती करे तो अवश्य ही दड का पात्र होता है। साधु कदाचित ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हो जाय तो वह साधुता से खारिज हो जाता है। उसे नये सिर से साधु बनना पडता है। साधु के लिए शील पालने पर इतना जोर दिया गया है कि फाँसी लगा कर मर जाना श्रेयस्कर है, किन्तु शीलधर्म को भग करना उचित नही है।

भगवान् महावीर के मार्ग मे चारित्र पर इतना अधिक जोर दिया गया है। जो ठीक तरह भगवान् द्वारा उपदिष्ट आचार का पालन करता है, वही वास्तव मे सद्गुरु है।

इससे स्पष्ट हो गया कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए ज्ञान और चारित्र दोनो आवश्यक है। कहा भी है :—

ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः।

न अकेले ज्ञान से मोक्ष होता है और न अकेली क्रिया से। जब दोनो का समन्वय होता है और दोनो पूर्णता पर पहुँचते हैं, तभी आत्मा को मोक्ष मिलता है। क्योकि :—

एक पर से पक्षी नही उड़ता ,
एक चक्र से रथ नहीं चलता ।
अंधा-पंगु मिले स्थान इच्छित तब पायोरे ।। १ ।।

एक पख से पक्षी कदापि नही उड सकता और न एक पहिये मे रथ ही चल सकता है। इसी प्रकार अकेले ज्ञान या अकेले चारित्र से मोक्ष नही हो सकता। अकेला चारित्र अधा है और अकेला ज्ञान पगु है। अधा और पगु दोनो मिल कर इष्ट स्थान पर पहुँच सकते है, अकेले-अकेले नही। ज्ञान और चारित्र के दोनो पखो का सहारा लेकर ही जीव ऊर्ध्वगति करके मुक्ति के लोक मे पहुँचता है।

भाइयो! आप लोग कौन है? आप जन हैं और जन से पहले दो अक्षर जोड दिये जाएँ तो 'महाजन' हो जाते हैं। जन का अर्थ होता है मनुष्य और महाजन का अर्थ हो गया—बडे मनुष्य।

जब कोई भी जन महाजन कहलाता है तो उसमे साधारण जन की अपेक्षा कोई न कोई विशेषता होनी चाहिए। वह विशेषता रूप-रग या आकृति मे नही होती, किन्तु कर्त्तव्य मे होती है। जिसके कर्त्तव्य महान् हैं, जिसके जीवन मे चारित्र की विशेषता है, वही महाजन पद का अधिकारी है।

क्या महाजन वह है जो दूसरो को ठगे? विश्वासघात और बेईमानी करे? नही। मगर आज के रगढग तो ऐसे ही दिखाई देते हैं।

भाइयो! पहले लोग आपको कहते थे—सेठ। और आज कहते है हेठा! क्या आप सेठ और हेठा का अन्तर समझते है?

अगर समझते हो तो सेठा पदवी को वास्तविक बनाने का प्रयत्न करो। 'सेठ' शब्द 'श्रेष्ठ' का अपभ्रंश है और 'हेठ' शब्द नीच का वाचक है। आप श्रेष्ठ व्यवहार करके श्रेष्ठ बनने का प्रयास कीजिए और आपकी श्रेष्ठता को गिराने वाली जो बुराईयाँ है, उन्हे त्याग दीजिए। कहा है —

जजा के जतना में करयो श्री जिनवर ,
जैन बिना फैन हिंसा धर्म न होय रे।
जैन में जनम लियो महाजन नाम दियो ,
नीच नीच काम कियो गयो कुल खोय रे।
जयणा कीधी सुसलिया की जयणा कीधी परेवा की ,
जयणा कीधी धर्मरुचि नेमि जिन जोय रे।
रिख लालचन्द कहे जयणा करे धन सोय ,
जयणा बिना जग सहु रीतो गयो रोय रे ।।

देखो, भगवन् ने यतना मे धर्म बतलाया है। जीवो की रक्षा करना, पानी बिना छाना नही पीना, व्यापार मे बेईमानी, और ठगाई न करना, उसमे भी जीवहिंसा से बचना, यह सब यतना के रूप है।

कई लोग ऊँचे भाव आने की लालच मे माल को इकट्ठा कर रखते है। धान्य को कोठो मे भर लेते है, फिर भले ही वह धान्य सड जाय, गल जाय और घुन कर खाने योग्य भी न रह जाय। ऐ । करने से अन्न खराब होता है और जीवो की हिंसा होती है। धर्म का ज्ञाता व्यापार करेगा तो ऐसी बातो का अवश्य ही ध्यान रक्खेगा। वह लोभ—लालच के चक्कर मे पड कर धर्म से विमुख नही होगा। विवेकवान् गृहस्थ अर्थ—पुरुषार्थ की साधना

करता है, मगर धर्म को भग करके नही। वह धर्म के साथ ही अर्थ का उपार्जन करता है।

जैन कुल मे जन्म लिया, महाजन की पदवी पाई और काम देखो तो मच्छी पकडने के काटो का, चूहे पकडने के पीजरो का या कादा और लहसुन वेचने का व्यापार करते है! ऐसे लोगो को महाजन कहा जाय या महाजम ? देखो, खरगोश के प्राणो की रक्षा करने वाला हाथी अपनी आयु पूर्ण करके राजा श्रेणिक के घर राजकुमार वना और उसने अन्त मे सयम ग्रहण करके अपनी आत्मा का परम कल्याण किया।

धर्मरुचि अनगार ने कीडियो की रक्षा की तो सर्वार्थसिद्ध विमान मे गये। वाईसवे तीर्थकर अरिष्टनेमि ने पशुओ पर दया की, उनकी रक्षा की तो राजीमती का परित्याग करके गिरनार पर्वत पर पहुँचे और मुक्त हुए।

इस प्रकार जिन-जिन महापुरुषो ने ज्ञान् और चारित्र का आश्रय लिया, वे सव कल्याण के भाजन वने। कहा भी है —

संजोगसिद्धि सफलं वयन्ति, न हु एगचक्केण रह पयाइ।
अधो य पंगू य वणे समिच्चा, तेसिं पहुत्ता नगरे पविट्ठा॥

यहाँ वतलाया गया है कि ज्ञान और चारित्र के सयोग से ही सिद्धि प्राप्त होती है। वन मे दावानल सुलग रहा है। एक अधा और एक लँगडा उसमे फँस गया है। दोनो दावानल से बच कर सकुशल अपने घर पहुचने मे समर्थ नही हैं। अधा देखने मे असमर्थ है। वह दावानल से बचने के प्रयास मे दावानल की ओर ही जाकर भस्म हो जायगा। पगु बचने का मार्ग जानता है परन्तु चल नही सकता यह देखता देखता भस्म हो जायगा।

लेकिन दोनो ने मिलकर विचार किया—पगु, अधे के कधे पर बैठ जाय और अधे को रास्ता बतलाता जाय, अधा उसे लेकर चले तो दोनो बच सकते है। इस प्रकार सयुक्त होकर क्रिया करने से दोनो बच गये।

तो जिसे ज्ञान नही है, जिसने श्रुत का अभ्यास नही किया है, तत्त्व के स्वरूप को नही जाना है, वह अधे के समान है। और जिसे ज्ञान तो है किन्तु जो चारित्र से हीन है, वह पगु के समान है। जब तक ज्ञान और चारित्र न्यारे-न्यारे रहेगे, तब तक वे आत्मा को सिद्धि प्रदान करने मे असमर्थ हैं। हाँ, जब दोनो का सयोग होगा, तब सिद्धि अवश्य होगी। कहा है :—

कर्मोदय शुभ भावना भावे, हर्ष विषाद जरा नहीं लावे।
नया बंध नहीं होय, अन्त कर्मों को आवे रे ॥

भाइयो ! जिसने जैसे कर्मो का बन्ध किया है, अवाधा काल समाप्त होने पर वह परिपाक मे आते हैं। यदि अशुभ कर्मो का उपार्जन किया है तो उनका फल अशुभ होगा। बुखार चढ आना, ठोकर लग जाना या और कोई अप्रिय घटना घटित हो जाना अशुभ कर्मों का फल है। अकस्मात् धन की प्राप्ति हो जाना, मनचाहे पदार्थो का सयोग मिल जाना, सुशील सन्तान का होना, आदि शुभ कर्मो फल है। चाहे शुभ कर्मो का उदय हो, चाहे अशुभ कर्मो का, दोनो आपके ही बाँधे हुए है। आपके द्वारा बाँधे कर्म ही आपको फल देते हैं। इन कर्मो का फल भोगते समय को कैसी भावना रखनी चाहिए ? ज्ञानी पुरुषो का आदेश क शुभाशुभ कर्मो का फल भोगते समय समभाव रखना हिए। राग और द्वेष से बचना चाहिए। दुःख आ जाय तो चार करे कि यह कर्म तेरे ही बाँधे हुए हैं ! तुने ही दुःख का

बीज वोया है। अब उसके फल मिलने पर क्यो व्याकुल होता है ? क्यो विषमभाव धारण करता है ? तू विषमभाव धारण करेगा, रोयेगा, हाय-हाय करेगा, तो भी दुःखो से वच नही सकेगा। हाँ, फिर नये सिरे से अशुभ कर्मो का वध कर लेगा।

इसी प्रकार शुभ कर्मो का उदय आने पर फूलना नही चाहिए। राग-भाव नही धारण करना चाहिए। सोचना चाहिए कि कर्मो का यह उदय सदा रहने वाला नही है।

इस प्रकार कर्मोदय के समय समभाव रखने से नवीन कर्मो का वध नही होता और पुराने कर्म धीरे-धीरे क्षय हो जाते हैं। कर्मो के क्षय से केवलज्ञान की प्राप्ति होकर अन्त मे मोक्ष प्राप्त होता है।

कर्मो का उदय वडा ही विचित्र और वलवान होता है। शुभ कर्म का उदय आया तो गजसुकुमार श्रीकृष्णजी के भाई वने और जव अशुभ कर्मो की प्रवलता हुई तो आग के दहकते अगार उनके मस्तक पर रक्खे गये। किन्तु दोनो ही अवस्थाओ मे उन्होने अपनी अन्तरात्मा को विषमभाव से अभिभूत नही होने दिया। परिणाम यह आया कि वे अनन्त अव्यावाध सुख के अधिकारी वने।

होनी को कोई मुख्य बतावे, पुरुषार्थ क्यो करे करावे।
कहे और करे और व्यर्थ ही द्वन्द्व मचायो रे ॥

कई लोग यही समझ कर वैठे है कि जो होना होगा सो हो होगा। हमारे किये कुछ नही हो सकता। ऐसे लोग भोजन क्यो करते है ? कौर मुँह मे क्यो डालते हैं ? गले मे क्यो उतारते है ?

अगर भूख मिटनी होगी तो आप ही मिट जाएगी। रोटी बनाना खाना आदि तो हे चेतन! बिना पुरुषार्थ के नही होता। फिर होनहार ही कैसे रही?

अगर होनी होगी सो ही होगी तो यह बाजार क्यो खुलते है? शाम को घर आते समय दुकान मे ताले क्यो डाले जाते है? गाय-भैस को खूटे से बाँधने की भी क्या आवश्यकता है? होना होगा सो हो जायगा!

वास्तव मे ऐसे लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ है। उनकी कथनी और करनी मे बहुत अन्तर है। बात तो मानो चौदहवे गुणस्थान की करते है और काम पहले गुणस्थान के करते है। ये लोक गलत राह पर चल रहे हैं। वे केवल वाचिक द्वन्द्व कर रहे हैं।

क्रिया बिन कर्म नहीं बंधता, बोये बिन खेत नहीं पकता।
चौथमल कहे जिन आगम में, यों फरमायो रे ।।

देखो भाई, क्रिया के बिना कर्म का बध नही होता। मन, वचन या काय का व्यापार रूप क्रिया होने पर ही कर्मबध होता है। इस क्रिया के विना भी कर्म का बन्ध होने लगे तो मोक्ष मे विराजमान सिद्ध भगवान् को भी कर्म का बध हो! लेकिन खेत मे वीज डाला जायगा तभी फसल तैयार होगी। बिना बोये जो फसल की आशा करते है, वे आसमान के फूल तोडने की आशा करते है। अतएव भवितव्य के भरोसे मत रहो। ज्ञानपूर्वक क्रिया करो। तभी सिद्धि प्राप्त होगी।

भाइयो! जो भव्य जीव सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से सम्पन्न होकर परम प्रभु आदिनाथ के पावन नाम का सकीर्त्तन करते

है और उन्ही को अपना सर्वस्व समर्पित कर देते है, वे तृष्णा की आग को शान्त कर देते है और परम शीतीभूत होकर अखण्ड आनन्द का अनुभव करते है। सारी प्रकृति उनकी दासी बन जाती है। अतएव आप अपना मगल चाहते हैं तो भगवान् की शरण गहो। आनन्द ही आनन्द होगा।

७-११-४७]

:: पुण्यातमा की पहचान ::

❀❀❀❀❀

स्तुति

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानिसहस्त्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुनि की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

यहाँ आचार्य महाराज ने भगवान् की स्तुति करते हुए उनकी ननी भगवती मरुदेवी मातेश्वरी की भी प्रशसा की है । आचार्य हते हैं—ससार मे हजारो-लाखो स्त्रियाँ है और उनके हजारो-लाखो ही पुत्र है, मगर मरुदेवी माता ने जैसे पुत्ररत्न को जन्म

दिया, वैसे पुत्र को जन्म देने वाली माता उस समय दूसरी नही है। जब किसी घर मे पुत्र का जन्म होता है तो पडौसियो को भी पता नही चलता कि यहाँ पुत्र-जन्म हुआ है। मगर मरुदेवी के उदर से पुत्र का जन्म होते ही तीनो लोको मे धूमधाम मच गई। निरन्तर अतिशय भीषण वेदना सहते रहने वाले नरक के जीवो को भी क्षण भर शान्ति का अनुभव हुआ। देवलोक मे भी चहलपहल आरम्भ हो गई। इन्द्रो के आसन कम्पायमान हो उठे। उन्होने समझ लिया कि प्रथम तीर्थङ्कर देव का जन्म हुआ है। वे धूमधाम के साथ मध्यलोक मे आये। माता को मोहमयी निद्रा मे सुलाकर भगवान् को उठाकर ले गये। मेरु पर्वत पर ले जाकर उनका अभिषेक किया। उनकी स्तुति की और बडा हर्ष मनाते हुए जन्मोत्सव मनाया।

यहाँ के आनन्द और उल्लास का भी क्या पूछना है ? सारी प्रकृति ने परम सौम्य रूप धारण कर लिया था। शीतल, मन्द और सुगधित वायु वहने लगी थी। गगन निर्मल और निरभ्र था। प्रकृति का रूप उल्लासमय प्रतीत हो रहा।

महाराज नाभि के हर्ष का पार नही था। जनता अपूर्व आनन्द मे मग्न थी। मगल-वाद्य वज रहे थे। सर्वत्र आनन्द और उत्साह की धूम थी।

रात्रि के समय जिधर देखो उधर ही तारे चम-चम करते चमकते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओ मे कितने तारे चमकने लगते हैं ? कोई हिसाब नही कोई गिनती नही ! फिर भी रहती है रात्रि ही ! लेकिन प्रात काल एक सूर्य का उदय होते ही अधकार-विराट और सघन अधकार भी पल भर मे न जाने कहाँ विलीन हो जाता है ! इस सूर्य को जन्म देने वाली पूर्व दिशा

ही है पूर्व दिशा के सिवाय किसी अन्य दिशा ने आज तक सूर्य को जन्म नही दिया। इसी प्रकार नक्षत्रो के समान पुत्रो का प्रसव करने वाली माताएँ तो अनेक है, परन्तु सूर्य के सदृश पुत्र को जन्म देने वाली माता मरुदेवी ही है !

तारो मे और सूर्य मे जितना अन्तर है, पुरुष-पुरुष मे भी उतना ही अन्तर होता है। मगल शनि, बुध, गुरु आदि-आदि ८८ ग्रह है। इनके परिवार की हम गणना नही कर सकते। फिर भी, सब के सब मिल कर भी रात्रि को मिटाकर दिन बनाने मे समर्थ नही हो सकते। मगर सूर्य मे स्वाभाविक रूप से वह तेजस्विता है कि अधकार टिक ही नही सकता। सारे विश्व को वह अपने प्रकाशपुज से व्याप्त कर देता है। भगवान् ऋषभदेव सूर्य के समान तेजस्वी थे। उन्होने जगत् के अज्ञान अन्धकार का निवारण कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया।

मरुदेवी माता ऋषभ जैसे असाधारण पुत्र को जन्म देकर धन्य हो गई। वास्तव मे वही माता धन्य और पुत्रवती कहलाती है, जो विशिष्ट गुणवान् पुत्र को जन्म देती है। कहा है—

गुणिगणगणनारम्भे, न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद बन्ध्या कीदृशी नाम ?

अर्थात्—गुणीजनो को गिनती करते समय पहले पहल जिस पर अगुली नही गिरती–जो पहले पहल नही गिना जाता, ऐसे को जन्म देने वाली माता मगर पुत्रवती गिनी जाय तो वन्ध्या से माना जाएगा ? तात्पर्य यह है कि सच्ची पुत्रवती माता वही सका पुत्र गुणीजनो में अग्रगण्य होता है।

जो पुत्र उत्पन्न होकर अपने कुल की कीर्ति मे चार चाद

नही लगाता, जो अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा मे वृद्धि नही करता जो परिवार का आधारभूत होकर नही रहता, जिसके द्वारा देश का और जाति का कोई हित नही सधता, जिसके द्वारा जगत् का कोई उपकार नही होता और जो स्वय उच्च और पवित्र जीवन बना कर दूसरो के लिए आदर्श नही बनता, वास्तव मे उसका जन्म लेना निरर्थक है। कहा भी है —

असारे खलु संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन, वंश याति समुन्नतिम् ।।

इस असार ससार मे कौन जन्म नही लेता और कौन नही मरता ? ससार के समस्त प्राणी जन्म-मरण के चक्र मे फँसे हुए हैं। किन्तु जन्म लेना उसी का सफल है, जिसके जन्म से वश की उन्नति होती है। जो अपने वश को ऊँचा उठाता है, उसका जन्म धन्य है।

जगन्माता मरूदेवी ने ऐसे महान् पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया कि जिसने उनके नाम को अमर कर दिया। माता-पिता, पुत्र की अभिलाषा इसीलिए करते हैं कि वे शरीर से तो अमर रह नही सकते, अतएव सन्तति के रूप मे अमर रहे। मगर ससार में कितने सपूत है ऐसे जो अपने माता-पिता को अमर बनाते हो ? विरले ही ऐसे होते हैं। भगवान् ऋषभदेव ऐसे ही पुत्र थे। उन्होने जगत् का महान् उपकार किया। कल्पवृक्षो ने जब फल देना बद कर दिया और तत्कालीन मानवजाति की प्राणरक्षा घोर सकट मे पड गई, उस समय अपने जन्मजात विशिष्ट ज्ञान का उपयोग करके उन्होने मनुष्यो को कृषि आदि कलाओ की शिक्षा दी और उस घोर सकट का निवारण कर दिया।

तत्पश्चात् स्वय गृह का परित्याग करके दीर्घकाल तक तपश्चर्या की। छह माह का अनशन तप किया और छह महीने तक साधुधर्म की विधि के अनुसार निर्दोष आहार न मिलने के कारण निराहार रहे। इस प्रकार एक वर्ष के बाद पारणा हुआ। फिर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। अन्त मे अपने निन्यानवे पुत्रो और आठ पौत्रो के साथ निर्वाण प्राप्त किया। एक ही समय मे १०८ सिद्ध हुए।

ऐसे भगवान् ऋषभदेव है उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार हो !

भाइयो ! गृहस्थ मात्र की यह अभिलाषा होती है कि हमारा पूत सपूत सिद्ध हो और हमारी कीर्ति-कौमुदी को विश्व-व्यापिनी बनावे। परन्तु सब की अभिलाषा पूरी नही होती। लोक मे कहते है—एक बेटा होता है, एक घेटा होता है और एक थेटा होता है। इनमे बेटा वही है जो जिस कुल मे जन्मे, उस कुल मे उद्योत कर दे। यही नही, जिस जाति मे जन्म ले, उसी जाति का नाम भी उसके नाम पर प्रचलित हो जाय, गाँव का नाम भी उसी के नाम पर चल पडे !

ऐसा सद्गुणी बेटा एक ही हो तो बस है। बेटो की फौज खडी होने से ही कोई लाभ नही होता। धृतराष्ट्र के सौ बेटे थे जो कौरवो के नाम से प्रसिद्ध है। मगर उनसे माता पिता को क्या लाभ पहुँचा ? कुल को क्या फायदा हुआ ? वे कुल के लिए अगार ..ध हुए। उनके दुराग्रह और दुष्ट स्वभाव के कारण कुल का ..र हो गया और बूढे अन्धे धृतराष्ट्र एव गन्धारी को अन्त समय घोरतम सन्ताप सहन करना पडा। ऐसे पुत्रो से कोई लाभ नही है। पुत्र हो तो ऐसा हो जो माता-पिता को अन्तिम समय मे शान्ति और सुख पहुँचा सके !

सोती है। मगर गधी एक नही, दस पुत्रो को जन्म देकर भी जब तक मर नही जाती तब तक लदती ही रहती है।

पुण्यवान् पुत्र माता, पिता, परिवार और मुहल्ले वालो को तथा ग्राम एव देश को भी दिपा देता है! मगर वह दिपाता कब है? जब पुण्य लेकर आया हो। जो पूर्व जन्म मे चोरी करके या पराई स्त्री उडा कर आया है, वह क्या पुण्यवान् होकर जन्मेगा? नही। जो दान, शील तप और भावना रूप चतुर्विध धर्म की आराधना करके आया होगा और सब जीवो को साता पहुँचा कर आया होगा वही पुण्यवान् कहलाएगा। जो चोरी के सस्कार ले कर आया होगा, वह इस जन्म मे भी जेलखाने की हवा खाएगा। सरकार उसे पैरो मे लगर नही पहनाएगी, बल्कि बेडियाँ पहनाएगी। इसके विपरीत पुण्यवान् पुत्र सद्बुद्धि से सम्पन्न होगा और अपने सदाचार का सौरभ प्रसारित करेगा। उसकी प्रशसा होगी। जहाँ कही वह कदम रक्खेगा, वही आदर और सन्मान का भोजन बनेगा।

पुण्यवान् और पापी मे एक बडा अन्तर यह है कि पुण्यवान् की समस्त शक्तिया सत्कार्य मे प्रयुक्त होती हैं और पापी की प्रत्येक शक्ति असत्कार्य मे लगती है। पुण्यात्मा के पास धन-सम्पदा होगी तो उससे गरीबो की सहायता करेगा। अनाथालय को दान देकर अनाथो के जीवन निर्माण मे योग देगा। शिक्षा सस्थाओ को द्रव्य का दान देगा और ज्ञान का प्रसार करने मे सहायक बनेगा। धर्म और समाज के कल्याण के लिए सत्साहित्य का प्रचार करेगा। इसी प्रकार के अन्यान्य परोपकार के कार्य करके अपने धन का सद्व्यय करेगा।

पुण्यवान् यदि विद्वान् होगा तो वह अपनी विद्या से विश्व के अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करेगा और अपना निज का भी

हित करेगा। विद्या के प्रभाव से उसमे नम्रता, सरलता और भद्रता आएगी। पुण्यशाली पुरुष मे शारीरिक शक्ति होगी तो वह दूसरो की रक्षा करेगा, अभयदान देगा और सत्पुरुषो का सरक्षण करेगा। इस प्रकार वह अपनी प्रत्येक शक्ति का सद्व्यय करेगा।

मगर पापी जीव की मति विपरीत होती है। उसको जो भी शक्ति प्राप्त होती है, उससे वह पाप का उपार्जन करता है, दूसरो का अपकार करता है और अपने मार्ग मे स्वय काटे बोता है। उसके पास शरीरबल होगा तो दूसरो को सताएगा, विद्याबल होगा दूसरो को नीचा दिखाने की कोशिश करेगा, वाक्पटुता होगी तो दूसरो को गलत राह की ओर ले जाएगा और धनबल होगा तो पाप मे उसे व्यय करेगा। दोनो का अन्तर बतलाते हुए नीतिकार कहते हैं—

विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोविपरीतमेतत्,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

दुर्जन की विद्या वाद-विवाद करके दूसरो को नीचा दिखलाने के काम आती है। उसका धन मदोन्मत्त बनाने का साधन बन जाता है। शक्ति दूसरो को पीडा पहुँचाने के काम आती है। किन्तु साधु अर्थात् सज्जन पुरुष की विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूसरो की रक्षा के लिए होती है।

वस्तु वही है, शक्ति वही है, परन्तु उसका उपयोग एक दूसरो से सर्वथा विपरीत दो दिशाओ मे होता है। पाप की ओर पुण्य की प्रेरणा के भेद से इतना अन्तर पड जाता है। पापी की

प्रत्येक शक्ति पाप की वृद्धि मे और पुण्यात्मा की शक्ति पुण्य की वृद्धि मे काम आती है।

सत्पुरुष की विशेषता इस प्रकार है:—

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽपि गंभीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽति विज्ञानिता,
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता सत्स्वेव संदृश्यते॥

अर्थात्—सज्जन एवं पुण्यात्मा पुरुष धर्म करने मे तत्पर रहते है, उनके मुख मे सदा मिठास होती है अर्थात् जब बोलेगे तो मधुर वाणी ही बोलेगे, दान देने मे उत्साहवान् होते है, कभी अपने मित्र को धोखा नही देते, गुरुजनो पर विनय का भाव रखते है, चित्त मे गंभीरता धारण करते है। उनका आचार-विचार शुद्ध और पवित्र होता है। वे सद्गुणो के रसिक होते है। शास्त्रो के ज्ञाता होते है। उनका रूप सद्गुणो के कारण मनोहर लगता है और वे परमात्मा के भक्त होते हैं।

पुण्यवान् पुरुष की प्रकृति ही ऐसी सुन्दर हो जाती है कि उसमें सब सद्गुणो का आवास होता है। उसमे सद्गुण आ-आ कर निवास करते है। कहा भी है —

गर्वं नोद्वहते न निन्दति परान्नो भाषते निष्ठुरं,
प्रोक्तं केनचिदप्रियं च सहते क्रोधं च नालम्बते।
श्रुत्वा काव्यमलक्षणं परकृतं सन्तिष्ठते मूकवत्,
दोषांश्छादयते स्वयं न कुरुते ह्येतत्सतां लक्षणम्॥

पुण्यशील सत्पुरुष को अभिमान छूता तक नही है। वह किसी की निन्दा नही करता और न कभी किसी के प्रति कटुक भाषण करता है। जब बोलता है तो ऐसा कि मुँह से मानो फूल झडते हैं। कदाचित् कोई उससे अप्रिय भाषण करे तो वह शाति-पूर्वक सहन कर लेता है और कभी क्रोध का आलम्बन नही करता। किसी का काव्य सुनेगा और वह दूषित होगा तो चुप्पी साध जाएगा—उसके दोषो का बखान नही करने लगेगा। किसी पर दोषारोपण तो करेगा ही नही, वरन् दूसरो के दोष देखेगा तो उन्हे ढँकने का ही प्रयत्न करेगा। स्वय तो दोषो का सेवन करेगा ही नही। जिस पुरुप मे यह सब लक्षण हो, समझ लेना चाहिए कि वह सत्पुरुष है और पुण्यशाली है। यह पुण्यवान् के लक्षण है।

तो अभिप्राय यह है कि पुण्यवान् पुरुष अपनी प्रत्येक शक्ति का उपयोग दूसरो का कल्याण करने मे ही करता है, जब कि पापात्मा की शक्तियाँ स्व-पर के अहित मे निहित होती है।

आगरा मे बलवन्तराय नामक एक सज्जन थे। वे बडे आदमी थे। एक कुर्ता, धोती और टोपी रखते थे। कभी किसी गरीब का काम अटकता तो वह दौडा हुआ उनके पास आता और वह तत्काल उसकी सहायता करने को तैयार हो जाते। उन्होने शायद कभी किसी के काम के लिए आनाकानी नही की होगी, ऐसा लोग कहते थे। हमने जब आगरे मे चातुर्मास किया तो उन्होने हमारी बहुत सेवा की।

वह बडे बुद्धिमान् और धर्मप्रेमी भी थे। आगरा मे एक बार कुत्ता मारे जाने लगे तो कुछ लोग गवर्नर के पास गये और कहा—कुत्तो को मारना बन्द होना चाहिए।

गवर्नर ने कहा—तुम जैन ही जैन इकट्ठे होकर चले आते हो। तुम समझते नही कि कुत्तो के बढ जाने से कितनी परेशानी होती है।

तब बलवन्तरायजी बोले—हुजूर, हम समझदार नहीं हैं, तभी तो आपके पास आये हैं। समझदार होते तो हम ही राज्य क्यो न करते ?

इस उत्तर को सुनकर गवर्नर भी चकित-सा रह गया। आखिर उन्होने गवर्नर से अपनी बात मनवा ही ली।

अभिप्राय यह है कि पुण्यवान् पुरुष की बुद्धि परोपकार, सेवा आदि सत्कार्यो मे लगती है और पापी जीव को बुद्धि मिले तो वे नयी-नयी तरह के बन्दूक, पिस्तौल, मशीनगन और एटमबम आदि हिसाजनक शस्त्रास्त्रो के निर्माण मे लगाते हैं। पुण्यशाली पुरुष तत्त्वविचार मे अपनी बुद्धि का सदुपयोग करते है। वह विचार करते हैं कि आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है ? धर्म क्या है ? पुण्य और पाप के कार्य क्या है ? मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? आदि।

भाइयो ! बुद्धि तो वही की वही है, परन्तु एक उससे सवर और निर्जरा करके आत्मा का कल्याण करता है और दूसरा उसीसे पाप करता है, अशुभ कर्मो का बन्ध करता है, आत्मा को मलीन बनाता है और अपने लिए दु खो का सृजन कर लेता है !

आपके दो हाथ है। इनसे आप चाहे तो किसी गिरते को बचा सकते है और चाहे तो धक्का देकर गिरा सकते है।

आपके दो आँखे है। इनसे शास्त्रो का अवलोकन भी कर सकते हे, सतो का दर्शन भी कर सकते है, और भी शुभ कार्य कर

सकते हैं। और यदि चाहे तो परस्त्री पर खोटी दृष्टि डाल कर पाप का सचय भी कर सकते हैं। आपको यह सब साधन पुण्य के योग से मिले हैं। आपकी इच्छा है, इनसे चाहे पुण्योपार्जन कीजिए, चाहे पाप का।

पुण्य का उदय होता है तभी सुबुद्धि की प्राप्ति होती है। कोई भी जाकर पूछता है—फलाचदजी कैसे हैं? जवाब मिलता है—लाखो मे एक हैं। कोई हुडी लेकर जाता है। पूछते हैं—किसकी हुडी है? फलाचदजी की तो दुकानदार कहता है—अजी, यह तो दर्शनी हुडी है। और किसी दूसरी हुँडी के लिए कहता है—इसे तो हम नही लेते। भाई, यह सब पुण्य के खेल हैं। जिसके पुण्य का उदय है, उसकी सर्वत्र प्रतीति होती है। वे जहाँ कही जाते हैं, श्रेष्ठ समझे जाते हैं और आदर पाते है। किसी सराफ की दुकान पर ऐसे लोग चले जाएँ और कदाचित् दुकानदार को किसी काम से दुकान छोड कर चला जाना पडे तो वह लाखो का माल छोड कर चला जाता है। सराफ समझता है कि यह मनुष्य प्रामाणिक और ईमानदार है।

पुण्यवान् पुरुष राजाओ—महाराजाओ के द्वारा भी आदर पाता है। वह जो कुछ बोलता है, खूब सोच-समझ कर बोलता है। न्याय सगत बात ही कहता है। और जब बोलता है तो सब उसकी बात को स्वीकार कर लेते हैं। पुण्यवान् पुरुष सदा ईमानदारी की ही बातें कहता है। कभी कोई जाल या फरेब नही रचता।

पुण्यशाली की बडी विशेषता यह होती है कि वह माता-पिता को सिर पर रखता है। वह जानता है कि माता-पिता ने असीम कष्ट सहन करके हमारे जीवन का निर्माण किया है, हमे सब प्रकार से योग्य बनाया है। वे सदैव हमारा हित ही सोचते हैं और

हित का काम ही करते है। अतएव उनका आदर करना, विनय करना, उनकी सेवा करना और उन्हे हर प्रकार से सुख-सुविधा पहुँचाना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है। यह समझ कर वे कभी माता-पिता की आज्ञा का उल्लघन नही करते और अपने धर्म का भलीभाति पालन करते है। कैसा भी लाभ का काम क्यो न हो, धर्म की मर्यादा का अगर भग होता होगा तो वे उसे नही करेगे। उनके अन्त करण मे पक्का विश्वास होता है कि धर्म जीवन मे सब से उत्तम वस्तु है। जगत् मे अगर कोई सारभूत वस्तु है तो वह धर्म ही है। धर्म को तिलाजलि देकर न कभी कोई सुखी हुआ है और न हो ही सकता है। अतएव चाहे और-और पदार्थ चले जाएँ परन्तु धर्म नही जाना चाहिए। धर्म गया तो सभी कुछ चला गया और धर्म रहा तो सभी कुछ रह जाएगा।

पुण्यवान् पुरुष परस्त्री को माता और बहिन के समान समझते हैं। श्रीरामचन्द्रजी ने अपने भाई भरतजी को यही नीति समझाई थी कि—हे भाई! परस्त्री को अपनी माता समझना। जो लोग जरा भी गलत रास्ते पर चले जाते है, जनता की नजर से छिपे नही रहते और लोग उनकी ओर उगली उठा कर बताने लगते हैं कि यह अमुक का पोता और अमुक का बेटा भ्रष्ट हो गया है। यह कुपथगामी है। इस प्रकार वह अपनी भी इज्जत खोता है और अपने बाप-दादाओ की इज्जत पर भी कालिमा पोत देता है। किसी ने केसर घिसी और उसमे कोयला भी घिस दिया तो ह केसर किस काम की रही? इसी प्रकार मनुष्य की जिंदगी र उसकी कीर्त्ति केसर के समान है और उसमे दुर्व्यसन कोयले समान हैं।

पुण्यवान् पुरुष परस्त्री को माता और बहिन के समान समझते है। श्री रामचन्द्रजी अपने भाई भरतजी को यही नीति

समझाई थी कि हे भाई! परस्त्री को अपनी माता समझना। जो लोग जरा भी गलत रास्ते पर चले जाते हैं, जनता की नजर से छिपे नही रहते और लोग उनको ओर उगली उठा कर बताने लगते हैं कि यह अमुक का पोता और अमुक का बेटा भ्रष्ट हो गया है। यह कुपथगामी है। इस प्रकार वह अपनी भी इज्जत खोता है और अपने बाप-दादाओ की इज्जत पर भी कालिमा पोत देता है। किसी ने केसर घिसी और उसमे कोयला भी घिस दिया तो वह केसर किस काम की रही? इसी प्रकार मनुष्य की जिंदगी और उसकी कीर्त्ति केसर के समान है और उसमे दुर्व्यसन कोयले के समान हैं।

राम ने भरत से कहा—दूसरी बात यह है कि—दूसरे के धन पर नीयत मत बिगाडना। पुण्यात्मा पुरुष कभी यह विचार नही करता कि अमुक धनवान् है तो उसका धन अनीति से ले लू। वह तो यही समझता है कि लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम के अनुसार ही द्रव्य की प्राप्ति होती है। अनीति से प्राप्त किया हुआ धन ठहरता नही है।

राम ने कहा—तीसरी बात यह है कि अपने धर्म की मर्यादा का भी उल्लघन नही करना। ऐसा ही कोई सकट आ जाय तो मर जाना कबूल हो, पर धर्ममर्यादा का उल्लघन करना कबूल नही होना चाहिए। प्यास लगी हो तो प्यासा मर जाना ठीक, पर जहर के पानी से प्यास बुझाना ठीक नही। और यह भी याद रखना कि नीच जनो के ससर्ग मे रहना उचित नही है। तुम कितने ही भले हो, परन्तु यदि नीचो की सगति मे रहोगे तो तुम्हारी इज्जत मे फर्क आए बिना नही रहेगा। चोर की सगति करने वाला भले चोरी न करे, मगर लोग उसे भी चोर समझने-लगते हैं। किसी के

घर चोरी होने पर उसकी भी तलाशी होती है। अतएव बुरो की सगति से बचना ही उचित है।

एक हस और एक कौवा मे मित्रता थी। एक वार कौवा ने हस से कहा—जरा हमारे देश की भी तो सैर कर आओ। हस ने अपने मित्र का निमत्रण स्वीकार कर लिया। दोनो उडते-उडते एक जगल मे पहुँचे और एक वृक्ष पर विश्राम करने के लिए बैठ गए। उसी वृक्ष के नीचे एक राजा ठहरा हुआ था। वृक्ष की सघन छाया मे उसकी गद्दी बिछी थी और राजा उस पर मसनद के सहारे बैठा आराम कर रहा था। यह दोनो उसके ठीक ऊपर एक शाखा पर बैठ गए। इतने मे ही कौवा ने बीट करदी और वह उसी समय उड गया। बीट राजा के ऊपर पडी। राजा ने अपने नौकर को आज्ञा दी—तीर से उडा दो इस दुष्ट जानवर को! नौकर ने हस को निशाना बना कर तीर मारा और हस नीचे आ गिरा। तब हस बोला—

नाहं काको महाराज, हंसोऽहम् विमले जले।
नीचसङ्गप्रसंगेन, मृत्युरेव न संशयः॥

हे महाराज! बीट करने वाला मैं नही, कौवा था। मैं तो निर्मल नीर मे रहने वाला हस हू। मगर तुम्हारा भी क्या दोष है ने नीच कौवा की सगति की, इसी कारण मुझे आज मौत का क बनना पडा!

इसलिए राम कहते है—हे भाई! तू कभी नीच की सगति मत करना। नीच की सगति से अनिष्ट होता है।

संगति कीजे साधु की, हरै और की व्याधि ।
ओछी संगति नीच की, आठो पहर उपाधि ।।

सगति करनी तो सत्पुरुष की करनी चाहिए। सत्पुरुष दूसरो की भी व्याधि को टालता है। मगर नीच पुरुष की सगति ओछी सगति है और ऐसी सगति से रात-दिन झगडे-झझट खडे रहते है।

प्रत्येक मनुष्य का सकल्पबल इतना प्रबल नही होता कि वह खराव आदमियो की सगति मे रह कर भी अपनी अच्छाइयो को कायम रख सके। दूसरो के, जो सदा सम्पर्क मे रहते हैं, कभी न कभी असर पड ही जाता है। अतएव यह आवश्यक है कि खराव आदमियो के ससर्ग से बचा जाय। एक कवि कहते हैं—

अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे ।
पावको लोहसंगेन, मुद्गरैरभिहन्यते ।।

अर्थात्—दुष्ट जनो की सगति से पग-पग पर मानहानि होती है। देखो, लोहे को सगति करने से अग्नि को मुद्गरो की मार खानी पडती है। जब लोहे से आग अलग रहती है तो कौन उसे मुद्गर मारता है? परन्तु लोहे का ससर्ग करते ही उस पर विपत्ति आ जाती है। और भी कहा है—

अणुरप्यसतां संगः, सद्गुणं हन्ति विस्तृतम् ।
गुणो रूपांतरं याति, तक्रयोगाद्यथा पयः ।।

असत् पुरुषो का अणु—थोडा-सा ससर्ग भी वडे से वडे सद्गुण का नाश कर देता है। सज्जन की सज्जनता भी वदल कर

दुर्जनता बन जाती है। दूध कितना ही अधिक क्यो न हो और कितना ही मधुर क्यो न हो, परन्तु तक्र (छाछ) के ससर्ग से रूपान्तर को प्राप्त हो ही जाता है। अतएव असत्सगति से सदैव बचना चाहिए।

रामचन्द्र भरत से कहते हैं—यह भी याद रखना कि शत्रु के सामने कभी आजीजी न करना, दीनता न दिखलाना। शत्रु के सामने तो शूरवीर होकर ही रहना चाहिए। दुश्मन के सामने हथियार डाल देने का अर्थ है पराधीनता स्वीकार करना। जर्मनी और जापान ने हथियार डाल दिये, फिर चाहे वे किसी भी परिस्थिति मे क्यो न डाले हो, तो पराधीनता का अभिशाप भुगतना पडा। भर्तृहरि का तो यहाँ तक कहना है कि शत्रु के सामने शूरवीर और स्त्री के सामने धूर्त्त होकर रहना चाहिए। मगर यह नीति ऐसी स्त्री के सम्बन्ध मे समझनी चाहिए, जिसकी प्रतीति नही है। जो नारी भाग्यवान् और सुशीला है, उसके सामने धूर्त्तता करने की आवश्यकता नही। नारी सुशीला है या नही, यह बात छिपी नही रहती। परीक्षा करने से तत्काल पता चल जाता है।

किसी सेठ के एकलौता लडका था। वह विद्याध्ययन कर रहा था। सेठ धनवान् था और लडके को बहुत चाहता था। लडका बडा हुआ और उसकी सगाई की चर्चा होने लगी। जब लडके को पता चला कि मेरी सगाई की बातचीत हो रही है तो उसने साफ कह दिया—मैं अभी सगाई नही करूँगा। मैं एकाग्र से विद्याध्ययन करना चाहता हूँ।

पहले तो सेठ ने समझा कि कुछ दिन ठहर जाना अच्छा ही है। लडका पढ जायगा और परिपक्व वय का हो जायगा तो

विवाह कर देंगे। मगर धीरे धीरे वह २२ वर्ष का हो गया। तब भी वह विवाह के लिए राजी नही हुआ। इन्कार ही करता रहा। अब सेठ सोच-विचार मे पड गया। उसने कई बार दूसरो से कहलवाया, परन्तु लडका विवाह करने को तैयार नही हुआ। लाचार होकर सेठ ने स्वय आग्रह किया, फिर भी वह अपने विचार पर स्थिर ही रहा।

लडके के २४ मित्र थे। सेठ ने एक बार उन्हे बुलवाया और कहा—आप लोगो का मित्र विवाह के योग्य हो गया है। मेरे समझाने पर भी वह विवाह करना स्वीकार नही करता। अतएव उसे समझाने का भार मैं आप पर डालना चाहता हूँ। मुझे आशा है, इस कार्य मे आप लोग अवश्य सफल होगे।

मित्रो ने परामर्श करके कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। हम पूरी कोशिश करके आपके पुत्र को विवाह के लिए सहमत करने का प्रयत्न करेंगे। आशा है, हम सफल भी होंगे।

गनगौर का त्यौहार आया। उस दिन उन मित्रों ने गोठ (दावत) करने का कार्यक्रम निश्चित किया। यह भी तय हुआ कि सब सपत्नीक इस गोठ मे शामिल हों। यह लड्का भी इसमें सम्मिलित हुआ।

भोजन के पश्चात् गाने-बजाने की बारी आई। तब उनमे से एक ने कहा—देखो भाई, यह नामदार सेठ का लडका है, परन्तु जिसके स्त्री नहीं होती, उसकी नीयत अच्छी नही रहती। अतएव जब मर्दों ही मर्दों की गोठ हो तभी इसे बुलाना और सम्मि[illegible] करना चाहिए।

सेठ के लडके को यह वात चुभी। परन्तु उसने कहा—अच्छा भाई मै विवाह कर लूँ तब तो कोई वाधा नही होगी ? उसने कहा—नही, फिर क्या बाधा है ? फिर तुममे और हममे कोई अन्तर नही रहेगा। अभी तुम्हारी और हमारी जाति अलग-अलग है।

सब लोग हँसने लगे। सेठ के लडके ने कहा—अच्छा, अव मैं भी तुम्हारी जाति मे शामिल हो जाऊँगा।

लडका विवाह करने को रजामन्द हो गया है, इस सवाद से सेठ को प्रसन्नता हुई। उसने लडकी पहले ही देख रक्खी थी। नाई और सेवक को बुलाकर कहा—जाओ और सगाई की बात चीत करो। वात पक्की हो जाय तो दस्तूर कर आना।

नाई और सेवक रवाना हुए परन्तु उस लडके ने कह रक्खा था कि मेरी सगाई की जाय तो उसके साथ की जाय जो निम्न-लिखित पद की पूर्त्ति कर दे—

वन में आंबो बोवियो, कौन करे रखवाली।

लडकी अठारह वर्ष की हो चुकी थी, किन्तु सुयोग्य वर न मिलने के कारण उसका सम्बन्ध रुका हुआ था। आखिर माता-पिता अपनी समझ मे योग्य से योग्य वर तलाश करके ही लडकी । चाहते है और यह स्वाभाविक ही है। कहा है—

वर देखणो, यों मात-पिता सोचे मन माहीं रे।टेर।
बराबरी को योग मिले तो, सुख मिले ज्यूं चहावेरे।
जोड़ी में जो फरक होय तो वर दुख पावेरे ॥१॥

क्रोधी नर ने सुता न देणी, घर में जंग मचावेरे ।
दुर्व्यसनी नहीं माने, घर को माल उड़ावेरे ।।२।।

उस लडकी के माता-पिता सोच रहे थे कि यह लडकी किसे दी जाय ? जब बराबरी की जोडी मिलती है, तभी उसे सुख की प्राप्ति होती है । क्योकि कहा गया है—

समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ।

जिनका शील-स्वभाव और आदतें एक-सी होती हैं उन्ही मे मैत्रीभाव स्थापित होता और कायम रहता है । जिनके स्वभाव मे भिन्नता होती है, जिनकी आदते अलग-अलग प्रकार की होती हैं, उनमे घनिष्ठ हार्दिक मैत्री स्थापित नही हो सकती । खास तौर से क्रोधी को लडकी नही देनी चाहिए । ससार मे देखा गया है कि क्रोधी पुरुष क्रोध के तीव्र आवेश के वशीभूत होकर स्त्रियो के प्रति अतीव निष्ठुर और निर्दय व्यवहार करते है । एक पुरुष ने अपनी स्त्री को चक्की के पाट से दे मारा था । दूसरे दुर्व्यसनी को भी लडकी देना योग्य नही है । दुर्व्यसनी पुरुष बुरे रास्ते पर चलता है और घर की सुखशान्ति को नष्ट कर देता है । सारा धन दुर्व्यसन की आग मे झोक देता है और अपनी औरत के जेवर तक खो बैठता है ।

तस्कर दुष्ट रुष्ट निर्लज्ज, निर्दय को नहीं दीजे रे ।
पागल और अवारा से भी दूरो रहीजे रे ।।३।।
विद्याबल नीरोग और जो होवे बहुपरिवारी रे ।
चौथमल कहे सुना दिया होवे सुख भारी रे ।।४।।

आप सब को मजिस्ट्रेट बना कर जजमेन्ट (फैसला) लेना चाहता हू कि चोर, दुष्ट, निर्दय और निर्लज्ज तथा पागल और आवारा लडके को कन्या देने पर क्या होगा ? ऐसे कुपात्र के गले कन्या सुख पाएगी या दु ख उठाएगी ।

वास्तव मे ऐसे वर को कन्या दी जाय, जो विद्यावान् हो, बलवान हो, शरीर से तदुरुस्त हो और परिवार वाला हो तो कन्या सुख पाएगी ।

उस लडकी के माता पिता यही सोच रहे थे। इसी समय वह नाई और सेवक पहुँचे । सेठ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । सेवक ने कहा—हमारे सेठ साहब के कु वर बहुत होशियार हैं और देखने मे भी बहुत सुन्दर है । धन-सम्पन्न घर है । अगर सबध करने की आपकी इच्छा हो तो सबध हो सकता है, परन्तु एक बार लडकी को देख लेना चाहते हैं ।

लडकी के पिता ने प्रसन्नतापूर्वक लडकी को दिखलाना स्वीकार कर लिया । सेवक ने लडके की लिखी हुई कविता लडकी को दिखलाई और कहा—इसकी पूर्ति करो ।

लडकी ने तुरन्त उस पद की पूर्ति कर दी—

बन में आंबो बोवियो कौन करे रखवाल ।
रहे तो अपने धर्म से, जाय तो जन्म बिगार ।।

जब पादपूर्ति हो चुकी तो सगाई का दस्तूर कर दिया गया और विवाह का मुहूर्त्त निकलवाया गया । यथा समय शुभ मुहूर्त्त मे दोनो का विवाह हो गया । वधू घर आई और तीन चार दिन

रह कर अपने मायके चली गई। इस प्रकार छह महीने बीत गये। लडकी को ससुराल ले जाने के कोई समाचार न आये तो उसके पिता को चिन्ता हुई।

आखिर किसी त्यौहार के अवसर पर लडकी के पिता ने अपने जामाता को आने का आमन्त्रण भेजा, परन्तु सेठ के लडके ने उस पत्र को फाड कर फेंक दिया। इस तरह कई पत्र आये, परन्तु वह सब फाड कर फेंक दिये गये। लडके ने ससुराल जाने का नाम नही लिया।

मुनीम ने एक दिन समझाया—कु वर साहब, पर्याप्त समय हो चुका है। अब बहू को ले आइए। अन्यथा लोक हँसाई होगी।

कु वर बोला—मैंने तो सब के कहने-सुनने से विवाह कर लिया था। अविवाहित नही रहा, यही बहुत है। अब मैं अकेला ही मस्त हूँ।

सेठ ने यह सब सुना तो वह माथा ठोक कर रह गया। सोचने लगा—इस लडके का दिमाग खराब हो गया है। इससे तो विवाह न कराना ही ठीक था। एक लडकी की जिन्दगी बिगडी और बदनामी हुई सो अलग! दुनिया मुझे थूकेगी!

आखिर सेठ ने फिर लडके के मित्रो का सहारा लिया। एक दिन उन्हे बुलाया और उनकी आजीजी की। कहा—भाई, किसी तरह इसे सुसराल जाने और बहू को ले आने के लिए राजी करो।

मित्रो ने फिर गोठ का आयोजन किया। सब मित्र सपत्नीक गोठ मे सम्मिलित हुए। सेठ का लडका भी शामिल हुआ। तब

एक मित्र ने उसे टोकते हुए कहा—कुंवर साहब ! आप सपत्नीक क्यो नही आए ?

सेठ का लडका—सपत्नीक नही आया, परन्तु विवाहित हू ।

मित्र—तो क्या आपकी पत्नी ने आपको थप्पड मार दी है जिससे उसे साथ लेकर नही आए ?

सेठ का लडका लज्जित हुआ । उसने उसी समय सुसराल जाकर पत्नी को ले आने का निश्चय कर लिया । घर आकर अपने पिता को अपने निश्चय की सूचना दे दी, पर साथ ही कहा—मैं अपने मित्रो के साथ सुसराल जाऊँगा ।

सेठ ने मित्रो को बुलाकर साथ जाने के लिए राजी कर लिया । मित्रो ने कहा—हम जाने को तैयार हैं परन्तु एक-सा भोजन करेंगे, एक से वस्त्र पहनेंगे और एक ही जगह ठहरेंगे ।

सेठ ने यह सब स्वीकार किया । बरात की बरात लडके के सुसराल जाने को तैयार हुई । यथा समय चल कर सब सुसराल पहुचे । पच्चीस की वेषभूषा एक-सी थी । अतएव लडकी के माता-पिता यही भूल गये कि इनमे कौन हमारा जामाता है और कौन नही ? लेकिन आप जानते है कि नाई बडे होशियार होते है । तो नाई ने कहा—आप चिन्ता न कीजिए । रात्रि के समय मैं जामाता को खोज निकालूँगा ।

रात्रि के समय नाई उनके निवासस्थान पर गया और बोला—
जो जामाता हो, वह सोने के लिए हवेली मे पधारे ।

इन सब ने बारी नियत कर ली थी । चौवीस दिन चौविस मित्रो की और पच्चीसवे दिन असली जामाता की बारी रक्खी

गई थी। पहले दिन एक व्यक्ति हवेली मे गया। लडकी भी अपने पति को भूल गई थी। वह एक ही बार तीन-चार दिन के लिए ससुराल गई थी और उस बात को बहुत समय बीत चुका था। अतएव वह सन्देह मे पड गई। मगर लडकी बडी चतुर थी। उसने सोचा—परीक्षा किये बिना किसी को कमरे मे आने देना योग्य नही है। अतएव उसने अपने कमरे का द्वार बद कर लिया और कहा--पहले आप स्नान कर लीजिये और फिर कमरे मे प्रवेश कीजिए। वह कपडे खोल कर स्नान करने लगा। स्नान करके वापिस आया और किवाड खोलने के लिये कहा तो लडकी ने कहा—अगर आप अधूरा दोहा सुना दे तो मैं किवाड खोल सकती हूँ, अन्यथा नही।

माघ का महीना था और कडाके की सर्दी पड रही थी। वह व्यक्ति न अधूरा दोहा सुना सका और न कमरे का द्वार खुला। उसे रात भर सर्दी मे ठिठुरना पडा। सबेरा हुआ तो वह पछताता हुआ, मन ही मन अतीव लज्जित हुआ किन्तु ऊपर-ऊपर से हँसता हुआ अपने मित्रो मे पहुँचा। दूसरो ने पूछा—कहो भाई, रात कैसी बीती? उसने कहा—बस कुछ न पूछो! एकदम अपूर्व अनुभव हुआ।

इसी प्रकार प्रत्येक मित्र की हालत हुई। मगर किसी ने किसी से कुछ कहा नही। अपनी दुर्दशा की बात सब ने अपने ही मन मे रक्खी और सब अपने अपने मन मे लडकी के चातुर्य की प्रशसा करने लगे।

पच्चीसवें दिन खास जामाता की बारी आई। लडकी ने उससे भी वही कहा। वह स्नान करके आया तो लडकी ने कहा—अधूरा दोहा सुनाओ। वह उस दोहे को भूल गया था, मगर किसी तरह याद करके उसने दोहा सुना दिया। तब उस लडकी ने कमरे

का द्वार खोला। पति-पत्नी का मिलाप हुआ। पत्नी ने पिछले दिनो की घटना अपने पति को कह सुनाई। इस पर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और समझने लगा कि जैसे राम को सीता और हरिश्चन्द्र को तारा मिली थी, वैसे ही मुझे भी पुण्यवती सती स्त्री की प्राप्ति हुई है। सेठ का लडका अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। उसके मित्रो ने भी उसकी पत्नी की पूरी-पूरी प्रशसा की। लडके ने कहा—मैंने तुम्हारी परीक्षा के लिए यह आयोजन किया था।

यह तो एक उदाहरण है। अभिप्राय यह है कि स्त्री यदि होशियार और चतुर न हो तो ठगाई मैं आ जाती है।

भाइयो! बात पुण्यवान् की चल रही है। पुण्यवान् पुरुष की बुद्धि शुद्ध होती है। वह अपने मस्तिष्क मे कभी दुर्विचारो को अवकाश नही देता। वह जानता है कि जितने भी लोगो का जीवन भ्रष्ट होता है, वह पहले पहल भावना के द्वारा ही होता है। सर्वप्रथम मनुष्य की भावना विकृत होती है, तत्पश्चात् वह कुकृत्य करने लगता है। इस प्रकार अध पतन की पहली सीढी भावना की खराबी है। यही कारण है कि धर्मशास्त्र मे भावना शुद्धि को अतीव महत्त्व दिया गया है। एक आचार्य का कथन है —

दानशीलतपःसम्यक्, भावेन भजते फलम् ।
स्वादः प्रादुर्भवेद् भोज्ये, किं नाम लवणं बिना ॥

यो तो दान, शील, तप और भावना के भेद से धर्म चार ।र का है, किन्तु यह सब धर्म उसी समय फलप्रद होते है, जब साथ मे हो। भावनाहीन दान आदि सफल नही होते। जैसे नमक के बिना भोजन मे स्वाद नही आता, उसी प्रकार भावना

के विना धर्म का फल नही होता। इसीलिए धर्म का सार बतलाते हुए कहा है —

समत्वं भज भूतेषु, निर्ममत्वं विचिन्तय।
अपाकृत्य मनःशल्यं, भावशुद्धि समाश्रय ।।

अर्थात्—प्राणी मात्र पर समता का भाव धारण करो। सब को अपना सरीखा समझो और ममता का परित्याग करो। मनके शल्य को दूर करके भावशुद्धि का आश्रय लो, अर्थात् अपनी बुद्धि को शुद्ध रक्खो उसमे मलीनता मत आने दो विकार का प्रवेश मत होने दो।

बुद्धि शुद्धि मे बडी बलवती शक्ति विद्यमान है। जिसकी बुद्धि पवित्र होगी, जिसके अन्त करण मे मलीन विचारो का प्रवेश न होता होगा, उसका कल्याण अवश्यभावी है। अतएव यह पुण्यात्मा का लक्षण है। पुण्यवान पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि कदापि मलीन विचारो से युक्त न होने दे।

रामचन्द्रजी भरत से आगे कहते हैं—देखो भाई भरत, यदि तुम अपने जीवन को उच्चतर स्तर पर पहुँचाना चाहते हो तो इन बातो का ध्यान रखना—कुमार्ग मे धन का व्यय न करना, अपयशकारी विचार या कार्य न करना, भगवान् की कथा सुनना, सत्य से प्रेम करना, शरीर से नम्र व्यवहार करना और मुख से जो कुछ बोलो, सोच-समझ कर बोलना। किसी को कोई वायदा करने से पहले सोच लेना कि तुम उसे पूरा कर सकते हो अथवा नही ? अगर पूरा कर सकने को सभावना न हो तो स्पष्ट रूप से अपनी असमर्थता प्रकट कर देना। और यदि विश्वास हो कि मैं अपना वायदा पूरा कर सकूं गा तो वायदे करने मे कोई हानि नही।

कई लोग बाते तो बहुत बढ कर करते है, डीगे बहुत मारते है, परन्तु जब काम करने का समय आता है तो किनारे काटने लगते है, बगले झाकने लगते है । ऐसे लोगो को दुनिया ढपोरशख कहती है। उनकी बात पर कोई भरोसा नही करता। वह अप्रतीति के पात्र बन जाते हैं। अतएव सोच-समझ कर और अपनी शक्ति एव स्थिति का विचार करके ही कोई प्रतिज्ञा करो और जब प्रतिज्ञा करलो तो प्रत्येक मूल्य पर उसका पालन करो ।

भाई! ससार मे नाना प्रकार के मनुष्य होते है। कोई स्वभाव से ही दुष्ट चित्त वाले होते है। वे विना प्रयोजन ही दूसरो को गलत राह पर चलाने मे आनन्द का अनुभव करते है। दूसरो को खोटी सलाह देते है। कोई-कोई अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी को कुपथ पर चलने की प्रेरणा करते है। यह भयकर लोग अपने तुच्छ से स्वार्थ के लिए भी दूसरो का बडे से बडा नुकसान करने मे सकोच नही करते। अतएव ऐसे लोगो की सलाह से बचते रहने मे ही कल्याण है। अपनी सद्‌बुद्धि को सदा जागृत रखनी चाहिए और कोई खोटी अक्ल दे तो उसे कभी नही मान्य करना चाहिए।

हाँ, नीतिमान् पुरुष अगर न्याय-नीति की बात कहे तो उसे मानना परम कर्त्तव्य है। यही नही, ऐसी सलाह देने वालो का आभार मानना चाहिए और उसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिए।

दीन-दुखी जनो की सहायता करना भी पुण्यात्मा का लक्षण पुण्यशाली पुरुष का अन्त. करण करुणा की शीतल और ऊर्मियो से व्याप्त रहता है। अतएव वह पराये दु.ख अपना ही दु ख मानता है और वह दु ख उसके हृदय मे प्रकार सालता है, जैसा अपना दु ख। ऐसी स्थिति मे

जिस प्रकार अपने दु ख को दूर करने को चेष्टा की जाती हैं, उसी प्रकार पुण्यवान् दूसरो के दु ख को भी दूर करने की चेष्टा करता है। इसी को अनुकम्पा कहते हैं। अनुकम्पा पुण्य का आधार है।

शास्त्रो मे ज्ञान की बडी महिमा गाई गई है। परन्तु ज्ञान कभी निराधार नही रह सकता। वह किसी न किसी व्यक्ति मे ही ठहर सकता है। जैसे धर्म, धर्मात्मा के बिना नही रहता, उसी प्रकार ज्ञान ज्ञानी के बिना नही रह सकता। अतएव ज्ञान की भक्ति करने का अर्थ ज्ञानी की भक्ति करना है। ज्ञानीजनो का, विद्वानो का और पण्डितो का सत्कार-सन्मान करना भी पुण्यवान् का लक्षण है। पुण्यात्मा पुरुष समझता है कि विद्वान् जन ही ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते है। ज्ञानी का आदर न करना ज्ञान का अनादर करना है। अतएव जो विद्वान् पण्डित हो, उनकी अवश्य कद्र करनी चाहिए।

अन्त मे राम भरत से कहते हैं–देखो भाई पक्षपात न करना और हृदय मे अभिमान के विषैले अकुरो को कदापि न पनपने देना। सदा ऐसे ही काम करना, जिनसे स्वय भी तिर सको और दूसरो को भी तार सको। जिस पुरुष मे यह सब विशेषताएँ होती हैं, वही पुण्यवान् पुरुष कहलाता है। उसका यह जीवन भी पवित्र एव सुखमय बनता है और अगला जीवन भी।

पुण्यवान् जीव ही सुपुत्र पाते हैं। जिनके पुण्य का उदय होता है, उनके घर मे पुण्यशाली जीव ही आकर जन्म लेता है। देखो गोभद्र सेठ और भद्रा सेठानी के यहाँ शालिभद्र सरीखा पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। असली तत्त्व की बात तो यह है कि पुण्य करने से ही पुण्यफल की प्राप्ति होती है। जो पुण्य तो करते

नही और पुण्य का फल चाहते है, उनकी अभिलाषा कैसे पूरी हो सकती है ?

माता मरुदेवी और महाराज नाभि प्रबल और उत्कृष्ट पुण्य करके आये थे. अत उन्हे भगवान् ऋषभदेव जैसे सुपुत्र की प्राप्ति हुई, जिसने उनके नाम को सदा के लिए अमर कर दिया और कीर्ति फैला दी ।

भाइयो ! आप भी ऐसे पुत्र की इच्छा करते है ? इच्छा करते हो तो आपको भी पुण्य का सचय करना चाहिए । आप नाभि के समान बनेगे और यह माताएँ मरुदेवी के समान बनेगी, तभी तो ऋषभदेव सरीखे पुत्र की प्राप्ति होगी । तब इस लोक मे और परलोक मे आनन्द ही आनन्द हो जायगा ।

२७-११-४७]

:: परोपकार ::

❀❀❀❀❀

स्तुति

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !

धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।

यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहृतान्धकारा,

तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे जगद्वन्द्य ! आपने अपने मुखारविन्द से तीनों लोकों के जीवों के हितार्थ जो धर्मोपदेश दिया है, वह अनुपम है। इस अखिल जगत् मे आपके सदृश कोई धर्मोपदेशक नहीं है। आपकी

अमृतमयी वाणी के समान किसी की वाणी नही। जैसे धराधाम और गगन मे व्याप्त निबिड अन्धकार का विनाश करने मे सूर्य ही समर्थ हो सकता, अन्य ग्रह, नक्षत्र तारागण आदि नही, उसी प्रकार प्राणियो के अन्तस्तल मे व्याप्त अज्ञान और विभ्रम का विनाश करने मे आप—एक मात्र आप—ही समर्थ है। आपका धर्मोपदेश प्रत्येक श्रोता के अन्तरतर मे प्रवेश करके सहस्त्ररश्मि सूर्य के सदृश प्रवेश करके अमिट प्रकाश प्रसारित कर देता है। उस प्रखर आलोक मे अनादिकालीन मिथ्यात्व, अज्ञान तथा विभ्रम सहसा विलीन हो जाते है और मनुष्य की आत्मा अपने नैसर्गिक आलोक से उद्भासित हो उठती है। यह अद्भुत प्रभाव हे आदिनाथ! आपके ही उपदेश मे है, किसी अन्य धर्मोपदेष्टा के उपदेश मे नही।

कहा जा सकता है कि ऐसा कहना पक्षपातपूर्ण क्यो न माना जाय? भगवान् ऋषभदेव के प्रति आचार्य महाराज के मन मे अनुराग का भाव है और दूसरे धर्मोपदेशको के प्रति नही है। इसी कारण उन्होने बढा कर यह बात कही है।

इसके उत्तर मे बहुत कुछ कहा जा सकता है। परन्तु बहुत लम्बी चर्चा के लिए अवकाश नही है। अतएव सक्षेप मे ही इस सबध मे विचार किया जायगा।

भगवान् ऋषभदेव की यह स्तुति है। ऋषभदेव आद्य तीर्थ- है और सभी तीर्थंकर समान गुणो एव शक्तियो के धारक होते। अतएव किसी भी तीर्थंकर के नाम से स्तुति की जाय, वह सभी तीर्थंकरो के लिए समान रूप से लागू होती है। सभी तीर्थङ्करो मे जो भेद है, वह नाम का भेद है, गुणो का नही। नाम के भेद से तत्त्व मे भेद नही होता। अतएव आचार्य महाराज का यह कथन

इत्थं यथा तवविभूतिरभूज्जिनेंद्र ।
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ॥
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा ।
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोपि ॥

वस्तुत जिसमे उक्त दो गुण नही होंगे, वह सच्चा धर्मोप-देशक नही हो सकना । जिसमे अज्ञान है, जो स्वय अधकार मे भटक रहा है, वह दूसरो को क्या प्रकाश दे सकता है ! भले ही उसकी नीयत अच्छी हो, फिर भी अज्ञान के कारण वह दूसरो को मिथ्या उपदेश देगा और गलत रास्ते पर ले जाएगा । इसी प्रकार जिसकी आत्मा राग और द्वेष से कलुषित है, जिसने मोह को नही जीत पाया हैं, वह भी सीमचौन पथ का प्रदर्शन नही कर सकता । इस प्रकार यह निश्चित और निर्विवाद है कि जो वीतराग और सर्वज्ञ होगा, वही हितोपदेशक हो सकता है ।

इस विवेचना से आप समझ सकेंगे कि भगवान् ऋषभदेव क्यो अद्वितीय धर्मोपदेशक हैं ? उन्होने सयम और तपश्चरण का सेवन करके आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियो को जागृत किया और आत्मा को पूर्ण विकास की चरम सीमा पर प्रतिष्ठित किया । तत्पश्चात् ही उन्होने उपदेश देकर धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति की । इस कारण उनकी वाणी मे अपूर्व प्रकाश और अद्भुत प्रभाव था । ऐसी ही होनी ही चाहिए थी । रागी-द्वेषी और असर्वज्ञ की वाणी मे यह विशेषता नही आ सकती ।

अरिहन्त देव की वाणी असाधारण होती है। शास्त्रो मे उसके सबध मे बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। उनकी

ाणी मे पैंतीस अतिशय होते है, अर्थात् पैंतीस प्रकार की विशेष-ताएँ होती है। यथा :—

(१) सस्कारवत्व—भगवान् की वाणी भाषा और व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष होती है, उसमे सस्कारिता होती है।

(२) उदात्तता—उच्च स्वर से निर्गत होती है।

(३) उपचारोपेत–उसमे गँवारूपन लेश मात्र भी नही होता।

(४) गभीरता—मेघ की तरह गभीर होती है।

(५) अनुनादिता—उस वाणी की प्रतिध्वनि होती है।

(६) दक्षिणता–भाव गभीर होने पर भी भाषा सरल होती है।

(७) उपनीतरागता–उसमे ऐसी अपूर्वता होती है कि श्रोता व्याख्येय विषय के प्रति अति आदरवान् हो जाते हैं—श्रोताओ को प्रतिपाद्य विषय मे तन्मय बना देती है।

(८) महार्थता—थोडे से शब्दो मे भी अर्थ महान् होता है।

(९) पूर्वापराविरुद्धता—परस्पर विरोधी वचन नही होते, यह नही कि पहले कह दिया 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिए और फिर कह दिया कि–'वैदिकी हिसा, हिंसा न भवति !' अर्थात् वेद मे जिसका विधान है, वह हिंसा नही कहलाती।

(१०) शिष्टता—तीर्थकर भाषा अतिशय शिष्ट होती है, शब्द की दृष्टि से भी और अर्थ की दृष्टि से भी। उसमे अशिष्टता लेश मात्र भी नही होती।

(११) असदिग्धता—प्रतिपाद्य विषय को ऐसी स्पष्टता के साथ प्रतिपादन करना जिससे श्रोता के हृदय मे किसी प्रकार का सन्देह न रहे।

(१२) अपहृतान्योत्तरत्व—इस ढग मे विषय का प्रतिपादन करना कि किसी को शका करने का अवसर ही न मिले।

(१३) हृदयग्राहिता—श्रोता के चित्त पर एकदम असर पड़ जाय।

(१४) देशकालाविरोध—देश और काल के अनुरूप उपदेश करना।

(१५) तत्त्वानुरूपता—देश-काल का अनुसरण करते हुए भी सत्य तत्त्व का ही कथन करना वास्तविकता से विरुद्ध कथन न करना।

(१६) अप्रकीर्णप्रसृतता—यथोचित्त विस्तार से प्रतिपादन करना। अप्रासगिक वात न कहना और प्रासगिक को भी अधिक न बढाना।

(१७) अन्योन्यप्रगृहीतता—पदो और वाक्यो का सापेक्ष होना।

(१८) अभिजातता—भूमिका के अनुसार ही विषय का प्रतिपादन करना।

(१९) अतिस्निग्धमधुरता—जैसे भूखे को मधुर भोजन प्रिय लगता है। उसी प्रकार भगवान् की वाणी श्रोताओ को प्रिय लगती है।

(२०) अपरमर्मवेधिता—किसी के मर्म को चोट नही पहुँचाती

(२१) अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व—मोक्ष रूप अर्थ और श्रुत रूप धर्म से युक्त होती है।

(२२) उदारता—तीर्थङ्कर देव की भाषा मे उदारता होती है, अर्थात् उसका विषय महान् होता है, शब्दार्थ की रचना भी महान् होती है।

(२३) परनिंदात्मप्रशसाविप्रहितता—उनकी वाणी मे परकीय निंदा और अपनी प्रशसा नही होती।

(२४) उपगतश्लाघत्व—हाँ, भगवान् अपनी वाणी के कारण स्वय ही दूसरो के प्रशसनीय बन जाते है।

(२५) अनपनीतत्व—उनकी वाणी मे कारक, लिंग, वचन, काल या व्याकरण सम्बन्धी कोई दोष नही होता।

(२६) उत्पादिताविच्छिन्नकुतूहलत्व—श्रोताओ के चित्त मे निरन्तर कुतूहल बना रहता है कि देखे भगवान् आगे क्या कहते है

(२७) अद्भुतता—तीर्थङ्कर के वचन अश्रुतपूर्व होते हैं, अत श्रोताओ को अद्भुत हर्षदायक होते हैं।

(२८) अनतिविलम्बितत्व—भगवान् बीच मे ठहर, ठहर कर नही बोलते, वरन् धाराप्रवाह उपदेश देते है।

(२९) विभ्रमादिविप्रयुक्तता—वक्ता के मन मे भ्रान्ति होना श्रोता का दिल न लगना आदि-आदि दोषो से रहित। अर्थात् भ्रमजनक अथवा अरुचिकारक भाषा नही बोलते।

(३०) विचित्रता—भगवान् की वाणी विविध प्रकार की वस्तुओ का प्रतिपादन करती है, अतएव वह अनूठी जान पडती है।

(३१) आहितविशेषता—अन्यजनो की अपेक्षा उनकी वाणी मे विशेषता होती है और उससे श्रोताओ को विशेष बोध प्राप्त होता है।

(३२) साकारता—वर्ण, पद और वाक्य पृथक्-पृथक् होते हैं

(३३) सत्वपरिगृहीतता—भगवान् की भाषा बडी ओजस्वी और प्रभावशाली होती है।

(३४) अपरिखेदिता—भगवान् कितना ही धर्मोपदेश करे,

थकावट का अनुभव नही करते, क्योकि वे अनन्तशक्तिशाली होते हैं।

(३५) अव्युच्छेदित्व—प्रतिपाद्य विषय की जब तक पूरी तरह सिद्धि न हो जाय तब तक उसकी लगातार व्याख्या करते है। यह पैंतीस विशेषताएँ तो उपलक्षण मात्र है। वास्तव मे तीर्थंकर देव वीतराग और सर्वज्ञ होने के कारण सभी दोषो से रहित और सभी गुणो से सहित वचनो का प्रयोग करते है। उनकी वाणी अपूर्व अद्भुत और श्रोतृजनो के लिए परम कल्याण-कारिणी होती है।

जय जय जिनराया, सूत्र सुणाया, धर्म बनाया हितकारी।
गणधरजी झेली, संधि सुमेली, नय रसकेली विस्तारी।
रचे द्वादश अंगं, भंग तरंगं, ध्रुव अभंगं अति भारी।
धन धन जिनवाणी, सब सुखदानी,
भविजन प्राणी उर धारी॥

इस स्पष्टीकरण से आप समझ सकेंगे कि भगवान् ऋषभदेव को अनुपम धर्मोपदेशक कहना पक्षपात नही, किन्तु एक निश्चित तथ्य है। सरागी की वाणी वीतरागवाणी की तुलना मे किस प॰र ठहर सकती ? जो ऐसे अद्वितीय हितोपदेशक हैं, उन्ही ।व॰ ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

तीर्थंकर भगवान् ने अर्थ रूप मे जो उपदेश दिया, उसे गणधरो ने सूत्र रूप मे ढाल कर रचना की। इस द्वादशागी मे तीसरा ठाणागसूत्र है। उसमे चार प्रकार के उपकारी वृक्ष बतलाये हैं। वह इस प्रकार हैं :—

(१) कई वृक्ष ऐसे होते हैं जो अपने पत्तो से ही जगत् के जीवो का उपकार करते हैं, जैसे ढाक, भोजपत्र आदि। ढाक के वृक्ष के पत्तो की मनुष्य छतरियाँ दोने और पातल आदि बनाते हैं। भोजपत्रो पर प्राचीन काल मे शास्त्र लिखे जाते थे, आज भी अनेक भडारो मे उपलब्ध होते है।

(२) द्वितीय श्रेणी मे वे वृक्ष हैं जो अपने फूलो से ही जगत् को आनन्द पहुँचाते हैं जुही, मोगरा, गुलाब, चमेली आदि के फूल ही लोगो के काम आते हैं और कई फूलो की रोगापहारिणी शक्ति से अनेक प्रकार के मस्तिष्कशूल समूल नष्ट हो जाते हैं।

(३) तृतीय श्रेणी मे वह वृक्ष गिने जाते हैं जो ससार को अपने अमृत के समान मधुर फल चखाते हैं और दुनिया को परोपकार का सवक सिखलाते है। उन मिश्री के समान मीठे फलो का सेवन करते ही प्राणी का दिल बाग बाग हो जाता है। आपको मालूम ही है कि भिन्न-भिन्न फलो के भिन्न-भिन्न ही गुण हुआ करते है। वे शारीरिक एव मानसिक विभिन्न रोगो मे विभिन्न शक्ति का परिचय देते है।

(४) चौथी श्रेणी मे वह वृक्ष गिने जाते है जो स्वय सूर्य के प्रचण्ड ताप को सहन करते हुए दूसरो को शीतल छाया प्रदान करते है। जब धरती तवे की तरह तप जाती है और आसमान अगारे वरसाता है, तब व्याकुल हुए प्राणी वृक्ष की शीतल छाया का आश्रय लेकर अपूर्व शान्ति का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार एकेन्द्रिय वनस्पतिकाय के जीव भी ससार का महान् उपकार करते हैं। किसी कवि ने कहा है —

रविश्चन्द्रो घना वृक्षा, नदी गावश्च सज्जनाः ।
एते परोपकाराय, युगे दैवेन निर्मिताः ।।

अर्थात्—सूर्य चन्द्रमा, मेघ, वृक्ष, नदी, गौ और सज्जन पुरुष, मानो दैव ने परोपकार के लिए ही बनाये है ।

भगवान् ने उपर्युक्त चार प्रकार के उपकारी वृक्षो की तरह ही चार प्रकार के पुरुष बतलाये है । वह इस प्रकार हैं—(१) कई पुरुष पत्तो के समान, यथाशक्ति वस्त्र आदि का दान करके दरिद्रो का उपकार करते है । (२) कई पुरुष पुष्प के समान बन कर अपने यश-परिमल से जनता का उपकार करते है और दु खी जनो को औषध वगैरह देकर साता उपजाते है । उनकी सेवा-शुश्रूषा मे भी किसी प्रकार की कमी नही होने देते है । (३) कई पुरुष ऐसे है जो अपने पूर्वकृत पुण्योदय से प्राप्त मीठे फलो का दुनिया को भी रसास्वादन कराते है । उन पुण्यशील श्रीमतो के समक्ष जो भी दयनीय दशा वाले प्राणी उपस्थित हो जाते हे, उन्हे वह भोजन कराते है तथा ऐसी किसी आजीविका से लगा देते है कि वे जीवन-निर्वाह मे समर्थ हो जाते है और हमेशा उनका गुण गाया करते है । जो अपने पुण्य का फल दूसरो को न चखाए, उससे बढ कर अभागा भी और कौन होगा ? (४) चतुर्थ उपकारी पुरुष वह है जो अपनी शीतल छाया के समान अपनी करुणा एव सहृदयता प्रयोग करके, अपने आश्रितो के आपसी मनमुटाव, वैर, विरोध को मिटाने तथा उनके हृदय विशुद्ध बनाकर शान्ति पहुँचाने लचस्पी लेते है । ऐसे शूरवीर, धैर्यवान् और शरणागतप्रति-लक ही आश्रित जनो को आश्रय देने मे समर्थ हो सकते है ।

भाइयो ! अभी कहा जा चुका है कि एकेन्द्रिय वनस्पति आदि के जीव भी जब परोपकार करते है, तो पचेन्द्रिय सज्ञी

मनुष्य को तो परोपकार करना ही चाहिए। परोपकार करना मनुष्य का महान् कर्त्तव्य है। मनुष्य को दिन-रात अपने हृदय मे यही भावना अंकित करते रहना चाहिए कि मेरा जन्म नि स्वार्थ सेवा मे व्यतीत हो और परोपकारार्थ प्राणो का विसर्जन करना पडे तो भी परवाह नही। जीवन की सार्थकता, पवित्रता और विशुद्धता परोपकार मे ही है। कहा भी है —

धनानि जीवित चैव, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
तन्निमित्तो वर त्यागो, विनाशे नियते सति ।।

अर्थ—बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह अपनी धनसपत्ति का एव अपने जीवन का भी परोपकार के लिए उत्सर्ग करे। धन और जीवन अनन्त काल तक बने रहने वाले नही हैं। उनका विनाश अवश्यभावी है। एक न एक दिन उन्हे त्यागना ही पडेगा। ऐसी स्थिति मे अगर इनसे पर का उपकार हो सके तो इससे बढ कर और क्या बात हो सकती है? परोपकार मे जो धन लगता है और जो जीवन समाप्त हो जाता है, वही वास्तव मे सार्थक होता है। अपने लिए कौन नही जीता? कुत्ता और कौवा भी अपना पेट भरते है और अन्त मे मर जाते है। इसी प्रकार यदि मनुष्य भी स्वार्थ के लिए जीता रहे और परोपकार मे अपने तन, मन एव धन को न लगावे तो उसमे और कौवा-कुत्ता मे क्या अन्तर रहेगा?

करुणा, प्रेम और सहृदयता के साथ यदि परोपकार करने मे ही अपने जीवन की धन्यता समझोगे तो तुम्हे दिव्य ज्योति प्राप्त होगी और वह ऐसा मार्ग दिखलाएगी कि जिस पर अग्रसर होने से तुम्हारे लिए मुक्तिरथ सुलभ हो जायगा।

एकाग्र होकर जगत् की व्यवस्था पर विचार करो देखो कि इस जगत् मे क्या कोई भी मनुष्य केवल अपने ही सहारे जीवित रहता है ? अथवा उसे दूसरो के सहयोग की भी अनिवार्य आवश्यकता होती है ? विचार करो कि आपको जीवन निर्वाह के लिए तथा आमोद-प्रमोद के लिए जिन-जिन वस्तुओ की आवश्यकता पडी है, वह सब क्या आपने स्वय उत्पन्न कर ली है ? खाने-पीने की समस्त वस्तुएँ, पहनने ओढने और बिछाने के वस्त्र, लिखने-पढने की तमाम सामग्री, रहने के मकान, आदि-आदि के बिना आपका काम नही चल सकता। क्या यह सब वस्तुएँ अपने लिए आप स्वय उत्पन्न कर लेते है ? कोई आदमी कितना भी सामर्थ्यशाली क्यो न हो, वह पूर्णरूपेण स्वावलम्बी नही हो सकता। अपने काम मे आने वाले समस्त साधनो को स्वय निर्माण नही कर सकता।

इस प्रकार जब विचार करते है तो स्पष्ट रूप से समझ मे आ जाता है कि प्रत्येक मनुष्य की जिंदगी दूसरो के सहयोग और उपकार पर निर्भर है। अगर किसी दूसरे का सहयोग प्राप्त न हो तो मनुष्य का जीवन निभ ही नही सकता।

अब मूल बात पर आइए। जब आप अपने जीवन के लिए दूसरो की सहायता लेते है और उस सहायता के अभाव मे जीवित नही रह सकते, तो क्या आपका भी यह कर्त्तव्य नही है कि आप भी दूसरो की सहायता करे ? आपके पास जो भी साधन है और उन साधनो से जो भी परोपकार हो सकता है, आपको अवश्य करना चाहिए। यही आपकी सज्जनता है, यही आपकी प्रामाणिकता है। जो दूसरो से लेता ही लेता है और बदले मे कुछ देता नही है, वह दीवालिया है। वह दुनिया मे हिकारत की निगाह से देखा जाता है। उसे लोग घृणास्पद समझते है। क्या तुम ऐसे बनना चाहते हो ?

भाइयो ! सम्पूर्ण प्रकृति तुम्हे परोपकार का पाठ पढा रही है। जिधर देखो उधर ही परोपकार की प्रधानता दिखाई देती है। देखो —

परोपकाराय फलन्ति वृक्षः,
परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः,
परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥

वृक्ष अपने फल, फूल, पत्ते, छाया आदि के द्वारा जगत् का उपकार करते हैं, नदी, नद, झरने, सरोवर आदि जलाशय प्राणियो को शीतल जल प्रदान करके महान् उपकार करते हैं, गाय भैस आदि दुधारू पशु अमृत के समान दूध पिलाकर आपको जीवन देते हैं। किन्तु इन्ही परोपकारी पशुओ की क्या दशा हो रही है ? इस ओर किसी का तनिक भी ध्यान नही। लोग अपने स्वार्थ की पूर्त्ति मे सलग्न हैं। दूसरो की उन्हे न चिन्ता है, न परवाह है ! दुनिया कैसी तुच्छ भावना को पोषण दे रही है ? वृक्ष, नदी और गाय जैसे भी जब हमारा इतना उपकार कर रहे हैं तो क्या हम मनुष्य-ससार मे सर्व श्रेष्ठ प्राणी-होने का दावा करने वाले इनसे भी गये बीते साबित हो ? क्या हम अपने विवेक का प्रयोग करके, परोपकार के लिए अपने जीवन को अर्पित करके अपनी महत्ता को प्रकट नही कर सकते ? अरे, तुम अधिक नही कर सकते तो जिन्होने तुम पर असीम उपकार किया है, उनके प्रति तो सहानुभूति प्रकट करो ! उनके प्रति कुछ तो कृतज्ञ बनो !

भाइयो ! यह शरीर परोपकार के लिए है। सज्जन पुरुषो का जीवन परोपकार मे व्यतीत होता है। वे परोपकार मे ही अपना

सारा समय लगाते है । जब तक परोपकार का कोई कार्य उनसे न हो जाय, वे चैन नही लेते ।

जो मनुष्य परोपकार नही करता, उसकी अपेक्षा तो पशु ही भला है । पशु जीते जी परोपकार करता है और मरने के पश्चात् भी अपने शरीर के अनेक अवयवो से मानव का कल्याण करता है । किन्तु परोपकार न करने वाले मनुष्य का जीवन किस काम का है ? वह जब जीता है तो दूसरो के काम नही आता और जब मारता है । तो भी काम नही आता । वह पृथ्वी का बोझा मात्र है । उससे जगत को क्या लाभ हुआ ? उसकी जिन्दगी किसी के क्या काम आई ? वह यदि पैदा न होता तो किसी का क्या बिगडता था ? किसी ने ठीक ही कहा है —

तृणञ्चाहं वरं मन्ये, नरादनुपकारिणः ।
घासो भूत्वा पशून्पाति, भीरून्पाति रणाङ्गणे ।।

नीतिकार का कथन है कि जो परोपकार नही करता, ऐसे पुरुष की अपेक्षा तो मैं तिनके को ही अच्छा समझता हू । बेचारा तिनक घास बनकर पशुओ के प्राणो की रक्षा करता है मगर परोपकारहीन मनुष्य किस की रक्षा करता है ? प्राचीन काल मे युद्ध के नियमो मे मे एक नियम यह भी था कि जो योद्धा अपनी हार स्वीकार र लेता था, वह मुँह मे तिनका दबा लेता था । फिर उस पर नही किया जाता था । इस प्रकार युद्धभूमि मे भीरुजनो की ा वह तिनका करता था । अत जो पुरुष किसी की भी रक्षा ही करता, वह तिनके से भी तुच्छ है ।

एक नीतिकार दो कदम आगे बढकर कहते हैं.—

जीवितान्मरणं श्रेष्ठं, परोपकृतिवर्जितात् ।
मरणं जीवितं मन्ये, यत्परोपकृतिमयम् ।।

परोपकार विहीन जीवन की अपेक्षा मरण श्रेष्ठ है और परोपकारी की मृत्यु भी उसका जीवन है ।

परोपकारी पुरुष मर कर भी अमर रहता है, क्योंकि चाहे उसका हाड-मास का शरीर विद्यमान न रहे, परन्तु यश-शरीर तो बना ही रहता है। अतएव ज्ञानीजनो का कहना है कि अपने भविष्य का विचार करो और परोपकार मे सलग्न हो जाओ ।

एक वार राजा अपने सिपाहियो के साथ किसी वाग मे सैर करने के लिए गया । वाग वडा सुहावना था और एक जगह सघन वृक्षावली से मडित था । गहरी और शीतल छाया देख कर राजा ने एक स्थान विश्राम करने के लिए पसन्द किया । गद्दा विछा दिया गया और मसनद लगा दी गई । राजा लेट गया और थोडी ही देर मे निद्राधीन हो गया ।

सयोगवश उधर से एक वटोही निकला । उसके साथ एक कपडे मे वँधी कुछ रोटियाँ थी, परन्तु कोरी रोटी तो निगली नही जाती और वटोही के पास ऐसी कोई चीज नही थी जिसके सहारे वह रोटियो को गले मे डाल लेता । अतएव वह एक आम के वृक्ष के नीचे वैठ गया । आम के वृक्ष और राजाजी के विश्राम स्थान के वीच आड थी । वह जहाँ वठा था, वहाँ से राजा दिखाई नही देता था । मगर आम का वृक्ष विशाल था । उसका कुछ भाग वटोही के ऊपर और कुछ भाग राजा के ऊपर था । पथिक को स्वप्न मे भी यह खयाल न था कि दूसरी ओर राजा विश्राम कर रहा है ।

पथिक ने विचार किया—एक दो आम गिरालूँ तो इनके साथ रोटियाँ खाने मे सुभीता रहेगा। यह विचार कर उसने आम के एक पत्थर दे मारा। भाग्ययोग से वह पत्थर राज के ऊपर जाकर पडा। राजा सहसा चौक कर उठ बैठा। उसने हडबडाकर कहा—'जिसने यह पत्थर फेंका है उसे मुश्के बाँध कर मेरे सामने हाजिर करो।'

राजा का हुक्म होने की देर थी कि सिपाही दौडे और उस पथिक को पकड कर ले आए। राजा ने उससे पूछा–ऐ मुसाफिर! तू ने मुझको पत्थर क्यो मारा ?

राहगीर ने कहा—पृथ्वीनाथ! आप मेरे अन्नदाता है। मेरी क्या हैसियत कि श्रीमान् को पत्थर मारने का साहस कर सकूँ ?

राजा—क्या तुमने यह पत्थर नही फेंका ?

राहगीर—महाराज, फेंका तो मैंने ही है। झूठ कैसे बोलूँ ?

राजा—तो फिर पत्थर मारने से मुकरता है।

राहगीर—हुजूर, पत्थर मैंने फेंका था, परन्तु आपको मारने के लिए नही ?

राजा—तो किसलिए ?

राहगीर—मैं एक दो आम गिरा कर उनके साथ रूखी रोटियाँ खा लेना चाहता था। मुझे नही ज्ञात था कि इधर श्रीमान् विराजमान हैं। अनजान मे मुझसे अपराध बन गया है। क्षमा चाहता हूँ।

यह कह कर राहगीर ने अपने साथ की रोटियाँ राजा को दिखलाई। राजा ने मन ही मन विचार किया–यह बेचारा गरीब है। सर्वथा निर्दोष है। अनजान मे इससे यह बन गया है।

राजा की विचारधारा जरा दूसरी तरफ चली गई। वह सोचने लगा-आम की विशेषता देखिए कि पत्थर मारने वाले को वह मधुर फल प्रदान करता है। मैं पत्थर मारने वाले को मधुर फल तो दूर रहे, उलटा दड देने को तैयार हुआ हूँ। क्या मैं वृक्ष से भी गया-वीता हू ? मैं मनुष्य और फिर मनुष्यो मे भी राजा हू। नरनाथ कहलाता हूँ। क्या मेरे लिए यही उचित है।

राजा की उच्च भावना वढी। उसने राहगीर को एक हजार रुपया पारितोषिक रूप मे दिये। फिर कहा-भाई, यदि तूने पत्थर न फैंका होता तो मेरे अन्त.करण मे परोपकार की भावना उत्पन्न नही हुई होती। मैं तेरा आभारी हूँ।

भगवान् का आदेश है कि यदि तुम परोपकार न कर सको तो कम से कम परोपकार की भावना अन्त.करण मे अवश्य रक्खो। जव वृक्ष भी परोपकार करते हैं तो आपको तो परोपकार का खजाना यह शरीर मिला है। आप छोटे से लेकर वडा परोपकार भी कर सकते हैं। ऐसी सुन्दर और अनुकूल स्थिति पा करके भी अगर कुछ परोपकार न कर सके तो किस काम आया आपका यह उत्तम कहलाने वाला जीवन ? अद्भुत आभा से जाज्वल्यमान यह रत्न वडी कठिनाई से मिला है, इसको तिजोरी मे वन्द करके न रक्खो. वेकार मत वनाओ, वल्कि दिव्य प्रकाश से समस्त संसार को प्रभासित करो। इसी मे तो इस शरीर की सार्थकता है। अन्यथा इनसे क्या लाभ उठाओगे।

परोपकार करना ही सज्जन पुरुषो का आभूषण है। मनुष्य की अनलो महिमा और श्रेष्ठता तो परोपकार से ही है। आभूषण पहन कर वाजार मे निकलने वालो की अपेक्षा परोपकारी पुरुष

अधिक प्रतिष्ठा के पात्र होते हैं। उनकी प्रतिष्ठा वास्तविक और स्थायी होती है।

एक बार बाईसवे तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी मे पधारे। कृष्ण महाराज प्रात:कालीन समस्त कृत्यो से निवृत्त होकर और स्वच्छ वस्त्रो एव आभूषणो से विभूषित होकर हाथी के हौदे पर सवार हो, सेना सहित भगवान् के दर्शन करने और उनकी अमृतवाणी को श्रवण करने के लिए चले। मार्ग मे उन्हे एक वृद्ध दिखाई दिया। उसके हाथ-पैर थर-थर काप रहे थे। सिर काँप रहा था। अत्यन्त कृशकाय था। शरीर का मास सूख चुका था। केवल हड्डियाँ और चमडी ही शेष रह गई थी। एकदम जराजीर्ण था। वह वृद्ध पुरुष एक ईंट उठाकर अपने घर मे ले जा रहा था।

श्रीकृष्णजी महापुरुष थे। वृद्ध की यह दयनीय दशा देखकर उनका दयामय हृदय द्रवित हो गया। वह सोचने लगे—इस बेचारे के लिए अपना शरीर ही भार रूप हो रहा है, तिस पर ईंट का भार है! और फिर एक ईंट से क्या होगा? यह सामने वाला ईंटो का ढेर यह कब ढोएगा? बेचारा वृद्ध परेशान हो जायगा!

यह सोचकर श्रीकृष्ण महाराज हाथी के हौदे से नीचे उतरे। उन्होंने ईंटो के ढेर के पास जाकर एक ईंट उठाई और ले जाकर वृद्ध के घर मे रख दी।

कृष्णजी का ईंट उठाना था कि सब सैनिक उस ढेर पर ऐसे पिल पडे जैसे मक्खियाँ गुड़ की भेली पर! बात की बात मे ढेर उठ गया।

श्रीकृष्णजी तीन खण्ड के नाथ थे। विपुल वैभव के अधीश्वर और अपने युग के असाधारण महिमाशाली नरेश्वर थे। किन्तु कितने दयालु और कितने परोपकारी!

अगर आप सुन्दर वस्त्र पहन कर कही जा रहे हो और रास्ते मे आपको ऐसा बूढा मिल जाय तो क्या आप इसी प्रकार उसकी सहायता करेगे? अजी, आप ऐसा करने मे अपने मान की हानि समझेंगे, अपनी प्रतिष्ठा को धब्बा लगना समझेंगे और सोचेंगे कि कही मेरे कपडो मे दाग न लग जाय! लेकिन तीन खड के अधिपति को ऐसा विचार नही आया! बूढे की सहायता करने मे उन्होने प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचने का विचार नही किया! उनके इस कार्य से वास्तव मे उनके गौरव की वृद्धि हुई। हजारो वर्षों के पश्चात् आज भी उनके सेवाभाव की सत्पुरुष सराहना करते हैं।

बहुत वार लोग प्रतिष्ठा का मापदण्ड ही गलत बना लेते हैं और उसी से अपनी प्रतिष्ठा को नापते है। यही कारण है कि वे भूल पर भूल करते ही चले जाते हैं। जिसमे सचमुच जीवन की ऊँचाई है, जिसने उच्चता के हिमशिखर को पा लिया है, उसका जीवन तो सेवा-सहायता के क्षुद्र से क्षुद्र कार्य करने पर भी क्षुद्र नही बनता। यही नही, वरन् ऐसे कार्य करने से उसके जीवन की ऊँचाई और अधिक बढती है।

श्रीकृष्णजी बनावटी—काल्पनिक उच्चता के धनी नही थे, उनमे सच्ची उच्चता थी। इसी कारण उन्होंने बूढे की सेवा करने मे अपनी हेठी नही समझी। जो लोग काल्पनिक प्रतिष्ठा के मोह मे फँसे होते हैं, उन्ही के हृदय मे ऐसे नीच विचार आते है।

भाइयो ! इसी सिलसिले मे एक प्रश्न पर और विचार कर ले। प्रश्न यह है कि कृष्णजी के साथ विपुल सैन्यदल था। क्या वे अपने सैनिको को आदेश देकर बूढे की ईटे नही उठवा सकते थे ? क्या किसी भी सैनिक या सेनाधिकारी मे उनके आदेश को उल्लघन करने का साहब था ? नही। तो फिर स्वय हाथी के होदे से नीचे उत्तर कर ईंट उठाने की आवश्यकता क्यो पडी ? उन्होने आज्ञा देकर सैनिको से ईटे क्यो नही उठवा दी ?

भाइयो ! श्रीकृष्णजी के ऐसा करने मे गम्भीर रहस्य छिपा हुआ है। इसमे तो कोई सन्देह नही कि कृष्णजी का आदेश अनुल्लघनीय था। कोई उसे शिरोधार्य करने मे ननु नच नही कर सकता था। वृद्ध पुरुष की ईटे भी उठ जाती और उसकी परेशानी भी बच जाती। मगर कृष्णजी ने स्वय ईट उठाकर सेवा और परोपकार का युग-युग जीवित रहने वाला और प्रकाशस्तभ के समान जन-जन को पथप्रदर्शन करने वाला जो महान् स्पृहणीय आदर्श खडा कर दिया, वह न होता ? सेवा और परोपकार के जीवित आदर्श को उपस्थित करने के उद्देश्य से ही उन्होने अपने हाथ से ईट उठाई। महा पुरुष स्वय आचरण करके मर्यादाओ की स्थापना करते हैं। कर्मवीर कृष्णजी ने स्वय ईट उठाकर रोपकार को महत्ता प्रदान की और झूठी प्रतिष्ठा के भ्रम मे पडे ए लोगो को कधा झकझोर कर सजग कर दिया है।

दूसरी आशका यह की जा सकती है कि यदि परोपकार करना इतना उच्चकोटि का कर्त्तव्य है तो साधु-मुनि परोपकार क्यो नही करते ? इसका उत्तर यह है कि साधु परोपकार नही करते, यह कहना ही भ्रमपूर्ण है। साधु शब्द की व्युत्पत्ति ही यह है.—

साधयति पर कार्याणीति साधुः ।

अर्थात्—जो पराये कार्य को सिद्ध करे, जो पर का उपकार करे वह साधु है ।

हां, यह बात सदैव ध्यान मे रखनी चाहिए कि गृहस्थ जीवन और साधुजीवन की मर्यादाएँ पृथक्-पृथक् हैं । अतएव जिस प्रकार का उपकार गृहस्थ कर सकते हैं, उसी प्रकार का सब उपकार साधु नही कर सकते । गृहस्थ गृहागत प्यासे को सचित्त जल भी पिला देता है, क्योंकि उसने सचित्त जल का सेवन करने की मर्यादा अ गीकार नही की है । वह स्वय सचित्त जल का उपयोग करता है । परन्तु साधु अपने स्वय के लिए भी सचित्त जल का प्रयोग नही कर सकते, क्योंकि उन्हे जलकाय के जीवो की हिंसा का मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग किया है । ऐसी स्थिति मे वे किसी दूसरे को भी सचित्त जल नही पिलाएँगे । साराश यह है कि अपने-अपने जीवन की स्थिति के अनुकूल मर्यादाएँ होती है । उन मर्यादाओ का सरक्षण करते हुए ही प्रत्येक को चलना होता है ।

इस प्रकार जो परोपकार साधु जीवन की मर्यादाओ का विरोधी नही है, वही परोपकार साधु करते है । गृहस्थ के लिए भी यह बात है । उसने अपने जीवन की पवित्रता के लिए जो धार्मिक मर्यादाएँ अ'गीकार करली हैं उनको भग न करते हुए ही वह परोपकार करेगा । उदाहरणार्थ-गृहस्थ श्रावक चोरी और डकैती का त्यागी होता है । उधर दान देना भी उसका कर्त्तव्य है । तो क्या दान देने के लिए वह चोरी करे या डकैती करे ? नही । ऐसा करने से उसकी मर्यादा का लोप हो जायगा । उसके जीवन की पवित्रता का आधार ही हिल जायगा ।

तो जिस प्रकार दान देना श्रावक का कर्त्तव्य है, परन्तु वह चोरी करके दान नही दे सकता, ऐसा करना उसके लिए योग्य नही है, उसी प्रकार परोपकार करना साधु का कर्त्तव्य है, परन्तु वह अपने साधु जीवन की मर्यादाओ का लोप न करता हुआ ही परोपकार करता है।

परोपकार के यो तो अनेक दृष्टियो से अनेक भेद किये जा सकते हैं, परन्तु मोटे तौर पद दो भेद करने से ही यहाँ हमारा काम चल जायगा। वह दो भेद है—(१) द्रव्यपरोपकार और (२) भावपरोपकार। भोजन, वस्त्र, औषध आदि भौतिक वस्तुओ के दान से जो भी उपकार होता है, वह द्रव्यपरोपकार कहलाता है और ज्ञान, दर्शन एव चारित्र के द्वारा जो उपकार किया जाय वह भावपरोपकार है। द्रव्यपरोपकार से शरीर का उपकार होता है जब कि भावपरोपकार से आत्मा का।

दूसरी बात यह है कि द्रव्य-उपकार से कदाचित् अनिष्ट न हुआ और उपकार्य को शांति भी पहुँची, तो भी वह शान्ति शाश्वत शान्ति नही होगी। एक बार भोजन करा देने से भूखे की भूख सदा के लिए नही मिट जायगी। वह प्रात काल तृप्त होकर भोजन करेगा तो सध्या को फिर भूखा हो जाएगा। एक बार औषध देकर रोगी को रोगमुक्त कर देगे तो वह अनन्त काल के लिए नीरोग हो जाएगा। अनन्त काल की बात जाने दीजिए, यह भी नही कहा जा सकता कि वह जिदगी भर के लिए रोगहीन हो जाएगा।

इस दृष्टि से विचार किया जाता है तो स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्य उपकार न तो एकान्त उपकार है और न आत्यन्तिक उपकार ही है। किन्तु भाव-उपकार के सबध मे यह बात नही है।

भाव-उपकार आत्मा के लिए कल्याणकारी होता है। यह उपकार एकान्त और आत्यन्तिक उपकार है। ज्ञान, दर्शन एव चारित्र के द्वारा होने वाला उपकार कदापि अनिष्ट का कारण नहीं हो सकता और वह द्रव्य-उपकार की तरह अल्पकालस्थायी भी नही होता। उससे आत्मा का स्थायी और शाश्वत कल्याण होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्रव्य-उपकार की अपेक्षा भाव-उपकार अधिक उत्तम और कल्याणकारी है। सन्तजन धर्म का उपदेश देकर जनता का आत्म-उपकार करते हैं। यही असली और श्रेष्ठ उपकार है। अतएव यह कहना गलत है कि साधु परोपकार नही करते।

उपर्युक्त विवेचन मे द्रव्य और भाव उपकार की तुलना मात्र की गई है और दोनो की भिन्नता दिखलाई गई है। इसका आशय यह न समझा जाय कि द्रव्य-उपकार का निषेध किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी-अपनी योग्यता, मर्यादा, शक्ति और सुविधा के अनुसार जो भी उपकार कर सकता हो, अवश्य करे और पुण्य का उपार्जन करे।

श्रीकृष्ण महाराज की तरह अभिमान का परित्याग करके आप परोपकार करेंगे तो आपका जीवन भी प्रशस्त, उत्तम और धन्य बन जाएगा और आनन्द ही आनन्द हो जाएगा।

ब्यावर
२५-३-४१]
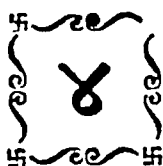
:: चिर विश्राम ::

❀❀❀❀❀

स्तुति

उन्निद्रहेमनवपंकजपुञ्जकान्ति—
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज मति है—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

भगवान् ऋषभदेव जब इस भूमण्डल पर विचरण कर रहे थे तो देवगण भगवान् की सेवा मे उपस्थित रहते थे। भगवान जब गमन करते थे तो उनके चरणो के नीचे, पृथ्वी पर देवता स्वर्ण-कमल के अचित्त पुष्पो की रचना करते थे ।

गुणो और उत्तर गुणो का निरतिचार पालन करना, निरन्तर ज्ञानाभ्यास करना, ससार के प्रति आसक्ति का भाव न रखना, शक्ति के अनुसार तपश्चरण करना, मुनिराजो की यथायोग्य सेवा करना, अर्हन्त, आचार्य, श्रुतज्ञानी की भक्ति करना, सदा काल नियमित रूप से आवश्यकक्रिया करना, वीतराग धर्म की प्रभावना करना और साधर्मी जनो के प्रति वात्सल्य का भाव रखना। इत्यादि बीस कारणो मे से सभी कारण हो या अधूरे हो, यहाँ तक कि एक भी कारण हो, लेकिन यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तभी यह प्रकृति बँधती है। तीर्थंकर प्रकृति का बँधना कोई आसान काम नही है। कई भवों की लगातार आत्मसाधना के सस्कार सचित होकर जब उद्‌बुद्ध होते हैं तभी इसका बध होता है।

भाइयो! अगर आपको उत्कृष्ट पुण्य का सचय करना है तो धर्मक्रिया से विमुख न होकर सदैव रुचि एव प्रीतिपूर्वक उसका सेवन करना चाहिए। ऐसा करते-करते किसी समय उत्कृष्ट रसायन आ जाएगी तो आपकी आत्मा मोक्ष की अधिकारिणी बन जाएगी।

धर्म ही इह लोक और परलोक मे सुख देने वाला है। अतएव उसकी रक्षा बडी सावधानी से करना चाहिए। मैं कई वार कह चुका हूँ कि मनुष्य का जन्म ही धर्म की आराधना के लिए सब से अधिक उपयुक्त है। अतएव इस अनमोल को व्यर्थ नही गँवा देना चाहिए। इसकी पूरी और अच्छी त बाँटनी चाहिए।

श्रीठाणागसूत्र मे भगवान् ने चार प्रकार के विश्राम बतलाए है। किसी कार्य को करते समय बीच मे थकावट दूर करने और ताजगी लाने के लिए जो आराम किया जाता है, उसे विश्राम करते है। चार विश्रामो का स्वरूप इस प्रकार है :—

(१) मान लीजिए कि कोई पुरुष वजन लेकर चला। रास्ते मे थक गया। तब उसने एक कधे से दूसरे कधे पर वजन ले लिया। ऐसा करने से उसे कुछ विश्रान्ति मालूम पडती है। यह पहला विश्राम है।

(२) वही पुरुष वजन को नीचे रख कर लघुशका या दीर्घ-शका करने चला जाता है। इस बीच उसे जो विश्राम मिलता है, दूसरा विश्राम कहलाता है।

(३) भारवाही पुरुष किसी देवालय, धर्मशाला या सराय के पास पहुँच कर विचार करता है कि रात भर यही ठहर कर प्रातःकाल इस वजन को आगे ले जाऊँगा। ऐसा सोच कर वह रात भर यही विश्राम करता है। यह तीसरा विश्राम है।

(४) वजन ढोने वाला अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँच जाता है और वहाँ भरा उतार कर फिर जो विश्राम करता है, वह चौथा विश्राम है।

यह चार प्रकार का विश्राम प्रत्येक प्राणी ले सकता है, क्योंकि वजन गाँव से शहर अथवा शहर से गाँव तक ही ले जाया जाता है। उसे ले जाना अथवा न ले जाना या बीच मे ही छोड देना मनुष्य की अपनी इच्छा पर निर्भर है।

किन्तु अनादि काल से जन्म-मरण के चक्र मे घूमने वाले अज्ञानी जीव को विश्राम मिलना बडा ही कठिन है। इस वजन से विश्राम पाने के लिए जीव को अपनी इच्छाशक्ति का निरोध करके सरल और तीव्र तपश्चर्या करनी होगी। तभी कही शान्ति प्राप्त हो सकती है। ऐसा किये बिना तो चौरासी का चक्कर बद होगा नही।

अपने स्वरूप को न पहचान ने के कारण और विभाव परिणति मे परिणत हो कर इस आत्मा ने ससार की सभी योनियो मे जन्म धारण किया है। कोई ऐसी योनि नही वची और लोकाकाश का ऐसा कोई भूभाग शेप नही रहा, जहाँ अनन्त-अनन्त वार इस आत्मा ने जन्म न ग्रहण किया हो और मृत्यु की भयावह वेदना न भुगती हो। कहा भी है —

न तद् दुःखं सुखं किञ्चिन्न पर्यायः स विद्यते,
यत्र ते प्राणिनः शश्वद्यातायातैर्न खण्डिताः ।
स्वर्गी पतति साक्रन्दं, श्वा स्वर्गमधिरोहति,
श्रोत्रियः सारमेयः स्यात् कृमिर्वा श्वपचोऽपि वा ।।

ससार मे असख्य प्रकार के दु ख है और असख्य ही प्रकार के सुख भी है। मगर ऐसा कोई सुख-दु ख शेष नही रहा, जिसे इस जीव ने न भोगा हो। ऐसी कोई पर्याय भी नही है जिसमे यह न रह चुका हो। यह आत्मा सर्वत्र आवागमन कर चुका है। स्वर्ग का देवता चीखता-चिल्लाता हुआ पतन के गर्त्त मे गिरता है और कुत्ता मर कर देव हो जाता है। बडा भारी क्रियाकाण्डी कुत्ते के रूप मे जन्म ले लेता है, कीडा बन जाता है या चाण्डालयोनि मे हो जाता है ।

पारमार्थिक दृष्टि से देखा जाय तो ससार भाति-भाति के दुखो का घर है। यहाँ किसी भी प्राणी को वास्तविक सुख नही है। प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी परिस्थिति मे दुखी ही दिखाई देता है। किसी से भी पूछ लो कि—भाई! तुम पूरी तरह सन्तुष्ट और सुखी हो ? किसी प्रकार के दु ख का काँटा तो हृदय मे नही साल रहा है ? इस प्रकार प्रश्न करने पर निश्चय

है। इस विषय मे गहराई से विचार करेगे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि सभी दुख का शिकार हो रहे है। किसी को सुख नही, शान्ति नही, सन्तोष नही। तत्त्वज्ञानी पुरुष इस रहस्य को सम्यक् प्रकार से समझते हैं। इसी कारण वे ससारी जीवो के दु ख से द्रवित होकर उन्हे सावचेत करते है और मोह की नीद से जगाते हैं। वे कहते है—

जन्म दुःखं जरा दुःखं, मृत्युदुःखं पुनः पुनः ।
संसार सागरे दुःखं, तस्माजागृत जागृत ।।

इस ससार रूपी सागर मे जन्म लेना दु ख है, जरा दु ख रूप है और मौत तो दु ख रुप है ही। फिर वह दुःख एक बार हो सो बात नही है। वार बार इन दु खो की आवृत्ति होती ही रहती है। सार यह है कि ससार दु खमय है। अतएव हे भव्यो ! जागो, जागो, मोह की निद्रा का परित्याग करो और इन दु.खो से छुटकारा पाने का यत्न करो।

भाइयो ! ससार दु खो और उपद्रवो का घर है, यह एक ऐसा सत्य है कि इसके लिए किसी की साक्षी की आवश्यकता नही। आपका निज का अनुभव ही साक्षी स्वरूप है। मनुष्य और यञ्च गतियो की हालत तो आप प्रत्यक्ष ही देख रहे है। फिर भी ाप माया जाल से बाहर निकलने का यत्न नही करते ?

याद रखो, जो व्यक्ति माया मे जितना ही अधिक फँसा हुआ है, वह उतना ही अधिक दु खी है। कई लोग दु खो से छूटना तो चाहते है परन्तु छूटने का सच्चा उपाय न करके उलटा उपाय करते है। परिणाम यह आता है कि जैसे दलदल मे फँसा

हुआ मनुष्य ज्यो-ज्यो बाहर निकलने के लिए हाथ पैर फड़फडाता है, त्यो-त्यो और अधिक फँसता जाता है, वैसे ही अज्ञानी जीव भी दु खो से मुक्त होने के प्रयत्न मे और अधिक दु खो का निर्माण कर लेते हैं। कई अविवेकी तो दु ख से छुटकारा पाने के उद्देश्य से जहर खाकर आत्मघात कर लेते हैं। कई रेल के नीचे आकर प्राण विसर्जन कर देते हैं और कई जलाशय मे डूब कर मर जाते हैं। ऐसे लोग समझते है कि वर्तमान स्थूल शरीर का त्याग कर देने से ही दु खो से छुटकारा मिल जाएगा। परन्तु वे गम्भीर भ्रम मे है। दु खो का मूल कारण यह स्थूल शरीर नही है बल्कि कार्मण शरीर है जो सूक्ष्म है और इस दिखाई देने वाले शरीर का त्याग कर देने पर भी नहीं छूटता। वह तो बीज के रूप मे मरने के बाद भी आत्मा के साथ रहता है और उसकी विद्यमानता मे नये सिरे से फिर स्थूल शरीर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार इस शरीर का विसर्जन कर देने पर भी कोई लाभ नहीं हो सकता। बल्कि आत्मघात करने वाले दु खो के और अधिक गहरे गर्त्त मे गिरते है, जो शायद नरककुण्ड से कम गहरा नही होता। हाँ, दु खो से बचने के लिए अगर शरीर को ही नष्ट करना है तो उस शरीर का नाश करो जो समस्त दु खो का मूल है, जो तमाम मुसीबतो की जड है और जिसे जिनेन्द्र देव ने कार्मण शरीर कहा है। उसका एक बार भी अगर नाश कर सके तो सदा के लिए सब कष्टो से मुक्ति मिल जायगी।

कार्मण शरीर कर्मों का पिण्ड है। उसका नाश करने का सरल उपाय शीलव्रत को धारण करना है। यही कारण है कि सूत्र-कार ने पहला भावविश्राम शीलव्रत को धारण करना ही बतलाया है।

शीलव्रत सब व्रतो का प्राण है। उसके सद्भाव से सभी

व्रत ठहर सकते है, परन्तु अभाव मे कोई भी व्रत नही ठहर सकता श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन मे बतलाया गया है कि नाना प्रकार के शील का पालन करने वाले देवगति को प्राप्त होते है। वे वहाँ बडे तेजस्वी होते हैं और अत्यन्त उत्तम होते है। उन्हे दिव्य कामभोगो की प्राप्ति होती है। इच्छानुसार अपना रूप बनाने मे समर्थ होते हैं। अति दीर्घकाल पर्यन्त वे स्वर्गीय सुखो का उपभोग करते है।

देवगति की आयु जब पूर्ण हो जाती है तो उन्हे मनुष्यगति की प्राप्ति होती है। मनुष्य भी साधारण नही, अपितु दस प्रकार की समृद्धि से युक्त होते हैं। उन्हे क्षेत्र (खेत), रहने के लिए महल, मकान, सोना-चादी, गाय-भैस आदि पशुधन, नौकर-चाकर, इष्ट रूप रस गध स्पर्श और पौरुष की प्राप्ति होती है। उनके अनेक मित्र सहायक होते है, उत्तम जाति की प्राप्ति होती है, उच्च गोत्र मिलता है, शरीर सौन्दर्य प्राप्त होता है। वे नीरोग, बुद्धिशाली, कुलीन और यशस्वी होते है। इस प्रकार की विशेषताओ से युक्त होकर वे अपनी आयु के अनुसार अनुपम भोग भोगते हैं और फिर बोधिलाभ करके ससार का त्याग करके सयम पालते हैं। तपस्या के द्वारा समस्त कर्मो का नाश करके शाश्वत सिद्ध हो जाते हैं।

शीलव्रती का भविष्य कैसा निर्मित होता है, यह समझने के लिए शास्त्र के इस कथन पर आपको ध्यान देना चाहिए। इस कथन से स्पष्ट है कि शीलव्रती लौकिक सुख भी पाता है और अन्त मे लोकोत्तर सुखो का भी भाजन बनता है। अल्पकालस्थायी मनुष्य पर्याय मे शील का पालन करने से सागरोपमो तक की आयु वाले देवभव मे अपूर्व लौकिक सुख भी मिलते है और मोक्ष भी प्राप्त होता है। यह है शील का महान् प्रभाव !

जिस कार्य से शीतलता की प्राप्ति हो, वही शीलव्रत है। जो कुशील का सेवन न करता हुआ सुशीलता को धारण करता है, वह सहज ही आवागमन की परम्परा रूप भवाटवी को उल्लंघन करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

संसार में अष्ट कर्मों का जाल फैला है। उस जाल को काट कर शीलव्रती ही सकुशल बाहर निकलता है।

जैनशास्त्रों में शील की महिमा बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में वर्णन की गई है शील का अर्थ भी बहुत व्यापक लिया गया है। उसके चौरासी हजार भेद बतलाए गये हैं और सभी प्रकार के चारित्र का समावेश शील में ही किया गया है। कहा भी है—

शीलं नाम नृणां कुलोन्नतिकरं शीलं परं भूषणम्
शीलं चाशु करोति पावकजलं शीलं सुगत्यावहम्।
शीलं दुर्गतिनाशनं च विपुलं शीलं यशःपावनम्,
शीलं निर्वृतिहेतुरेव परमं शीलं तु कल्पद्रुमः॥

अर्थात्—शीलधर्म मनुष्यों के कुल को उन्नत करने वाला है—कुल की प्रतिष्ठा की वृद्धि करता है, शील सब से श्रेष्ठ आभूषण है। शील के प्रभाव से शीघ्र ही अग्नि भी जल बन जाती है। शील परभव में सुगति का दाता है और दुर्गति का विनाश करने वाला है। शील पालन करने का यश बड़ा ही पावन होता है। शील से ही मुक्ति प्राप्त होती है। कहां तक शील की महिमा का वर्णन किया जाय? थोड़े शब्दों में यों कहना चाहिये कि शील कल्पवृक्ष के समान है। जैसे कल्पवृक्ष सभी मनोवांछित और अभिलषित पदार्थों का दाता है, इसी प्रकार शील से भी सभी इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

वास्तव मे देखा जाय तो इस अखिल भूमण्डल मे शील से बढकर और कुछ भी नही हैं। शील ही हमारा बन्धु है, शील ही हमारा मित्र है, शील ही हमारी माता और शील ही हमारा पिता है।

शील सम्पन्न पुरुष मे अद्भुत और आश्चर्यजनक बल आ जाता है। तीन लोक की समग्र शक्ति पुंजी भूत होकर भी शील-वान् का बाल भी बांका नही कर सकती। कहा भी है —

शीलेन रक्षितो जीवो, न केनाप्यभिभूयते।
महाह्रदनिमग्नस्य, कि करोति दवानल.॥

जिस मनुष्य की रक्षा शील करता है वह किसी से अभिभूत नही हो सकता। उसका कोई कुछ भी नही बिगाड सकता। जसे सरोवर मे डुबकी लगाने वाले की दावानल कोई हानि नही कर सकता, उसी प्रकार शील जिसकी रक्षा कर रहा, उसका कोई कुछ भो तो नही बिगाड सकता।

शील वह दिव्य और अमोघ कवच है, जिसे धारण कर लेने पर शत्रुओ के समस्त आक्रमण विफल हा जाते है।

शील रूपी कुसुम के आमोद मे अपूर्व मादकता होती है। ।ल का सौरभ दिगदिन्त मे प्रसृत हो जाता है। उसकी पावनी ुगन्ध से ससार पवित्र बन जाता है।

जिस शील की ऐसी अमित महिमा है, जिसके प्रभाव से देवता भो किंकर बन जाते है प्रकृति भी अपना प्रतिकूल रूप पलट कर अनुकूल बन जाती हैं, जो ससार मे सब से प्रबल सहायक है, जो जीवन का सार है और जिसके अभाव मे जीवन का मूल्य

शील कोटि के समान भी नहीं हैं, जिसके द्वारा जीवन में अनिर्वचनीय तेजोराशि प्रस्फुटित होती है और जो सभी इष्ट वस्तुओं का देने वाला है, उस शील को किन शब्दों द्वारा प्रकट किया जाय ? क्या कह कर उसके स्वरूप को प्रकाशित किया जाय ? सच तो यह है कि शील के समस्त अंगों का वर्णन करना संभव नहीं है, तथापि उसके कुछ अंगों का निर्देश इस प्रकार किया गया है —

अद्रोहः सर्वभूतेषु, कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानञ्च, शीलमेतद्विदुर्बुधा. ॥

अर्थात्--ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि विश्व के किसी भी प्राणी के प्रति द्रोह का भाव उत्पन्न न होना, सब के ऊपर अनुग्रह की बुद्धि रखना और यह सब भी मन, वचन और काय से होना तथा दान देना शील का स्वरूप है ।

प्रश्न हो सकता है कि किसी जीव विरुद्ध कोई प्रवृत्ति न करना तो निषेध मात्र है। क्या शील का स्वरूप अभावात्मक ही है? यह तो बतला दिया गया है कि प्राणी के प्रतिकूल व्यवहार न करना शील है, परन्तु कुछ विधान भी तो करना चाहिए! अर्थात् शील पालने के लिये कुछ करना भी पडता है या नही? इसका उत्तर देने के लिये कहा है :—

अनुग्रहश्च दानश्च।

अर्थात्—प्राणी मात्र पर अनुग्रह-अनुकम्पा करना और दान करना भी शील का स्वरूप है।

अनुग्रह का दायरा भी बहुत विशाल है। शक्ति के अनुसार दूसरो की सेवा-शुश्रूषा करना, सहायता करना, उनके सकट को दूर करना किसी के सामने कोई विषम परिस्थिति हो तो उसे सम बनाना, उसकी असुविधाओ को दूर करना, कोई किसी भ्रम या लालच मे पडकर सन्मार्ग का परित्याग करके कुमार्ग मे जा रहा हो तो उसे समझा-बुझा कर पुनः सन्मार्ग पर लाना, अज्ञानी के अज्ञान का निवारण करके उसे ज्ञान की ज्योति प्रदान करना, रोगी को निरोग बनाने के लिये प्रयत्न करना, उसे आत्मकल्याण का पथ दिखलाना, तात्पर्य यह है कि जिस प्रयत्न से किसी प्राणी को सुख साता और शान्ति प्राप्त हो ऐसा कोई भी प्रयत्न करना अनुग्रह अन्तर्गत है।

जब मनुष्य की समस्त शक्तिया परोपकार मे लग जाती है, दूसरो की भलाई के लिए जब वह अपने जीवन को पूरी तरह अर्पित कर देता है और अपनी आत्मा को ऊचा उठाने के उद्योग मे सलग्न होता है तब उसमे शील का अपने-आप विकास हो जाता है।

दान के स्वरूप को बतलाने के लिए तीसरी बात बतलाई गई है दान। दान के सम्बन्ध मे जितना कहा जाए उतना ही थोड़ा है। दान से इस लोक मे यश का प्रसार होता है और ममत्व का त्याग होने से आत्मा का कल्याण होता है। दान परम वशीकरण मन्त्र है। दान के प्रभाव से वैरी भी बन्धु बन जाते हैं। अतएव भारतवर्ष के सभी धर्म एक स्वर से दान की महिमा प्रकाशित करते है। इस देश मे प्राचीनकाल मे बड़े से बड़े दानी हो चुके है, जिन्होने दूसरो के कल्याण के लिये अपने जीवन को देने मे भी सकोच नही किया।

इस प्रकार किसी प्राणी के साथ द्रोह या वैर - विरोध न करना निवृत्ति है और अनुग्रह करना तथा दान करना प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति और निवृत्ति के मेल मे शील का स्वरूप परिपूर्ण होता है। शील रूपी रथ के यह दो चक्र है। इन्ही से शील-रथ अग्रसर होकर शीलवान् को अपने लक्ष्य तक पहुँचाता है।

प्रश्न हो सकता है कि किसी जीव विरुद्ध कोई प्रवृत्ति न करना तो निषेध मात्र है। क्या शील का स्वरूप अभावात्मक ही है ? यह तो बतला दिया गया है कि प्राणी के प्रतिकूल व्यवहार न करना शील है, परन्तु कुछ विधान भी तो करना चाहिए ! अर्थात् शील पालने के लिये कुछ करना भी पडता है या नही ? इसका उत्तर देने के लिये कहा है :—

अनुग्रहश्च दानश्च ।

अर्थात्—प्राणी मात्र पर अनुग्रह-अनुकम्पा करना और दान करना भी शील का स्वरूप है।

अनुग्रह का दायरा भी बहुत विशाल है। शक्ति के अनुसार दूसरो की सेवा-शुश्रूषा करना, सहायता करना, उनके संकट को दूर करना किसी के सामने कोई विषम परिस्थिति हो तो उसे सम बनाना, उसकी असुविधाओ को दूर करना, कोई किसी भ्रम या लालच मे पडकर सन्मार्ग का परित्याग करके कुमार्ग मे जा रहा हो तो उसे समझा-बुझा कर पुनः सन्मार्ग पर लाना, अज्ञानी के अज्ञान का निवारण करके उसे ज्ञान की ज्योति प्रदान करना, रोगी को निरोग बनाने के लिय प्रयत्न करना, उसे आत्मकल्याण का पथ दिखलाना, तात्पर्य यह है कि जिस प्रयत्न से किसी प्राणी को सुख साता और शान्ति प्राप्त हो ऐसा कोई भी प्रयत्न करना अनुग्रह के अन्तर्गत है।

जब मनुष्य की समस्त शक्तियां परोपकार मे लग जाती है, रो की भलाई के लिए जब वह अपने जीवन को पूरी तरह पित कर देता है और अपनी आत्मा को ऊंचा उठाने के उद्योग सलग्न होता है तब उसमे शील का अपने-आप विकास हो । है।

शाल के स्वरूप को बतलाने के लिए तीसरी बात बतलाई गई हैं दान। दान के सम्बन्ध मे जितना कहा जाए उतना ही थोड़ा है। दान से इस लोक मे यश का प्रसार होता है और ममत्व का त्याग होने से आत्मा का कल्याण होता है। दान परम वशीकरण मन्त्र है। दान के प्रभाव से वैरी भी बन्धु बन जाते हैं। अतएव भारतवर्ष के सभो धर्म एक स्वर से दान को महिमा प्रकाशित करते हैं। इस देश मे प्राचोनकान मे बड़े से बड़े दानी हो चुके हैं, जिन्होने दूसरो के कल्याण के लिये अपने जीवन को देने मे भी सकोच नही किया।

इस प्रकार किसो प्राणो के साथ द्रोह या वैर - विरोध न करना निवृत्ति है और अनुग्रह करना तथा दान करना प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति और निवृत्ति के मेल से शाल का स्वरूप परिपूर्ण होता है। शील रूपो रथ के यह दो चक्र है। इन्ही से शाल-रथ अग्रसर होकर शीलवान् को अपने लक्ष्य तक पहुँचाता है।

शील का पूरी तरह पालन किया जा सके तो सर्वोत्तम है। किन्तु जो मनुष्य गृहस्थाश्रम की झंझटो मे पड़े हुए हैं, उनसे शील का पूर्ण रूप से पालन नही हो सकता। आरम्भ और परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग करने पर ही पूण शील का परिपालन हो सकता है। अतएव अधिकारी के भेद से शील की दो श्रेणिया बतलाई गई हैं—सर्वदेश शील और एकदेश शील। जो पूर्णरूपेण शील का पालन न कर सकते हो, उन्हे ऐकदेश शील का पालन तो करना ही चाहिये।

ससार रूपी भयकर अटवी को पार करने मे आरम्भ और परिग्रह रूपी दो राक्षस ही बडे बाधक है। अतएव जो कमजोर होते हैं, उन्हे वापीस लौटना पडता है। धन, दौलत, महल मकान,

जमीन, स्त्री, पुत्र आदि सब परिग्रह के अन्तर्गत है । ससार के जिस किसी भी पदार्थ पर आपका ममत्व होता है, जिस पर आपको आसक्ति होती है, वह सब आपके लिये परिग्रह है । शास्त्र मे कहा है .—

मुच्छा परिग्गाहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ॥

अर्थात्—तीर्थङ्कर और गणधर भगवान् ने मूर्छा को परिग्रह कहा है ।

परिग्रह को सचित करने के लिये जो व्यापार किया जाता है, वह आरम्भ कहलाता है ।

भाइयो ! इस परिग्रह को सचित करने के लिये खून का पसीना करना पडता है, परन्तु इसका दुरुपयोग करने मे कुछ भी परिश्रम नही करना पडता । जिस धन का प्राप्त करने मे अठारह हीं पापो का सेवन किया जाता है, उसी को अज्ञानी जीव फिर पापकार्य मे, अति रसिक होकर खर्च करते है । यह कितनी बडी भूल है ?

जो मनुष्य ठोकर ही न खाये वह उत्तम है । जो एक बार ठोकर खाकर सभल जाता है और दूसरी बार ठोकर नही खाता, वह मध्यम कोटि का समझना चाहिये । किन्तु जो ठोकर खाकर भी नही सभलता और ठोकर पर ठोकर खाता रहता है, वह अधम है । उसका सुधार होना कठिन है । वह धिक्कार के योग्य है ।

सच तो यह है कि परिग्रह घोर अनर्थकारी है । यह मनुष्य अकरणीय कार्य करा लेता है । अनाचरणीय का आचरण करा ता है परिग्रह की लालसा के वशीभूत होकर मनुष्य कितना गिर ाता है, और किस प्रकार मानव से दानव बन जाता है, यह बात किसी से और आपसे छिपी नही है । यह परिग्रह ही तो है जो

मनुष्य को चोर बनाता है, डकैत बनाता है, खूनी बनाता है और घोर से घोर अकृत्य करवाता है।

एक बार एक मुनिराज अपने शिष्य के साथ विहार करते हुए जा रहे थे। नीची दृष्टि करके, चार हाथ जमीन देखते हुए, चलना मुनि का धर्म है। दोनो गुरु शिष्य इसी प्रकार जा रहे थे। मार्ग मे उन्होने पीले रंग का चमकता हुआ आभूषण देखा। तब शिष्य ने गुरु से प्रश्न किया—गुरुदेव यह क्या चीज है ?

गुरु ने ईषत् स्मित के साथ कहा—यह मनुष्य की जान लेने वाली वस्तु है।

शिष्य—सो कैसे ?

गुरु—चलो, बतलाता हू।

गुरु शिष्य को लेकर एक झाडी के पीछे छिपकर बैठ गये। थोडा ही समय व्यतीत हुआ था कि दोनो विरोधी दिशाओ से दो सिपाही तलवार बन्दूक लिये निकले। दोनो को दृष्टि उस चमकती चीज पर पडी दोनो समझ गये कि यह सोने का आभूषण है। दोनो उसे उठा लेने को तैयार हुए। किन्तु आभूषण एक था और लेने को उद्यत दो थे। अतएव संघर्ष उपस्थित हो गया। दोनो ने उस पर अपना-अपना अधिकार जमाया। एक ने कहा—मैंने इसे पहले देखा है, अतएव इस पर मेरा अधिकार है। दूसरे ने कहा—नही, तुम्हारे देखने से पहले ही मैंने देख लिया था। अतएव इस पर तुम्हारा नही मेरा अधिकार है।

इस प्रकार दोनो मे तकरार बढ गई। गाली-गलोज की नौबत आ गई। उसके पश्चात् म्यानो मे से तलवारें निकल आई।

और एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। थोड़ी ही देर में उस तुच्छ पदार्थ के लिये दोनो आपस मे कट कर मर गये।

तब शिष्य ने गुरु से पूछा—हमने भी तो इस जेवर को देखा था, फिर हमारे ऊपर यह असर क्यो नहीं हुआ ?

गुरु ने कहा—हम लोग इसे पहले ही त्याग चुके हैं।

भाइयो ! आशय यह है कि परिग्रह दुःख का मूल है, अतएव इसे त्यागने का ही प्रयत्न करना चाहिये। कहा भी है —

परिग्रहमहत्वाद्धि, मज्जत्येव भवाम्बुधौ ।
महापोत इव प्राणी, त्यजेत्तस्मात् परिग्रहम् ।।

जैसे पत्थर की नाव भारी होने के कारण समुद्र मे डूब जाती है, उसी प्रकार जो प्राणी परिग्रह के भार में भारी होता है, वह संसार सागर मे डूब जाता है। अतएव जिसे डूबने की इच्छा न हो, उसे चाहिए कि वह परिग्रह का परित्याग करे।

और भी कहा है —

असन्तोषमविश्वासमारम्भं दुःखकारणम् ।
मत्वा मूर्छाफलं कुर्यात्, परिग्रहनियन्त्रणम् ।।

अर्थात्—मूर्छा के फलस्वरूप असन्तोष की उत्पत्ति होती है, आत्मीय जनों पर भी विश्वास नही रह जाता और दुःख का कारण तथा आरम्भ-समारम्भ करना पडता है। मूर्छा के इन कुपरिणामो को देखकर विवेकी जनो का कर्त्तव्य है कि वे परिग्रह का त्याग करे अथवा कम से कम उसकी मर्यादा करे।

कौन नही जानता कि यह धन बाप को बेटे से, पति को पत्नी से, भाई को भाई से, बहिन को भाई से अलग-अलग करा देता है। धन के लोभ से लोग देश-विदेश मे भटकते फिरते हैं। आत्मसम्मान को, इज्जत-आबरू को तथा कुलीनता को भी ताक पर रख कर दीन-हीन बन जाते हैं। अरे कहाँ तक कहा जाय, यह धन इतना अधम है कि मनुष्य को एकदम विवेकहीन और अंधा बना देता है। धन के प्रलोभन मे पडकर पुत्र, पिता की हत्या कर डालता है स्त्री अपने पति के प्राण ले लेती है और भाई भाई को मौत के घाट उतार देता है। ऐसा करने मे भी उन्हे लज्जा, सकोच या झिझक का अनुभव नही होता।

भाइयो ! तनिक विचार करो कि यह धन कितने अन्याय और कितने अत्याचार करा रहा है ! फिर भी अज्ञानी जन इसी की प्राप्ति मे मौज मान रहे है। दिखाई पडता है—मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा पडा हुआ है। धन ने मनुष्य की मनुष्यता को दबा दिया है। वह एकदम विचारहीन होकर अनर्थों के मूल इस धन की ही उपासना मे सलग्न है और वास्तविकता का जरा भी विचार नही करता। धन का प्रलोभन मनुष्य को पतन के कितने गहरे गर्त्त मे गिरा देता है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। एक उदाहरण लीजिए —

राजा भोज के पिता जब मरने लगे तो राज्य की देखरेख का काम अपने छोटे भाई मुज को सौप गये। उस समय भोज सिर्फ बारह वर्ष का था। उसे सिहासन पर बिठला दिया गया, परन्तु राज्य सचालन की सत्ता मुज के पास रहा। भोज विद्याओ और कलाओ के शिक्षण के लिए कलाचार्य-ऋषि के पास भेज दिया गया। भोज की बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। थोडे ही समय मे उसने काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया।

उधर मु ज के मन मे विकृति उत्पन्न हो गई। उसने सोचा भोज अब स्वय राज्यभार सभालने योग्य हो रहा है। अब इसके हाथ मे सत्ता आ जायेगी तो मेरा वर्चस्व कम हो जायेगा। भोज मेरे प्रति न जाने कैसा सलूक करेगा ? अगर भोज को मरवा डाला जाय तो मैं आजीवन निष्कटक राज्य भोगू गा ? यही नहीं, सदा के लिये मेरी सन्तान राज्य की अधिकारिणी जायेगी ! किसी को कानोकान भी खबर नही पड़ेगी।

इस प्रकार मु ज के मन मे पाप उत्पन्न हुआ। उसने अपने अत्यन्त विश्वासपात्र आदमियो को बुलाकर कहा—आज तुम्हारी परीक्षा का दिन है। तुम्हारे ऊपर मुझे पूरा भरोसा है। मैं आशा करता हू कि आज तुम्हारे जिम्मे जो काम सौंपा जा रहा है, उसे तुम बहुत सावधानो, होशियारी और जिम्मेवरी के साथ करोगे। याद रखना, यह बात पूरी तरह गुप्त रहनी चाहिये।

आदमियो ने चापलूसी करते हुए कहा-अन्नदाता के लिये सिर तैयार है ! आपका हुक्म होना चाहिए। जिस प्रकार आप कहेगे उसी प्रकार सब काम हो जायेगा।

मुंज ने कहा--देखो, आज कोई मामूली काम नही सौंपा जा रहा है। बडा महत्वपूर्ण और गुह्य काम है। वह यह कि राजकुमार जब पाठशाला से लौटे तो उसे बाग मे सैर कराने के बहाने बाहर जाना और वहा मार डालना।

आदमियो ने कहा–अन्नदाता का वचन प्रमाण है !

भोज संध्या के समय पाठशाला से लौटकर राजमहल में या। उन निर्दयो दुष्टो ने उसे बगीचे मे चलने के लिये फुसलाया

और आग्रह किया। सरलस्वभाव और छल-कपट से अनभिज्ञ राजकुमार उनके साथ बाग मे चला गया।

बाग मे पहुचकर और एकान्त स्थान मे ले जाकर उन लोगो ने भोज से कहा—'राजकुमार, भगवान् का नाम लेना हो तो ले लीजिए। आपके प्राण त्याग का समय आ पहुचा है। महाराज मुज ने हमे आज्ञा दी है कि आज आपका काम तमाम कर दिया जाय।'

यह कहकर उन आदमियो ने तलवार निकाली। भोज बडा ही बुद्धिमान और अवसर का ज्ञाता था। आदमियो की बात सुनकर वह एकदम खिलखिलाकर हंस पडा।

सिपाही—जब मृत्यु आखो के आगे नाच रही है, तब आपके हसने का कारण क्या है?

भोज—हसी का कारण मैं तुम्हे नही बता सकता। अगर मुज को यहां ले आओ तो उन्हें बता दूगा।

सिपाही—वह यहा कैसे आ सकते हैं?

भोज—अच्छा, तो मैं कागज के टुकडे पर हसी का कारण लिख देता हूं। तुम जाकर उन्हे बतला दो। उसे देखने के बाद वह जो आज्ञा दे, करना।

सीपाहियो ने यह बात स्वीकार करली। भोज ने कागज पर एक श्लोक लिखकर भेज दिया। उस श्लोक का आशय यह था कि—ऐ मुज काका! इस भूतल पर बडे २ राजा-महाराजा,

सम्राट और चक्रवर्ती आदि हो चुके है। उन्होने पृथ्वी पर शासन किया। शासन करने के लिए घोर सग्राम किया। असख्य मनुष्यो के प्राणो की बलि ली। किन्तु अन्त मे वह सभी मर गए। जब मरे तो खाली हाथ गए। यहाँ तक कि उनका शरीर भी उनके साथ नही गया। लेकिन मुझे जान पडता है कि आप इस पृथ्वी को अपने साथ अवश्य ले जाएँगे।

नैकनापि समं गता वसुमती ।
नूनं त्वया यास्यति ।।

इस कागज को पढकर मुज के पैरो तले कि जमीन खिसक गई। उसे अपने भविष्य का विचार आया। वह सोचने लगा—क्या सचमुच ही मैं इस जमीन को साथ ले जा सकू गा? नही, यह यही रह जाएगी और इसे प्राप्त करने के लिए किये गये विश्वासघात, कपट और प्राणनाश का पाप ही मेरे साथ जाएगा। हाय, मैंने कितना अधम विचार किया? मैं किस प्रयोजन के लिए अपनी आत्मा को नरककुण्ड मे डालने को तैयार हो गया? आह, भोज ने मेरे नेत्र खोल दिये! वत्स भोज! तुम मेरे गुरु हो!

इस प्रकार का विचार आते ही मुज के नेत्रो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वह अपनी दुष्ट प्रवृत्ति के लिए घोर पश्चात्ताप करने लगा।

उसने सिपाही से पूछा—अभी भोज कहा है? मेरी आज्ञा का पालन अभी किया तो नहीं है?

सिपाही—नहीं महाराज, तैयारी है। आपके अन्तिम आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

यह सुन कर मुज को अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भोज अभी जीवित है। उसने अपने भाग्य की सराहना की। वह उसी समय रवाना होकर भोज के पास पहुचा और उसे छाती से चिपका कर बोला--वत्स भोज! मेरी मति भ्रष्ट हो गई थी। मैं पाप मे पड गया था। पाप की कलिमा ने हृदय के उज्ज्वल अंशो को आच्छादित कर दिया था। किन्तु तुमने मेरी आँखे खोल दी। सच है—

चेतोहरा युवतय स्वजनोऽनुकूल.,
सद्बान्धवा. प्रणतिनम्रगिरश्च भृत्या ।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गा,
सम्मीलने नयनयोर्नहि किश्चदस्ति ।।

अर्थात्—मनुष्य विचार करता है—चित्त को हरण करने वाली युवतियाँ मेरे अन्त पुर मे है। मेरे सभी आत्मीयजन मेरे अनुकूल है—मुझे प्रेम करते हैं और मुझे सुखी देखना चाहते हैं। बन्धु-बान्धव सभी अच्छे है। मेरे पास नौकर-चाकर भी है और वे बडे ही नम्र तथा मधुरभाषी हैं। मेरी गजशाला मे कितने ही गजराज गर्जना कर रहे हैं। चपल घोडे हिनहिना कर मानो मेरे वैभव का विजयघोष करते है। इस प्रकार ससार की सभी सुखद सामग्री से मैं सम्पन्न हू किन्तु खेद है कि आख बद होने पर इनमे मे कुछ भी नही रहता। मौत की घडी आती है तो ससार की एक भी वस्तु अपनी नही रह जाती।

पश्चात्ताप की आग मे बडे से बडा दोष भी भस्म हो जाता है। मुञ्ज ने सच्चे हृदय से पश्चात्ताप किया। अतएव उसका हृदय स्वच्छ हो गया। भोज के अन्त करण मे भी कोई मलीनता नही थी। आखिर मुज ने भोज से क्षमा याचना की। भोज ने

कहा—काकाजी इसमे आपका कुछ भी दोष नही है। जगत् की विभूति एक प्रकार की मदिरा है। यह मनुष्य को मतवाला बना देत है। जब तक मनुष्य इसका स्वामी बनकर रहता है, तब तक तो गनीमत समझिये, किन्तु दास बन जाने पर तो किसी प्रकार कुशल नही है। फिर भी आपकी सद्बुद्धि शीघ्र ही जागृत हो गई; यह सन्तोष की बात है। अब इस घटना को सर्वथा भूल जाना ही श्रेयस्कर है जिससे किसी के हृदय मे किसी प्रकार का डक न रह जाय।

आखिर मुंज और भोज राजमहल मे आए। उसी दिन से मुंज ने शासन का समस्त भार भोज को सौप दिया। वह निवृत्त हो गया। भोज न्याय नीति के साथ प्रजा का पालन करने लगा। परन्तु इस घटना का प्रभाव उसके समस्त जीवन पर पडा। वह कभी राज्य के नशे मे मतवाला नही बना।

भाइयो! इस घटना पर विचार करो। जिस परिग्रह को प्राप्त करने की कामना मात्र से आत्मा मे अतीव कलुषित विचारो का उदय होता है, मनुष्य अपनी मनुष्यता से भी पतित हो जाता है और अपने जीवन के प्रशस्त अशो को भूल जाता है, वह परिग्रह कल्याणकारी किस प्रकार हो सकता है? कदापि नहीं परिग्रह तो भयानक नरक-यातनाओ का कारण है। इहलोक को भी सुखमय नही बना सकता और परलोक को तो दुखपूर्ण बनाता ही है। मनुष्य की अन्तरात्मा जिस कार्य से घृणा करती है, ऐसा तुच्छ से तुच्छ कार्य भी परिग्रह करवा लेता है।

परिग्रह का त्याग जब कर दिया जाता है तो आरम्भ का भी त्याग हो जाता है और आरम्भ-परिग्रह का त्याग कर पर आत्मा में अपूर्व शान्ति और अनाकुलता उत्पन्न होती है।

हे मोक्षार्थी पुरुषो ! अगर आपको दु:खो का भार दूर करके सच्चा विश्राम प्राप्त करना है तो शील का पालन करो और आरम्भ परिग्रह का त्याग करो। ऐसा करने से आपका कर्मों का भार दूर हो जायेगा। आप अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच जायेंगे और चिरस्थायी आनन्द के उपभोक्ता बन जायेंगे। सब प्रकार से आनन्द ही आनन्द हो जायेगा।

ब्यावर
२६- -४१

शील-रत्न

卐
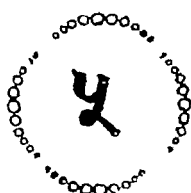
स्तुतिः—

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्ट —
सद्धर्मतत्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्या ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व—
भाषास्वभा-परिणामगुणैं प्रयोज्य ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभ-देव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो। आ-के कहाँ तक गुण गाये जाए ।

हे लोकोत्तम प्रभो ! आपने ही इस सृष्टि का सर्वप्रथम ल्याण किया। दुनिया को सन्मार्ग पर लगाकर आपने धर्म का द्योत किया। आपकी सम्यक्त्याणी और वरदानी वाणी ने भव्य जो को स्वर्ग और अपवर्ग की राह दिखलाई। जिन-किन उपायो

से स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है और किन किन साधनों से मोक्ष प्राप्त हो सकता है, इस विषय पर अपूर्व और अद्भुत शैली से उपदेश देकर जनता को सुपथ पर आरूढ कर दिया।

महाप्रभो! आपका उपदेश तीन लोक के सभी प्राणियों के हितार्थ होता है। वह उपदेश भाषा और भाव की दृष्टि से अत्यन्त विशद होता है। आपकी भाषा की एक बड़ी भारी विशेषता तो यह है कि सभी श्रोता उसे अपनी अपनी भाषा मे समझ लेते हैं। आपके उपदेश से श्रोता मनुष्य, देव और तिर्यञ्च होते हैं। सभी गहरी उत्कठा और उत्साह से उपदेश के पीयूष का पान करते हैं। विभिन्न श्रोताओ की भाषा विभिन्न प्रकार की होती है। किन्तु भगवान् की दिव्यध्वनि का अतिशय ऐसा है कि प्रत्येक श्रोता को ऐसा अनुभव होता है, मानो भगवान् हमारी ही भाषा मे उपदेश दे रहे हो, इस प्रकार भगवान् सब श्रोताओ के लिए अपनी-अपनी भाषा मे परिणत होने वाली ध्वनि के द्वारा कल्याण का पथ प्रदर्शित करते हैं।

ऐसे अतिशय सम्पन्न, सर्वज्ञानी, लोकहितकर आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है।

श्रीठाणागसूत्र मे भगवान ने चार प्रकार के भाव-विश्राम बतलाए हैं। कल इस सम्बन्ध मे किंचित प्रकाश डाला गया था। आज भी इसी विषय पर कुछ और प्रकाश डालना है। जैसे एक कधे पर रक्खे हुए वजन को दूसरे कन्धे पर रखने से प्राणी को विश्राम का आभास होता है, उसी प्रकार कर्म रूपी वजन से विश्राम पाने के लिए शील को अगीकार करना श्रेयस्कर है। शील-ब्रह्मचर्य व्रत इस लोक मे सुख प्रदान करता है और परलोक के

लिए भी पुण्य की पोटली बाध देता है। किन्तु ज्ञानी पुरुषो को यह देखकर विस्मय और विषाद होता है कि विषय वासना के जाल मे फसे हुए प्राणी इस व्रत को धारण करने मे हिचकते हैं भयभीत होते है। जो सासारिक भोग-विलास के कीचड मे फसे हुए हैं, वे तो इससे विमुक्त होने का प्रयत्न करते नही है बल्कि जो आजाद हैं जो विवाह के बन्धन मे अभी तक नही बन्धे है, वे बधने का प्रयास कर रहे है।

यह बात आपसे छिपी नही है कि विवाह के लिए लोग कितने प्रयत्नशील रहते हैं! एक शादी के लिए न जाने कितनो की खुशामद करते है! कोई-कोई तो अखबारो मे तक विज्ञापनबाजी करते हैं कि एक प्रतिष्ठित घराने के पढे लिखे लडके के लिए सुयोग्य कन्या की आवश्यकता है! कई लोग दलालो का आश्रय लेते हैं। उन्हे कुछ रुपया खिलाकर शादी के लिए किसी को तैयार करते हैं।

नवयुवक और अविवाहित लोग विवाह के लिए उत्कठित हो तो बात समझ मे आ सकती है। मगर कभी-कभी तो बूढे लोग भी इस प्रयत्न मे अपनी समस्त शक्ति लगाते देखे जाते हैं और सम्पत्ति का भी होम कर देते है। किसी समय उनका विवाह हुआ था। दाम्पत्य जीवन का वे अनुभव कर चुके हैं। परन्तु दैवयोग से विधुर हो गए। ऐसी स्थिति मे उन्हे समझना चाहिए कि हमे ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए प्रकृति की ओर से सहायता मिली। पत्नी जीवित होती तो न मालूम ब्रह्मचर्य पालने की भावना त होती अथवा नही, किन्तु पत्नी का वियोग हो गया है। शील पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह इस अवसर से लाभ उठा त्मा की ओर लक्ष्य दे और धर्मध्यान मे अपना अवशिष्ट न व्यतीत करें।

किन्तु खेद यह है कि अधिकाश लोगो मे इस प्रकार की सद्बुद्धि नही होती। कई तो वृद्धावस्था मे भी पुनर्विवाह के लिए लालायित रहते है। वे किसी गरीब कन्या के पिता को रुपयो का प्रलोभन देकर फँसा लेते हैं। और अल्पवयस्क बालिका के साथ विवाह करके उसके जीवन को सकट मे डाल देते है और अपने जीवन को भी कलकित और लाछित करते हैं। ससार उनका उपहास करता है, उनसे घृणा करता है, किन्तु वे निर्लज्जतापूर्वक अपने विषय सुख मे ही लीन रहते है।

ऐसे विषयलोलुप वृद्धो ने समाज के वातावरण को अत्यन्त गदा बना दिया है। उनके कारण समाज मे दुराचार की प्रवृति होती है। अगर वह बाई भाग्यशालिनी और पुण्यशालिनी हुई, तब तो अपने कर्मों का उदय समझ कर सन्तोष धारण कर लेती है, किन्तु यदि उसके अन्त करण मे प्रतिहिसा की भावना जाग उठती है तो वह उस वृद्ध से बदला लेने के लिए उसे नीचा दिखाने के लिए, उसे जलाने के लिए और कदाचित् अपनी अतृप्त वासना को तृप्त करने के लिए ऐसा वर्त्ताव करती है कि उसका जीवन मिट्टी मे मिल जाता हैं और वह बुड्ढा भी लोगो मे मुह दिखलाने योग्य नही रहता। अनेको ऐसे उदाहरण देखने सुनने मे आए है।

हे वृद्ध, तेरे जीवन का मध्यान्ह बीत चुका है। तेरी जिन्दगी सध्या की वेला मे आ उपस्थित हुई है। सध्या अधिक समय तक नही टिकती। अतएव तेरे जीवन की सध्या भी शीघ्र ही अधकारमयी रजनी के रूप मे परिणत होने को है। प्रकृति ने तेरा एक बधन तोड दिया है। तू इसे अपना अहोभाग्य समझ। पत्नी के वियोग को अपने लिए चेतावनी समझ। सावचेत हो जा। विषय वासना के विषैले अकुरो को अन्त करण की भूमिका से उखाड़ कर फेंक

दो। शान्त और स्वस्थ होकर धर्मध्यान कर। शीलव्रत का पालन कर! इसी मे तेरा सच्चा कल्याण है।

कई विषयलोलुप एक पत्नी की विद्यमानता मे भी दूसरा विवाह करने के लिए तत्पर रहते है और कर भी डालते है। समाज का कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के विवाहो पर वह कठोर प्रतिबन्ध लगावे। पति के मर जाने पर भी समाज स्त्री को दूसरा विवाह करने की अनुमति नही देता, वही समाज एक पत्नी की मौजूदगी मे पुरुष को दूसरा विवाह करने की अनुमति दे, तो यह घोर अन्याय और पक्षपात है। इस युग मे यह पक्षपात नही चल सकता। धार्मिक दृष्टि से यह अनुचित है और सामाजिक दृष्टि से भी अनुचित है। विवाहित होकर भी जो अपनी वासना को सीमित और नियन्त्रित नही कर सकता, उसका विवाह करना सफल नही कहा जा सकता। विवाह की सार्थकता तो विषयवासना को शनैः शनैः जीतने मे है उसकी वृद्धि करने मे नही है। विवाह की सार्थकता शीलव्रत के अधिकाधिक पालन मे है, भोगो का कीडा बनने मे नही है।

कई मनुष्य तो यहा तक गिर जाते है कि वे व्यभिचार का सेवन करते भी लज्जित नही होते! ऐसे लोगो की किन शब्दो मे भर्त्सना की जाय? किन शब्दो मे उनकी नीचता का दिग्दर्शन कराया जाय? वे अपनी और अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा को नष्ट है। वे विश्वासघाती है, पापी है और अपने वर्त्तमान तथा जीवन को मिट्टी मे मिलाते है। कहा भी है—

अज्ञानतिमिरग्रस्ता, विषयामिषलम्पटाः।
भ्रमन्ति शतशो जीवा, नाना योनिषु दुःखिताः॥

परस्त्रीगामी जन अज्ञान रूपी अधकार मे ग्रस्त हैं, विषय-भोग रूपी मांस के लोलुप हैं। वे दुखी होकर नाना योनियो मे भ्रमण करते रहते हैं।

परस्त्रीव्यसनान्नूनं, धनहानिं कुलक्षयम् ।
देहनाशादिकं दुःखं, प्राप्तोऽत्रासौ दशाननः ॥

अर्थात्--जिस पुरुष को परस्त्रीगमन की खोटी आदत पड गई है, वह निश्चय ही अनेक विपत्तियो का पात्र बनता है। उसके धन का विनाश होता है, कुल का क्षय होता है और शरीर का भी सत्यानाश हो जाता है। देखो रावण कितना शक्तिशाली और तेजस्वी वीर पुरुष था। परस्त्री की स्वीकृति के बिना उसका सेवन न करने की उसकी प्रतिज्ञा थी। फिर भी परस्त्री का अपहरण करने मात्र से उसे कितनी हानि उठानी पडी? उसे राज्य से हाथ धोने पड़े, प्राणो का परित्याग करना पडा, कुल का क्षय हो गया। जब रावण जैसे शक्तिशाली पुरुष की भी यह दुर्दशा हो सकती है तो साधारण मनुष्य का तो कहना ही क्या है।

अभिप्राय यह है कि शील परमशान्तिदाता है, अपूर्व सतोप और सुख का आकार है, फिर भी वासना के वशीभूत होकर मनुष्य शील का परित्याग करके भाति भाति के कष्ट उठाते हैं।

कुशील सेवन करने की अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए लोग कई तरह के इत्र, सेंट, फुलेल आदि खुशबूदार वस्तुओ का सेवन करते हैं और उनके लिए पैसा खर्च करते हैं तरह-तरह के शृगार करने पडते हैं। यह सब कार्य केवल स्त्री के प्रति आसक्ति होने के कारण ही किये जाते हैं। जिन्होंने स्त्री सेवन का त्याग कर दिया है,

उन्हे किसी भी प्रकार की खटपट नही करनी पडती। वे भव्य आनन्द का अनुभव करते है। ब्रह्मचारी पुरुष सदैव शान्ति और स्वस्थता का अनुभव करता है और इसके विपरीत अब्रह्मचर्य से मनुष्य को महान सॉकटो का सामना करना पडता है और दिन रात चिन्ता ही चिन्ता मे व्यस्त रहना पडता है। उन्हें अपनी ही करतूतो की चिन्ता लगी रहती है। वे दिन-रात यही सोचा करते हैं कि कही मेरे कुत्सित कार्यो का पर्दा न खुल जाय ! कही मेरा भडाफोड न हो जाय ! इस प्रकार की चिन्ता उनके चित्त मे कांटे की तरह सालती ही रहती हे।

व्यभिचारी पुरुषो को कभी-कभी तो अपनी इज्जत बचाने के लिए भ्रूणहत्या भी करनी पडती है। व्यभिचारी मनुष्यो की यहाँ तो बेकद्री होती है, उन्हे घृणा, तिरस्कार और अपमान का सामना करना ही पडता है, किन्तु दूसरे जन्म मे भी नरक के यमराज छाती पर सवार होकर उनकी करतूतो का पूरा-पूरा फल चखाते हैं ! इस प्रकार कामसेवनजनित क्षणिक सुख के लिए लोग अनन्त दुखो को भूल जाते है और अपने भविष्य को अतीव दु खमय बना लेते है !

हे मनुष्य ! तू समझदार प्राणी कहलाता है। तुझे अपने हित अहित का विचार करना चाहिए। अपनी विशिष्ठ बुद्धि का सदुपयोग करना चाहिए और जिसमे आत्मा का कल्याण हो, वही कार्य करना चाहिए। हे भाई, तू विषय-वासना की भयानक लपटो मे [illegible]सने के लिए नही हे, यह जीवन तुझे ऐसे प्रयत्न करने के लिए मला है जिनसे तेरे भव-भव के सताप दूर हो जाएँ और तुझे अप्राप्तपूर्व शान्ति की प्राप्ति हो।

भाइयो ! ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि यह भोग-विलास घोर दु खो का जनक है। यह भयानक रोग है। शीघ्र ही इस रोग का इलाज करना चाहिए। इसका अचूक इलाज शीलव्रत को धारण करना है। शीलव्रती मनुष्य को परम सुख की प्राप्ति होती है। वह अपूर्व सतोष और असाधारण अनाकुलता का पात्र बनता है। शीलव्रत ससारी जीव को दु:खो से विश्राम दिलाने वाला है। इस ससार मे शील के समान शान्ति और विश्राति देने की शक्ति किसी मे भी नही है। इस लोक मे भी और परलोक मे भी शील से अनन्त शान्ति प्राप्त होती है।

जम्बूकुमार के सौभाग्य का सूर्य जब मध्याह्न मे आया और अपने प्रखर तेज के साथ चमका तो उन्हे सुधर्मा स्वामी का मगल मय उपदेश सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होने दीक्षा ग्रहण करने की हार्दिक अभिरुचि व्यक्त की। सुधर्मा स्वामी तो निस्पृह सन्त थे। उन्होने कहा-'जहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिवध करेह।' अर्थात् हे देवो के प्यारे ? जिससे सुख उपजे वही करो। उसे करने मे देर न करो।

जम्बूकुमार सुधर्मा स्वामी को वन्दना करके माता पिता से दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्राप्त करने के लिए घर की ओर रवाना हुए। जब वे नगर के दरवाजे से दो चार कदम की दूरी पर थे कि दरवाजा अकस्मात गिर पडा। इस अकस्मिक घटना का कुमार के चित्त पर गभीर प्रभाव पडा। अत करण मे वैराग्य की लहरे उमड ही रही थी इस घटना ने उनमे और अधिक उत्तेजना उत्पन्न कर दी। वह सोचने लगे-अगर मै दो चार कदम आगे होता तो आज जीवित न रहा होता। उन्हे यह भी ख्याल आ गया कि यह जीवन क्षणभगुर है। पल भर भी इसके टिकने का भरोसा नही

है। अभी-अभी है और आगामी क्षण में नही भी रह सकता है। और जब क्षण का भी ठिकाना नही तो रात भर का क्या भरोसा है? मैं रात्रि भर घर ठहर कर सुधर्मा स्वामी के पास जाना चाहता हूं, परन्तु कौन कह सकता है कि कल तक मैं जीवित रह ही जाऊँगा?

इस प्रकार विचार करके जम्बूकुमार उल्टे पॉव महान श्रमण सुधर्मा स्वामी की सेवा मे लौटे। हाथ जोड कर कहने लगे-गुरुदेव! इस जीवन का कुछ भरोसा नही। अतएव जब तक मैं पूर्ण सयम को धारण नही कर लेता, जब तक भी अव्रती नही रहना चाहता। अनुग्रह करके मुझे शीलव्रत धारण करा दीजिए। सुधर्मा स्वामी ने जम्बूकुमार की विरक्ति भावना की भूरि-भूरि प्रशसा की और शीलव्रत धारण करा दिया।

तत्पश्चात् वे घर आये और माता-पिता के समीप पहुचे। माता-पिता ने उन्हे भरसक समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु वे अपने अटल सकल्प से विमुख न हुए। उनकी सद्य.परिणीता वधुओ ने भी सारी शक्ति लगाकर जम्बूकुमार को भोगो की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया, मगर उन्होंने उन्हे भी वैराग्य के रग मे रग दिया और वे सब भी उन्ही के साथ दीक्षा लेने को तैयार हो गयी! उनकी सुहागरात्रि वैराग्यरात्रि के रूप मे परिणत हो गई।

भीष्म पितामह की कलित कीर्ति आज भी विश्व मे विश्रुत है। उन्होने आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन किया। ब्रह्मचर्य की शक्ति से उन्होने मृत्यु को भी अपने कब्जे मै कर लिया था।

इसी प्रकार ब्रह्मचारी पवनसुत अर्थात हनुमानजी हुए है, जो समुन्द्र को भी लाघ कर लका तक जा पहुचे थे!

भारतीय साहित्य में ब्रह्मचर्य-पालन के एक से एक उत्तम आदर्श विद्यमान हैं, जो हमे अपूर्व प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं और जिनसे ब्रह्मचर्य की महान् शक्ति का आभास मिलता है। वास्तव मे ब्रह्मचर्य की शक्ति के सामने जगत की कोई भी शक्ति नही ठहर सकती। ब्रह्मचर्य मे अजेय और अचिन्त्य शक्ति है। कहा भी है:—

नीरोगः कान्तिसम्पन्नः, सर्वदुःखविवर्जितः ।
ब्रह्मचारी भवेल्लोके, पाप्मना च विवर्जितः ॥

अर्थात्-ब्रह्मचारी पुरुष कभी रोगग्रस्त नही होता। रोगो की उत्पत्ति का मूल कारण दुर्बलता है और ब्रह्मचारी दुर्बल नही, प्रबल होता है। ब्रह्मचारी के मुखमण्डल पर अपूर्व कांति जगमगाती रहती है। वह सब प्रकार के दु.खो से रहित होता है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से समस्त दु.ख दूर ही रहते हैं। ब्रह्मचारी को पाप की कालिमा कदापि स्पर्श नही कर सकता।

मन वचन और काय से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष मनुष्यो की तो क्या बात, देवो द्वारा भी पूज्य बन जाता है। ब्रह्मचर्य के पालन से मस्तिष्क शान्त और बुद्धि प्रसन्न और तीक्ष्ण होती है। ब्रह्मचारी के अन्त करण मे उत्कृष्ट विचारो की धारा प्रवाहित होती रहती है, जिसके कारण उसका समग्र जीवन शुचिता से परिपूर्ण हो जाता है। ब्रह्मचारी कठिन से कठिन प्रश्नो का अनायास ही सुन्दर और अकाट्य उत्तर दे सकता है। मतलब यह है कि ब्रह्मचारी के लिए कोई भी समस्या ऐसी नही जो हल न की जा सके।

ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत व्यापक है। समस्त इन्द्रियो के विषयो का परित्याग करके ब्रह्म अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूप मे रमण

करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। यह पूर्ण ब्रह्मचर्य का स्वरूप है। किंतु साधारणतया ब्रह्मचर्य शब्द मैथुन सेवन का परित्याग करने क अर्थ मे रूढ-सा हो गया है। वह ब्रह्मचर्य भी दो प्रकार का है— सर्वदेश ब्रह्मचर्य और एकदेश ब्रह्मचर्य। सर्वदेश ब्रह्मचर्य मे मैथुन मात्र का परित्याग किया जाता और एकदेश ब्रह्मचर्य मे परस्त्री सेवन का त्याग किया जाता है। जो गृहस्थ पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने मे समर्थ नही है, उन्हे भी कम से कम परस्त्री गमन का त्याग करना ही चाहिए। कहा है—

यः स्वदारे हि सन्तुष्टः, परदारपराङ्मुखः।
स गृही ब्रह्मचारित्वाद्, यतिकल्पः प्रकल्प्यते॥

अर्थात्—जो गृहस्थ अपनी विवाहिता पत्नी मे ही सन्तोष धारण करता है और परस्त्री के प्रति माता-बहिन की भावना रखता है, वह जितने अशो मे त्यागी है, उतने अशो मे ब्रह्मचारी होने के कारण साधु के समान माना गया है।

इस प्रकार क्या गृहस्थ और क्या साधु, सभी के लिए ब्रह्मचर्य का विधान है। प्रत्येक मनुष्य, फिर चाहे वह नरजाति का हो या नारी जाति का, ब्रह्मचर्य की साधना करके अपनी आत्मा का परम कल्याण कर सकता है।

उदयपुर के महाराणा फतहसिंहजी कई वर्षो तक ब्रह्मचारी । बाद मे भी उन्होने सिर्फ एक ही पत्नी बनाई। अपनी चित्त- पर उन्होंने काफी अकुश रक्खा। इसका प्रभाव उनके जीवन त्यक्ष दिखाई देता था। वृद्धावस्था मे भी उनमे नवयुवको की स्फूर्ति विद्यमान थी। उनकी बुद्धि भी बडी तीक्ष्ण और स्पष्ट । उनके बुद्धिवैभव का एक उदाहरण लीजिए।—

विक्रमीय संवत् १९८३ मे हमने उदयपुर मे चातुर्मास किया। उस वर्ष वहाँ पानी की बहुत वर्षा हुई। ऐसा लगता था कि मानो आसमान फट पडा है और अब जल-थल एकमेक होने वाले हैं। वर्षा के जल से सब ताल व लबालब भर गए। माण्डल का तालाब टूट गया और उसके टूटने से रेल्वे लाइन को बहुत क्षति पहुँची।

रेल्वे के सरकारी पदाधिकारियो ने महाराणा से क्षतिपूर्ति की माँग की। मेवाड के राज्याधिकारी लिखापढी करते रहे किन्तु परिणाम कुछ नही निकला। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मेवाड सरकार को क्षतिपूर्ति करनी ही पडेगी।

अन्त में महाराणा साहब के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ। उन्होने प्रश्न पर विचार किया और रेल्वे के उच्च अधिकारियो से प्रश्न किया—आपको मालूम है कि तालाब पहले बना अथवा रेलवे लाइन पहले बनी?

पदाधिकारी बोले—तालाब पहले का है और रेल्वे लाइन बाद मे बनी है।

महाराणा बोले-जब तालाब पहले बना हुआ था तो ऐसी जगह मे रेल्वे-लाइन क्यो डाली गई जहाँ तालाब के टूटने पर उसे क्षति पहुचने की सभावना थी? रेल्वे-इन्जीनियरों को समझना चाहिए था कि कभी न कभी तालाब टूट सकता है और लाइन को हानि पहुच सकती है। जब आपके इजीनियरो की अदूरदर्शिता के कारण रेल्वे-लाइन को हानि पहुची है, तो मेवाड़ सरकार से हर्जाना कैसे माँगा जा सकता है?

कोई भी इस तर्क का खण्डन न कर सका। महाराणा ने हर्जाना देना एकदम अस्वीकार कर दिया और रेल्वे-अधिकारियो को मौन साधना पड़ा। यह सब ब्रह्मचर्य का ही तो प्रताप है। वास्तव मे ब्रह्मचर्य की महिमा अपार है। कहा है---

तारीफ फैले मुल्क में एक शील के परताप से,
सुरेन्द्र नमे कर जोड़ के, एक शील के परताप से।टेर।।
शुद्ध गंगाजल जैसा, चिन्तामणि सा रत्न है।
लो स्वर्ग मुक्ति भी मिले एक शील के परताप से।।
आग का पानी बने, हो सिंह मृग समान जी।
दुश्मन भी किंकर बने, एक शील के परताप से।।
चन्दनबाला कलावती, द्रौपदी सीता सती।
सुखी हुई मैना सती, एक शील के परताप से।।
गुरू के प्रसाद से, करे चौथमल ऐसा कथन।
सुख-सम्पत्ति उसको मिले, एक शील के परताप से।।

भाइयो ! शील मे ऐसा महान् प्रभाव है कि जो पुरुष अपने जीवन मे शील की प्रतिष्ठा करता है,सच्चे अन्तःकरण से शील का आचरण करता है, उसको देश-देश मे कीर्त्ति फैल जाती है। देश ौर काल की कोई भी सीमा उसकी कीर्ति को अवरुद्ध नही कर ी। शीलवान् के चरणो मे देवेन्द्र भी किंकर के समान हाथ र नमस्कार करते है। शील गगाजल के समान निर्मल है चिन्तामणि रत्न के सदृश समस्त मनोरथों की पूर्ति करने । है। शील के प्रताप से स्वर्ग और मोक्ष की भी प्राप्ति होती

है। शील के अद्भुत प्रताप से अग्नि भी पानी बन जाती है, सिंह भी हिरण के समान आचरण करने लगता है, और शत्रु भी दास बन जाता है। चन्दनबाला, कलावती आदि सतियां शील के प्रभाव से ही घोर से घोर संकटों पर विजय प्राप्त करके सुखी बनी। शील ही दैवी सम्पत्ति प्रदान करने वाला है।

भाइयो ! शील की महिमा ऐसी अचिन्त्य है कि साधारण मनुष्य उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। शील ही वह महान् प्रभावशाली वस्तु है, जो साँप को भी रस्सी बना देता है और जहर के असर को भी शान्त कर देता है। शत्रु को मित्र बना देता है। पागल हाथी को भी पालतू कुत्ते के समान कर देता है। दुश्मन को दोस्त बना देता है। कहाँ तक कहा जाय, शील के अनुपम प्रभाव से हजारों विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

राजा नल अपनी रानी दमयन्ती को जंगल में अकेली छोड़ कर चला गया। वह बेचारी परेशान होकर इधर उधर भटक रही थी। उस भयानक अटवी में उसे एक राक्षसी मिली, जो रानी को भक्षण कर जाना चाहती थी। रानी ने साहस का अवलम्बन करके कहा—अगर मैं सच्ची शीलवती होऊँगी तो तू क्या, कोई भी मेरा बाल तक बाँका नहीं कर सकता। इतना सुनते ही वह राक्षसी गायब हो गई और रानी अपने पति की खोज में निकल पड़ी। आखिर शील के प्रभाव से रानी के सब संकट कट गये और वह सुखी हुई।

आजीवन शील का पालन किया जाय तब तो कहना ही क्या है ! जो ऐसा नहीं कर सकता उसे कम से कम द्वितीया, पंचमी अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को तो अवश्य ही शीलव्रत धारण करना चाहिए और परस्त्रीगमन का तो

सदैव के लिए त्याग करना ही चाहिए। इस प्रकार शीलव्रत धारण करने से प्राणी को विश्राम मिलेगा, शान्ति प्राप्त होगी।

शीलव्रत धारण करना शरीर के राजा वीर्य की रक्षा करना है। वीर्य की रक्षा करने से आयु, बल, तेज और ओज आदि की वृद्धि होती है और जीवन अत्यन्त स्पृहणीय बन जाता है। अतएव अमूल्य वीर्य-रत्न की कद्र करना सीखो, इसे व्यर्थ मत लुटाओ। पानी समझ कर मत बहाओ। यह जीवन का स्रोत है, प्राणों का प्राण है। वीर्य की रक्षा करके ही कोई पुरुष महापुरुष बन सकता है। वीर्य रक्षा करने वाले ही दीर्घजीवी और नारोग होते हैं। कहा भी है.—

मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दुधारणात्।
तस्माद्यतिः प्रयत्नेन, कुरुते बिन्दुधारणम्॥

अपनी मूर्खता के लिए अपने आपको भर पेट कोसते हैं मगर उनके विषय में यही कहावत चरितार्थ होती है कि- 'अब पछताये होत क्या, चिड़ियाँ चुग गई खेत।' पीछे पछताने से क्या होता है! एक बार शरीर को विषाक्त और खोखला बना लेने के बाद फिर पश्चात्ताप करने से भी लाभ नही होता। होशियारी तो इसी मे है कि मनुष्य पहले से ही सोच-समझ कर चले। पश्चात्ताप करने का अवसर न आने दे और ज्ञानी पुरुषों के उपदेश को समझ कर ही प्रवृत्ति करें।

शीलव्रत से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक शक्तियो का विकास होता है। उसका समग्र जीवन तेजोमय बन जाता है और उसके चेहरे पर अद्भुत दीप्ति विराजमान हो जाती है।

जो मनुष्य अपने शील पर अटल रहता है, देवता उसकी सेवा और सहायता करते हैं और उसके ऊपर आये हुए समस्त उपसर्गों, सकटो और विघ्नो का निवारण कर देते है।

एक बार एक महिला स्टेशन पर उतरी और तांगा किराये पर करके अपने घर को रवाना हुई। रास्ते मे तांगे वाले के मन मे पाप आ गया। उसने सोचा- इस स्त्री को जगल मे ले जाऊँ, इसका सारा जेवर छीन लूँ और इसे मार कर कुए मे डाल दू तो क्या ही अच्छा होगा! तांगा हांक कर वर्षों में भी उतनी कमाई नही कर सकूँगा, जितनी कमाई इस स्त्री को मार डालने मे हो जाएगी।

इस प्रकार सोच कर तांगे वाला उस महिला को उसके घर की ओर ले जाने के बदले जगल की ओर ले गया। जगल मे ले

जाकर उस दुष्ट ने महिला का सारा जेवर छीन लिया और उठा कर उसे कुए मे फेंकने को तैयार हो गया !

स्त्री ने सोचा—अब प्राणो का अन्त सन्निकट है। अगर किसी युक्ति से प्राण बच जाएँ तब तो ठीक, अन्यथा मरना ही पड़ेगा। यह सोचकर उसने तागे वाले से कहा—क्या ही अच्छा होगा, यदि तुम पत्थर बाधकर मुझे कुए मे डालोगे। ऐसा करने से मैं पानी के ऊपर नही आ सकूँगी—पैंदे मे ही पडी-पडी सड जाऊँगी और किसी को पता नही लगेगा कि आखिर क्या हुआ। तुम्हारी कलई नही खुल सकेगी। चाहो वो ऐसा कर सकते हो।

तागे वाले को उस स्त्री की बात जँच गई। वह भारी-सा पत्थर तलाश करने चला गया। इस अवसर में उसने पचपरमेष्ठी का ध्यान किया और मन मे सकल्प किया यदि मैं शीलवती होऊँ तो देवता मेरी सहायता करे।'

इस प्रकार सकल्प करते ही स्त्री ने देखा कि पत्थर उठाते समय भी उस दुष्ट के पैरों से एक काला नाग लिपट गया है और कोई कह रहा है-हे बाई ! तू जेवर लेकर तागे मे बैठ जा और अपने घर की ओर प्रस्थान कर दे।'

स्त्री ने अदृश्य पुरुष के आदेश का अनुसरण किया। वह सकुशल अपने घर आ पहुची। जब वह अपने घर पहुच चुकी तब उस तागे वाले के पैरो को सर्प ने छोडा। सर्प देखते-देखते गायब गया। इस घटना से वह सोचने लगा - अहा, वह नारी सती। देव ने आकर उसकी रक्षा की !

भाइयो ! शील के प्रभाव से ऐसी-ऐसी सैकड़ो घटनाएँ हुआ की हैं। शील के माहात्म्य से उस बाई के प्राणो की और सम्पत्ति

की रक्षा हुई। अगर वह भ्रष्टाचरण वाली होती तो कौन उसकी रक्षा करता ? कोई भी उसका सहायक न होता।

आशय यह है कि शील की रक्षा करने से इस लोक में भी सुख की प्राप्ति होती है और परलोक मे भी। जो शील की रक्षा करता है, शील भी उसकी रक्षा करता है। अतएव प्राणप्रण से शील की रक्षा करो और इसी को अपना बड़े से बड़ा कर्त्तव्य समझो।

महापुरुषो ने शील का पालन करके अपनी समग्र शक्तियो को पूर्ण रूप मे जागृत किया है। आप भी उसी पथ पर चलकर वही महत्ता प्राप्त कर सकते है।
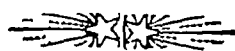
ब्यावर
२७-७-४१

अहिंसाणुव्रत

स्तुति;—

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरि संख्या ।
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ॥

भगवान ऋषदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएँ ?

तीर्थंकर भगवान् जब सुरविनिर्मित समवसरण मे विराज-
ान होते हैं तो उनके मस्तक के पृष्ठभाग मे एक दिव्य प्रकाश वाला
ामण्डल होता है । उसका प्रकाश इतना प्रखर होता है कि यदि
ी सूर्य एकत्रित होकर एक साथ प्रकाश करे तो भी उस भामण्डल

के प्रकाश की समानता नहीं कर सकते। भामण्डल के प्रकाश से दूर-दूर तक जगमगाहट हो जाती है। उसका प्रकाश इतना प्रखर होने पर भी सूर्य के प्रकाश की तरह उत्तप्त नहीं होता, वरन् चन्द्रमा के प्रकाश के समान शीतल और अतीव सौम्य होता है।

आचार्य महाराज ने भगवान आदिनाथ के इसी अतिशय का इस पद्य में वर्णन किया है। वह कहते हैं कि—हे विभो! आपके चमकते हुए भामण्डल की विपुल विभा तीन लोक के समस्त पदार्थों की प्रभा को तिरस्कृत करती है और अपनी अनुपम आभा से दिन में सूर्य की प्रभा को तथा रात्रि में चन्द्रप्रकाश से सुशोभित रात्रि को भी जीत लेती है।

अनेकानेक पूर्वभवों में भगवान ने पुण्य का उपार्जन किया और उसके परिणामस्वरूप तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया। उसी के महात्म्य से यह अनुपम भामण्डल निर्मित हुआ है।

भाइयो! कैसा अपूर्व वायुमंडल रहा होगा उस समय! एक ओर भगवान की परमकल्याणकारिणी, पातकनिवारिणी, भवतारिणी, मोह-अज्ञान संहारिणी दिव्य वाणी भव्य जनों के भाव तिमिर को दूर कर रही थी और दूसरी ओर प्रभु का भामण्डल बाह्य अन्धकार के प्रसार का निवारण कर रहा था। कैसी अपूर्व छटा थी! कैसा आनन्दप्रद वह अवसर था! सर्वत्र आलोक, आलोक और आलोक ही दृष्टिपथ हो रहा था! जिस पुण्यशाली ने प्रभु की दिव्यध्वनि का श्रवण किया, उसके अन्तस्तल का घोर अन्धकार सदा के लिए दूर हो गया। जिसने प्रभु के दर्शन किये, वह भी कृतकृत्य हो गया! सच है-अरिहन्त देव की महिमा अपरम्पार है। तीर्थंकर देव के समान कोई पुण्यशाली पुरुष इस भूतल पर दृष्टिगत नहीं हो सका।

अहिंसाणुव्रत

स्तुति;—

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरि संख्या।
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्॥

भगवान ऋषदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहा तक स्तुति की जाय? हे प्रभो! आपके कहा तक गुण गाये जाएँ?

तीर्थंकर भगवान् जब सुरविनिर्मित समवसरण मे विराज- होते है तो उनके मस्तक के पृष्ठभाग मे एक दिव्य प्रकाश वाला 'डल होता है। उसका प्रकाश इतना प्रखर होता है कि यदि ो सूर्य एकत्रित होकर एक साथ प्रकाश करे तो भी उस भामण्डल

के प्रकाश की समानता नही कर सकते। भामण्डल के प्रकाश से दूर-दूर तक जगमगाहट हो जाती है। उसका प्रकाश इतना प्रखर होने पर भी सूर्य के प्रकाश की तरह उत्तप्त नही होता, वरन् चद्रमा के प्रकाश के समान शीतल और अतीव सौम्य होता है।

आचार्य महाराज ने भगवान आदिनाथ के इसी अतिशय का इस पद्य मे वर्णन किया है। वह कहते है कि—हे विभो! आपके चमकते हुए भामण्डल की विपुल विभा तीन लोग के समस्त पदार्थो की प्रभा को तिरस्कृत करती है और अपनी अनुपम आभा से दिन मे सूर्यो की प्रभा को तथा रात्रि मे चन्द्रप्रकाश से सुशोभित रात्रि को भी जीत लेती है।

अनेकानेक पूर्वभवों मे भगवान ने पुण्य का उपार्जन किया और उसके परिणामस्वरूप तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया। उसी के महात्म्य से यह अनुपम भामण्डल निर्मित हुआ है।

भाइयो! कैसा अपूर्व वायुमडल रहा होगा उस समय! एक ओर भगवान की परमकल्याणकारिणी, पातकनिवारिणी, भव तारिणी, मोह-अज्ञान सहारिणी दिव्य वाणी भव्य जनो के भाव तिमिर को दूर कर रही थी और दूसरी ओर प्रभु का भामण्डल बाह्य अन्धकार के प्रसार का निवारण कर रहा था। कैसी अपूर्व छटा थी! कैसा आनन्दप्रद वह अवसर था! सर्वत्र आलोक, आलोक और आलोक ही दृष्टिपथ हो रहा था! जिस पुण्यशाली प्रभु की दिव्यध्वनि को श्रवण किया, उसके अन्तस्तल का घोर अधकार सदा के लिए दूर हो गया। जिसने प्रभु के दर्शन किये, वह भी कृतकृत्य हो गया! सच है-अरिहन्त देव की महिमा अपरम्पार है। तीर्थंकर देव के समान कोई पुण्यशाली पुरुष इस भूतल पर अवतरित नही हो सका।

पुण्य के प्रभाव से तीर्थंकर भगवान मूलत· एक मुख वाले होने वाले पर भी चतुर्भुज दिखलाई देते हैं दर्शको को ऐसी प्रतीतिहोती है, मानो भगवान् के चारो दिशाओ मे चार मुख है। तीनो लोको के प्राणी भगवान के समवसरण मे उपस्थित होते है और चारो दिशाओ मे स्थित होकर प्रभु के मुखारविन्द से उपदेश श्रवण करते है। उन सभी को ऐसा जान पडता है कि तोर्थंकर देव का मुख हमारी ही ओर है !

भगवान का उपदेश प्राणी मात्र के कल्याण के लिए होता हैं। भगवान ससार को जन्म, जरा, मरण आदि के दु खो से बच कर शाश्वत शान्ति, अखण्ड सुख और परम कल्याण का मार्ग बतलाते है। भगवान् की भाष की सबसे बडी विशेषता यह होती है कि प्रत्येक श्रोता उसे अपनी ही भाषा समझता है और उसके भाव को हृदयगम करने मे तनिक भी कठिनाई का अनुभव नही करता।

भाइयो ! यह ससारी जीव अनादि काल से चौरासी लाख जीवयोनियो मे भटक रहा है। अनेक प्रकार के कष्ट पा रहा है। जन्म लेता है, मरता है, फिर जन्म लेता हैं और फिरता है। यह जन्म-मरण का प्रवाह निरन्तर चल रहा हैं। जन्म के समय मृत्यु के समय और जन्म-मरण के अन्तराल काल मे भी जीव विविध प्रकार की वेदनाएँ और व्यथाएँ भोगता हैं। जब तक जीव कर्मो के अधीन हो रहा है और आत्मा के समस्त विकारो को विनष्ट नही कर देता तब तक उसे शान्ति और विश्रान्ति मिल सकती। भगवान् आदिनाथ ने उसे विश्रान्ति पाने का [illegible] बतलाया हैं। विश्राम पाने के लिए बतलाया हुआ मार्ग भी [illegible] कहलाता है। यह विश्राम, जिन्हे भाव विश्राम कहते हैं,

चार हैं। कल प्रथम विश्राम के सम्बन्ध मे किंचित विवेचन किया गया था। यह विषय बहुत व्यापक हैं। इसको लेकर जितनी विवेचना की जाय, थोडी हैं। विस्तार से कहने के लिये पर्याप्त समय नही हैं, अतएव सक्षेप मे ही चार विश्रामो का निरूपण किया जायेगा।

कर्मो और कर्मजनित विकारो के भार को हल्का करने और हटाने के लिये श्रीस्थानागसूत्र मे कथित चार विश्रामो मे से प्रथम विश्राम हैं—श्रावक के बारह व्रतो को अगीकार करना।

बारह व्रतो मे अहिंसा व्रत को आद्य और प्रमुख स्थान प्राप्त है। इसका कारण यह है कि अहिंसा व्रत के आधार पर ही शेष व्रतो की स्थिति रह सकती है। अहिंसा के बिना कोई भी व्रत नही ठहर सकता। गहराई से विचार किया जाय तो स्पष्ठ प्रतीत होगा कि सत्य और अस्तेय आदि अन्य सभी व्रत अहिंसा की ही शाखाएँ हैं, अहिंसा की पुष्टि के लिये है, अतएव अहिंसा के ही नाना रूप है। अतएव सभी व्रतो मे अहिंसा को प्रथम स्थान दिया गया हैं।

ससार के समस्त धर्मों ने अहिंसा को आदर दिया है। कोई भी धर्म अहिंसा को पाप और हिंसा को धर्म नही मानता। अत. यह कहने मे कोई अडचन नही रहती कि 'अहिंसा परमो धर्म.। इस विषय मे सभी धर्मशास्त्र एकमत हैं।

अहिंसा आत्मकल्याण का सर्वोत्तम साधन है। अन्त करण में जब अहिंसा की वृत्ति बलवती बनती है, तब दया, करुणा और अनुकम्पा की उत्ताल तरगे उठने लगती हैं, तब समभाव की जागृति होती हैं। वैर-विरोध आदि की दुष्ट भावनाएँ दूर हो जाती हैं और तभी आत्मा मे निर्मलता उत्पन्न होती है।

लौकिक एव सामाजिक दृष्टि से भी अहिंसा की महान उपयोगिता अनुभव की जा सकती है। यह कहना अतिशयोक्ति नही कि जगत् की व्यवस्था अहिंसा के आधार पर ही टिकी है ससार अहिंसा के बल पर ही जीवित है। माता के हृदय मे जो दया और अनुकम्पा है, वही तो बालक के प्राणो की रक्षा करती है। अगर माता के मन मे दया का लेश भी न होता तो बालक क्या जिदा रह कर बडा हो जाता ? कदापि नही। प्रथम तो वह गर्भ मे ही नष्ट हो जाता और कदाचित बच जाता तो गर्भ से बाहर आते ही परलोक का अतिथि बन जाता।

अहिंसा का ही प्रताप है कि प्रत्येक सबल निर्बल को नष्ट नही करता है, बल्कि एक दूसरे के जीवन मे सहायक होते हैं थोडी देर के लिए कल्पना कीजिए कि प्रत्येक मनुष्य के चित्त से अहिंसा, दया, सहानुभूति और सवेदना का भाव नष्ट हो गया है और इस कारण समस्त मनुष्य एक दूसरे के रुधिर के पिपासु बन गये है। क्या ऐसी स्थिति मे ससार टिक सकता है ? प्रत्येक मनुष्य अगर दूसरे की जान लेने को ही तैयार हो जाय तो दुनिया कितने दिनो तक कायम रह सकेगी ?

इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हमारे जीवन मे अहिंसा का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अहिंसा ही हमारा पालन पोषण और रक्षण करती है। सत्य यह है कि अहिंसा जीवन है और हिंसा मौत है। यही कारण है कि धर्म मे [अहिंसा] को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। वास्तव मे अहिंसा के [महत्]त्व को देखते हुए उसे यह प्रधान स्थान मिलना ही चाहिए।

प्रश्न हो सकता है कि आप अहिंसा को इतना महत्त्व दे रहे सो ठीक है, परन्तु अहिंसा का आचरण करना तो शक्य नही

है। आखिर जीवन निर्वाह के लिए नाना प्रकार के धधे करने पडते हैं। कोई कृषि करता है, कोई व्यापार करता है, कोई और कुछ करता है। इन सब कार्यों मे प्राणियो की हिंसा अनिवार्य है। यही नही, हमारे चलने-फिरने मे, भोजन बनाने-खाने मे, पानी पीने मे, यहा तक कि श्वास लेने मे भी हिंसा अनिवार्य है। हिंसा से सर्वथा बचकर कोई जीवित नही रह सकता। तब अहिंसा का आचरण कैसे किया जा सकता है ?

इस प्रकार का प्रश्न बहुतो के मनमे उत्पन्न होता है। किन्तु इसके मूल मे हिंसा और अहिंसा के स्वरूप की अनभिज्ञता ही है। हिंसा क्या है ? और अहिंसा का स्वरूप क्या है ? इस तथ्य को यदि सम्यक् प्रकार से समझ लिया जाय तो यह प्रश्न उपस्थित नही होगा और अहिंसा का आचरण करना असभव है, यह भ्रमपूर्ण धारणा भी दूर हो जायगी। अतएव यहा सक्षेप मे हिंसा-अहिंसा के स्वरूप का दिग्दर्शन करा देना अनुचित न होगा। तत्त्वार्थसूत्र मे श्री उमास्वाति वाचक ने हिंसा का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है-

'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा'

अर्थात्—प्रमाद युक्त योगो के वशीभूत होकर प्राणो का नाश करना हिंसा है। अन्यत्र भी कहा है—

प्राणी प्रमादतः कुर्यात्, यत्प्राणव्यपरोपणम् ।
सा हिंसा जगदे प्राज्ञैर्बीजं संसारभूरुहः ॥

अर्थात्—प्राणी प्रमाद के वश होकर प्राणों का विनाश करता है, इसी को तीर्थंकर, गणधर आदि ज्ञानी पुरुष हिंसा कहते हैं और यह हिंसा जन्म-मरण रूप ससार का बीज है।

प्राण दश है—पाच इद्रिया (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और स्रोत) तीन बल (मनोबल, कायबल, बचनबल) श्वासोछ्वास और आयु। इन दस प्राणो का प्रमाद से विनाश करना हिसा है।

हिसा के स्वरूप पर विचार करने से ज्ञात होगा कि इसमे दो बातो का समावेश किया गया है। प्रमाद का योग और प्राण-व्यपरोपण। प्रमादयोग भावहिंसा हैं और प्राणव्यपरोपण द्रव्य-हिसा है। किन्तु यह दोनो परस्पर निरपेक्ष नही हैं। द्रव्यहिंसा एकान्तत. हिसा नही है, परन्तु भावहिसा हिसा ही है। मान लीजिये कोई सयमी अप्रमत्त भाव से यतनापूर्वक, ईर्यासमिति से गमन कर रहा है। अचनाक कोई जन्तु उड कर आता है और उसके पैर के नीचे आ जाता है और मर जाता है। तो वहा भावहिंसा नही, सिर्फ द्रव्य हिसा होती है और उससे वह हिसा के पाप का भागी नही होता।

इसके विपरीत अगर कोई पुरुष किसी मनुष्य को या पशु को मारने के लिए बदूक चलाता है, किन्तु सयोगवश निशाना चूक जाता है। यहा भावहिंसा तो हुई मगर द्रव्यहिंसा नही हो पाई। यह हिसा हिसा ही है और गोली चलाने वाला हिसा के पाप का भागी होता है। कहा भी है:—

शरीरी म्रियतां मा वा, ध्रुवं हिंसा प्रमादिनाम्।
सा प्राणव्यपरोपेऽपि, प्रामादरहितस्य न ॥

अर्थात्—जीव चाहे मरे या न मरे, किन्तु प्रमादयोग वाले अर्थात् कषाय से प्रेरित होकर अयतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाले हिसा का भागी अवश्य होना पड़ता है, किन्तु जो प्रमाद से

रहित है और इस बात की सावधानी रख रहा है कि मेरे द्वारा किसी प्राणी को कष्ट न पहुचे, वह अहिंसक है। कदाचित् प्राण-व्यपरोपण हो जाय तो भी वह हिंसा के पाप का भागी नहीं होता। क्योंकि उसकी भावना हिंसा करने की नही है।

इस विवेचन से साफ हो जाता है कि जिसके अन्तःकरण मे दया का वास हैं और जो यतनापूर्वक प्रवृत्ति करता है, वह तद्विषयक हिंसा के पाप का भागी नही होता। ऐसी स्थिति मे यह कहना भ्रमपूर्ण है कि जीवन में प्राणिहिंसा अनिवार्य होने के कारण कोई अहिंसा का पूरी तरह आचरण नही कर सकता। क्योंकि—

न यत्प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपणम् ।
त्रसानां स्थावराणां च, तदहिंसाव्रतं मतम् ॥

अर्थात्—त्रस और स्थावर जीवों के प्राणो का प्रमाद-योग से नाश न करना ही अहिंसा व्रत माना गया है।

इससे स्पष्ट है कि अहिंसा का पालन करने के लिए जीवन को समस्त प्रवृतियो को बद कर देने की आवश्यता नही है, श्वास लेना भी स्थगित कर देना अपेक्षित नही है, वरन् प्रमाद का परित्याग करना आवश्यक है। कषाय को नष्ट करना, अज्ञान एव भ्रम को दूर करना अपेक्षित है। जो विवेकवान् पुरुष प्रमाद का परित्याग करके यतनापूर्वक व्यवहार करता है, वह निश्चय ही अहिंसा का आराधक है।

अहिंसा की आराधना के लिए शास्त्रकारो ने अनेक योजनाएँ की हैं। उनमे से एक महत्त्वपूर्ण योजना यह हैं कि आराधको की

परिस्थिति और योग्यता का विचार करके अहिंसा की अनेक कोटियाँ उन्होने बना दी हैं। उदाहरणार्थ-अहिंसा की मुख्य दो कोटियाँ है-महाव्रत रूप अहिंसा और अणुव्रत रूप अहिंसा।

सर्वसग के त्यागी, गार्हस्थ्य की झझटो से छुटकारा पा लेने वाले, और एकान्त आत्मसाधना मे दत्तचित्त मुनिराज महाव्रत रूप अहिंसा का पालन करते है। वे त्रस और स्थावर-दोनो ही प्रकार के जीवो की हिसा के त्यागी होते है। मन, वचन और काय से न स्वय हिसा करते हैं, न दूसरो से करवाते हैं और न हिसा की अनुमोदना करते हैं। वे पूर्ण रूप से हिसा के त्यागी कहलाते है।

गृहस्थ इस श्रेणी की अहिंसा का पालन नही कर सकता। उसे आरभ-समारभ करना ही पड़ता है और जहाँ आरभ-समारभ है, वहाँ हिसा अनिवार्य है। अतएव वह केवल त्रस जीवो की हिसा का त्यागी हो सकता है। त्रस जीवो की हिसा से भी पूरी तरह वह बच नहीं पाता। अतएव उसके लिए निरपराध त्रसजीवो की सकल्पजा हिसा का त्याग करना ही आवश्यक बतलाया गया है।

इस प्रकार अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक साधक को हिसा का त्याग करके अहिंसा की आराधना करनी चाहिए। लेकिन सदैव इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि साधक का प्रत्येक कदम अहिसा की ओर ही अग्रसर हो। क्योकि अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है और उसके अभाव मे कोई धर्म नही टिक सकता। कहा है—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परं फलम् ।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥
अहिंसा परमं ध्यानमहिंसा परमं तपः ।
अहिंसा परमं ज्ञानमहिंसा परमं पदम् ॥

अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा परम इन्द्रियदमन है। अहिंसा परम दान है और अहिंसा ही परम तप है। अहिंसा परम यज्ञ है। अहिंसा परम फल है। अहिंसा परम मित्र है। अहिंसा परम सुख है। अहिंसा परम ध्यान है। अहिंसा परम ज्ञान है। और अहिंसा ही परम पद है !

कितने भाव पूर्ण शब्दों मे अहिंसा का महत्त्व दिखलाया गया है ! वास्तव मे अहिंसा जगत् की माता है, वही शक्ति है, वही कल्याणकारिणी है। जैन शास्त्रो मे अहिंसा का अत्यन्त व्यापक और सूक्ष्म विवरण दिया गया है। उसे समझकर यथाशक्ति पालन करना मनुष्य का कर्तव्य है।

अहिंसा के आराधक को निरन्तर जागृत और सावधान रहना पडता है। उसे ऐसे प्रत्येक विचार और आचार से बचना पडता है, जिससे उसके व्रत का पूरी तरह या आंशिक रूप से खडन हो। इसी कारण शास्त्रो मे अहिंसा के पाच अतिचार बतला दिये गये हैं, ताकि साधक उनसे बचता रहे। वह पांच अतिचार यह हैं:—

(१) वध—क्रोध के आवेश में आकर पशु या मनुष्य आदि को मारना, पीटना, घाव लगाना आदि।

(२) बंधन-कषाय से प्रेरित होकर पशु आदि को ऐसे बंधन से बाधना कि जिससे उसे कष्ट पहुचे ।

यहां यह बात ध्यान मे रखनी है कि दया से प्रेरित होकर प्राणी के प्राणो की रक्षा की भावना से उसे बाध देना या बन्धन से खोल देना अतिचार नही है ।

(३) छविच्छेद—पशु आदि के अवयव का छेदन करना, चमड़ी काटना, बैल या घोडा आदि को खस्सी करना आदि ।

(४) अतिभारारोपण—घोडा, गधा, भैसा ऊँट आदि पर उसकी शक्ति से अधिक भार लादना । नौकरो से अधिक काम लेना।

(५) भक्तपानविच्छेद-जिन पशुओ या मनुष्यो को भोजन पानी देना अपने अधिकार मे है, उन्हे यथासमय ,भोजन पानी न देकर भूखा प्यासा रखना । कोई किसी को आहार देता 'हो या पानी पिलाकर साता उपजाता हो तो उसे मना करना और अत-राय देना ।

अहिसाणुव्रत के यह पाच अतिचार जानने योग्य है, परन्तु आचरण करने योग्य नही है । अतएव श्रावक को इनसे बचने का प्रयत्न करना चाहिये । कदाचित् किसी अतिचार का सेवन भूल या प्रमाद से हो गया हो तो उसका प्रायश्चित करके शुद्धि करनी चाहिए

भाइयो ! उपर्युक्त विवेचन से यह न समझ लेना कि श्रावक हिसा का ही त्यागी होता है, अतएव उसे स्थावरजीवो की । नही करनी चाहिए । सम्यग्दृष्टि पुरुष प्रत्येक हिसा को त्याज्य ही भता है । उसकी श्रद्धा और और साधु की श्रद्धा मे कोई अन्तर नही

होता। हा, श्रावक स्थावर जीवो की हिंसा का त्याग करने समर्थ नही हैं, इसी कारण वह त्याग नही कर पाता हैं, किन्तु त्यागना अवश्य चाहता हैं। जिसकी ऐसी दृष्टि होगी और जिसकी श्रद्धा शुद्ध होगी,वह स्थावर जीवो की हिंसा से भी बचने का अधिक से अधिक प्रयत्न करेगा और निरर्थक हिंसा तो कदापि नही करेगा।

पृथ्वीकाय,जलकाय,तेजस्काय,वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीव स्थावरजीव कहलाते हैं। इनमे चार प्राण पाये जाते है। जैसे त्रसजीव को वेदना का अनुभव होता हैं, वैसे ही स्थावर जीवो को भी वेदना का अनुभव होता हैं। वे भी दु ख से बचना चाहते हैं। दु.ख उन्हे अप्रिय हैं। पृथ्वी आदि के एक-एक कण मे असख्यात तथा अनन्त जी विद्यमान हैं। पानी के एक बू द मे असख्य जीव होते हैं। ऐसा सर्वज्ञो का कथन है। अतएव जहा तक सभव है उनकी रक्षा करना और कष्ट न पहुचाना हमारा परम कर्तव्य हैं।

जगत् मे भाति भाति के जीव-जन्तु हैं। उन सब मे मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित होती हैं। उसे सबसे अधिक समझदार होना चाहिए। अन्य प्राणियो का रक्षक बनना चाहिए। ऐसा करने मे ही मनुष्य की बुद्धिमत्ता और विवेक की विशिष्टता हैं:

मगर खेद की बात है कि सब मनुष्य अपने इस कर्तव्य का पालन नही करते। जैसे सिह जगल मे गाय, बकरी, हरिण प्रभृति पशुओ का भक्षण कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य भी इन पशुओ का मास खा जाता है। मनुष्य न पृथ्वीकाय को, न अप्काय को, न तेजस्काय को, न वायु काय को, न वनस्पतिकाय को और न त्रसकाय को ही छोड़ता है। मनुष्य विवेक को तिलाजलि दे देता है और स्वार्थ के वशीभूत होकर किसी भी प्राणी का विनाश करने मे सकोच नही करता। वह भूल जाता है कि आगे चलकर पाई पाई

का हिसाब चुकाना पडेगा। प्रत्येक कृत्य फल भोगना होगा, प्रत्येक का बदला चुकाना होगा।

भाइयो! यह तुम्हारे सौभाग्य का फल है कि तुम्हे वीतराग देव की वाणी सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस परमकल्याण मयी वाणी की श्रवण करने की सार्थकता यही है कि तुम पापो से बचो, हिसा से दूर रहो और अन्य प्राणियो के प्रति ऐसा व्यवहार करो, जैसा तुम अपने लिए चाहते हो! कहा भी है -

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

अर्थात्- दूसरो के प्रति ऐसा व्यवहार मत करो, जो तुम अपने लिए पसन्द नही करते।

जो बात तुम्हे अप्रिय है, वह औरो को भी अप्रिय है। तुम सुख चाहते हो तो दूसरे प्राणी भी सुख चाहते हैं। तुम कष्ट और पीडा से बचना चाहते हो तो दूसरे भी बचना चाहते है। अतएव तुम अन्य प्राणियो को अपने ही समान समझ कर व्यवहार करो। श्रीमदाचारागसूत्र मे कहा है—

'जे अईया, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमिस्सा अरिहंता भगवन्तो, ते सव्वे एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्ण-विंति, सत्ता न परूविंति, सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हन्तव्वा, न अज्जावेयव्वा, न परिघित्तव्वा, परियावेयव्वा, न उद्दवेयव्वा। एस धम्मे सुद्धे, .निइए, ासए, समिच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेइए॥

—चतुर्थ अ०, प्रथम उ०।

अर्थात्—भूतकाल मे जो तीर्थंकर हो चुके हैं वर्तमानकाल में जो तीर्थंकर विद्यमान हैं और भविष्यकाल मे जो तीर्थंकर होंगे, उन सब का यही कथन और यही उपदेश है कि किसी भी प्राणी (द्वीन्द्रिय आदि) को, किसी भी भूत (वनस्पतिकाय) को, किसी भी जीव (पंचेन्द्रिय) को और किसी सत्त्व को (पृथ्वीकाय आदि को) डडे आदि से नही मारना चाहिए, उन्हे शारीरिक और मानसिक सन्ताप नहीं देना चाहिए और प्राणो से रहित नही करना चाहिए। यह धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। ससार के दुखो को जान कर सर्वज्ञ भगवान् ने इस धर्म का उपदेश दिया है।

इस कथन से स्पष्ट है कि अहिंसाधर्म अनादिकाल से चला आ रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा।

भाइयो! इसलिए मैं कहता हूं कि तुम इस शाश्वत धर्म का पालन करो। शास्त्रो की मर्यादा की रक्षा करो। याद रखो मर्यादा का उल्लघन करना घोर पाप है।

एक बार एक राजा ने अपनी प्रजा को बाग मे जाकर महोत्सव मनाने के लिए आदेश दिया। इस आशय की उसने घोषणा करा दी। साथ ही यह भी ऐलान करा दिया कि जो बाग में नहीं जाएगा और घर रह जायगा, वह दड का भागी होगा। वह दड फांसी से कम न होगा। लोग यह ऐलान सुन कर खाने-पीने का सामान लेकर बाग मे पहुचे और आनन्दपूर्वक महोत्सव में शरीक हुए।

सेठ अपनी सेठानी के साथ बाग में चला गया। सारे शहर मे सिर्फ वही छह भाई रह गये, शेष सब बाग मे पहुच गए।

सन्ध्या समय राजा ने अपने कर्मचारियो को हुक्म दिया-अगर कोई शहर मे रह गया हो तो उसे मेरे समक्ष उपस्थित करो

कर्मचारियो ने पता लगाया और सेठ के छहो लडको को पकड कर राजा के सामने हाजिर किया। राजा उन लड़को को देख कर क्रोध से तिलमिला उठा। उसने हुक्म दिया—जाओ, राजाज्ञा के उल्लघन के अपराध मे इन्हे अभी अधेरी कोठरी मे बद कर दो। बाद इनके सम्बन्ध मे विचार किया जायगा।

छहो लडके अधेरी कोठरी मे बद कर दिये गये। वह आपस मे सोचने लगे-कोई परवाह नही है। पिताजी प्रभावशाली व्यक्ति हैं। प्रातःकाल होते ही वह इस अधेरी कोठरी से छुडा लेंगे। रात भर का ही सकट है।

प्रातःकाल होते ही राजा ने उन छहो लडको को फासी के तख्ते के हवाले कर देने का हुक्म दे दिया।

विद्युत्-वेग से यह समाचार बाग मे जा पहुचा। बहुत-से नर-नारी और लडको का पिता उसी समय भाग कर आये और राजा की सेवा मे उपस्थित हुए। वहां लडको को फासी पर लटकाने की व्यवस्था हो रही थी। सेठ अत्यन्त घबरा गया। उसके शरीर से पसीना चूने लगा। उसने गिडगिडा कर राजा से प्रार्थना की—अन्नदाता, यह बालक अबोध है। इन्हे क्षमादान दीजिए। प्राणो की भिक्षा दीजिए। इनके प्राणो के बदले इनकी तोल के जवाहरात ले लीजिए। किन्तु मेरे प्राणप्रिय पुत्रो के प्राणो की रक्षा कीजिए।

राजा ने सेठ की प्रार्थना पर कान नही दिया और जल्लादो को हुक्म दिया—जल्दी करो, देरी हो रही है।

नगरनिवासीजनो ने भी अनुरोध, आजीजी और अभ्यर्थना करने मे कसर न रक्खी, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। राजा ने किसी की न सुनी।

अन्त मे निराश होकर सेठ ने कहा—पृथ्वीनाथ, छहो को क्षमा नही करना चाहते तो पाच को छोड दीजिए।

राजा इस पर भी तैयार न हुआ।

तब सेठ बोला—अच्छा, चार के प्राण बचने दीजिये।

राजा फिर भी टस से मस न हुआ। सेठ ने अन्त मे कहा महाराज, सब पुत्रो की मृत्यु से मेरे घर मे अधेरा हो जाएगा। दया करके एक पुत्र को तो बचने दीजिए। मेरे कुल की रक्षा तो कीजिए।

राजा का हृदय द्रवित हो गया। उसने एक पुत्र को सेठ के हवाले कर दिया। शेष पाच पुत्र फासी पर चढा दिये गये।

इस उदाहरण का उपनय यह है कि जैसे सेठ को अपने छहो पुत्र समान रूप से प्रिय थे और वह सब के प्राणो की रक्षा करना चाहता था, इसी प्रकार भगवान् को छहो काय के जीवो पर समान रूप से अनुकम्पा है। वे सब की रक्षा करना चाहते हैं। परन्तु विवशता की स्थिति मे जैसे सेठ ने एक पुत्र की प्राणरक्षा की याचना की, उसी प्रकार भगवान् ने भी श्रावको से कहा—तुम किसी भी प्राणी की हिंसा न करो। फिर भी अगर षटकाय के जीवो की हिंसा से नही बच सकते तो कम से कम त्रसकाय के प्राणो की तो रक्षा करो। इतना करोगे तो भी तुम्हारा कल्याण हो जायगा।

भाइयो ! श्रावक का दर्जा पाने के लिए यह आवश्यक है कि आप कम से कम त्रसजीवो की सकल्पजा हिंसा का परित्याग करें और स्थावर जीवो की निष्प्रयोजना हिंसा से बचें। इस प्रकार की मर्यादा करना भी जीवन के लिये हितकर है। यह मर्यादा मनुष्य को स्थूल पाप से बचाने वाली है।

भाइयो, जरा बिचार करो कि मर्यादा करने मे आपको क्या कठिनाई हो सकती है ? ससार मे लाखो वनस्पतिया है। उन सब को आप जानते भी नही है, पहचानते भी नही है। ऐसी दशा मे उन सब को खाने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। सब मनुष्य के लिये खाने योग्य भी नहीं होती। तब अगर आप उनमे से अधिकाश का त्याग कर दे तो आपको क्या हानि है ? आप बहुत-से पाप से बच सकते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य कामो की भी मर्यादा करके बहुत-से पापो से अपनी आत्मा की रक्षा की जा सकती है। अतएव प्रत्येक वस्तु की मर्यादा कर लो। इससे तुम्हारी आत्मा को शान्ति मिलेगी, विश्रान्ति मिलेगी।

भाइयो ! भगवान ने संसारी जीव को शन्ति पहुचाने के उद्देश्य से जो चार भाव-विश्राम बतलाये हैं, उनमे से पहला विश्राम श्रावक के व्रतो को धारण करना है। उन व्रतो मे भी प्रथम व्रत अहिंसा है। आज उस पर संक्षेप मे विचार किया गया है। आगे का विचार आगे किया जायेगा। आप अहिंसाव्रत को धारण करेंगे तो आनन्द ही आनन्द हो जायगा !

ावर }
-७-४१ }

—०—

७
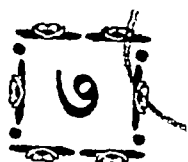
प्यारे ! धर्म करो !
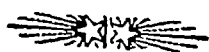
स्तुति;—

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
विम्वं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य ।
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥

भगवान ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएँ ?

तीनो लोको की समस्त उपमाओ को जीत लेने वाला और सुरो, नरो तथा उरगो के चित्त को हरण करने वाला आपका मुखमण्डल कहा और कलंक से मलीन तथा प्रातःकाल होते ही पीले पडे हुये पत्ते के समान निष्प्रभ-फीका-दिखाई देने वाला चन्द्रमा

कहा ? दोनो मे बडा अन्तर है। जब चन्द्रमा से भी आपके मुख-मण्डल की उपमा नही दी जा सकती तो दूसरे पदार्थ किस गिनती मे हैं ? इस कारण ससार मे ऐसा कोई पदार्थ नही दिखाई देता जिसके साथ आपके मुख की उपमा दी जा सके। अतः वह अनुपम है। निरन्तर तपस्तेज से देदीप्यमान, कोटि कोटि चन्द्रमाओ का छबि से भी उत्तम छबि वाला आपका मुखमण्डल वास्तव मे असाधारण और अद्वितीय है।

ऐसे भगवान ऋषभदेव है। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! शका की जा सकती है कि जगत् मे जितने भी कार्य हैं, उन सब के कारण अवश्य होते है। बिना कारण कभी कोई कार्य नही हो सकता। इस न्यायशास्त्र के अटल सिद्धान्त को सामने रखने से प्रश्न उपस्थित होता है कि भगवान को ऐसी अनुपम छबि कैसे प्राप्त हुई ? इसका उत्तर यह है कि प्रभु ने अगर किसी चीज पर अधिक से अधिक बल दिया तो तपश्चर्या और आत्मशक्ति के विकास पर। और तपश्चर्या प्रभाव से ही इतना सुन्दर शरीर प्राप्त होता है। भगवान की तपश्चर्या सर्वोत्कृष्ट होने से उनका शरीर सौन्दर्य भी सर्वोत्कृष्ट था। एक कवि ने कहा है: —

तप बिन मिले न राज, बांह बिन हटे न दुर्जन।

सत्य तो यह हैं कि ससार मे जो भी सुख या दु ख हैं, सब पनी-अपनी करणी का फल हैं। एक राज है और दूसरा रक हैं, श्रीमन्त हैं और दूसरा गरीब है। एक सुन्दरता से सम्पन्न हैं र दूसरा कुरूप हैं। एक स्वस्थ एव नीरोग है और दूसरा सदैव ाट पर पडा कराहता रहता है। समान उद्योग करने पर भी एक

को अपने प्रयत्न मे सफलता मिलती हैं और दूसरे को असफलता का सामना करना पडता है। यह सब क्यो होता है।

कई लोग, जो आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास नही करते और केवल भौतिक सत्ता पर ही अखण्ड आस्था रखते हैं, कहते हैं कि यह सब बाह्य कारणो से होता हैं। सधनता और निर्धनता को तथा नीरोगता और रुग्णता को भी वे बाह्य कारणो से उत्पन्न होने वाला ही स्वीकार करते हैं। वे पुण्य-पाप की सत्ता स्वीकार नही करते। परन्तु जब सीधा प्रयत्न करने पर भी उलटा परिणाम निकलता है तब उन्हे भी पुण्य पाप की सत्ता अगीकार करनी ही पडती है। दो व्यक्ति समान साधन लेकर एक-सा उद्योग करते हैं, फिर भी उनके उद्योग का फल समान नही होता। यह सब केवल बाह्य कारणो का ही फल नही है। यह सत्य हैं कि बाह्य निमित्त भी अपना अस्तित्व और प्रभाव रखते हैं, परन्तु आन्तरिक कारण भी बडा प्रबल होता है। उसे अस्वीकार कर देने मात्र से काम नही चल सकता।

एक ही माता-पिता के दो पुत्रो मे कभी-कभी जमीन आसमान जैसा अन्तर दिखाई देता हैं। आन्तरिक कारणो की भिन्नता ही वहा मुख्य है। दोनो समान वातावरण में पलते हैं, समान भोजन करते हैं, समान वेषभूषा पहनते हैं, समान शिक्षा के साधन पाते हैं, फिर भी एक विद्वान् बन जाता है और दूसरा मूर्ख बना रहता है। एक बलिष्ठ और नीरोग होता हैं, दूसरा दुर्बल और रोग ग्रस्त। यह क्यो होता हैं ? किसी आन्तरिक कारण के बिना यह भेद नही हो सकता। इसका जो आन्तरिक कारण है, वही पुण्य-पाप कहलाता हैं। उसे चाहे अदृष्ट कहिए, चाहे धर्माधर्म कहिए, चाहे कुछ और कह लीजिए। नाम मे कोई झगडा हैं, वस्तु वही होनी चाहिए।

तात्पर्य यह है कि जो जैसा पुण्य-पाप करता है, उसको उसी के अनुरूप फल की प्राप्ति होती है। तीर्थंकर भगवान् की तपश्चर्या असाधारण होती हैं, अतएव उसके फलस्वरूप उन्हे असाधारण शारीरिक सम्पदा प्राप्त होती है। यही कारण है कि विश्व की किसी भी वस्तु के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती।

भाइयो ! पुण्य और पाप मुख्य रूप से आपके मन वचन और काम पर निर्भर है। इन तीनो को जैसी प्रवृत्ति होगी, वैसी ही पुण्य या पाप आप बांध सकते है। क्योकि कहा है:—

कायवाङ्मनः कर्मयोगः। स आस्त्रवः ॥

अर्थात्—मन, वचन और काया की प्रशस्त या अप्रशस्त प्रवृत्ति योग कहलाती है और यही योग आस्त्रव है।

इस प्रकार मन, वचन और काय, यह तीन जीव की दुकाने हैं। इन दुकानो मे ही व्यापार होता है और इन्ही के द्वारा नफा और नुकसान होता है। अगर यह तीनो न रहें तो न कोई करणी और न तज्जन्य कर्म ही हो सकते हैं। इन तीनो मे भी मन की प्रवृत्ति को मुख्य समझना चाहिए। शरीर से परिमित ही क्रिया की जा सकती है और वचन भी परिमित ही बोले जा सकते हैं, परन्तु मन की क्रिया की तो कोई सीमा ही नही है। मन तो असीम व्यापार करता है और इसीलिए कहा गया है:—

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः।

अर्थात् मन ही मनुष्यो के बन्ध और मोक्ष का कारण है।

हे भाइयो ! अनन्त अनन्त पुण्य के प्रताप से आपको मन प्राप्ति हुई है। देखो, ससार मे कितने जीव बिना मन के-असज्ञी

अवस्था मे भ्रमण कर रहे है। उनमे हित-अहित का विवेक नही है। वे कल्याण-अकल्याण की बात नही सोच सकते। परन्तु आपको यह महा सौभाग्य मिला है। मन के रूप मे एक बडी जबर्दस्त ताकत आपके पास है। मगर इसकी सार्थकता इसके प्रयोग पर निर्भरता है। अगर आप मनको खराब व्यापार मे लगाएँगे तो कोई लाभ नही होगा, बल्कि हानि ही होगी। इतनी बहुमूल्य वस्तु का दुरुपयोग करके अपना उलटा अहित करना कितनी बडी नासमझी है, यह आप स्वय समझ सकते हैं।

मन को पवित्र कार्य मे लगाना आपका प्रथम कर्त्तव्य है। ऐसा करने मे न पैसा खर्च होता है और कोई कष्ट ही उठाना पडता है। सहज ही धर्म और पुण्य कमाने का यह सुलभ उपाय है। किसी का बुरा न सोचना किसी को कष्ट देने का विचार न करना, किसी के धन-जन की हानि होने की भावना न करना, बल्कि सदैव दूसरो के सुख की कामना करना कौन-सा कठिन है ?

कई अज्ञान जन व्यर्थ ही दूसरो का बुरा विचारते हैं। अमुक के मकान मे आग लग जाय, इसको व्यापार मे घाटा पड जाय, उसका पूत मर जाय, स्त्री मर जाय इत्यादि अपध्यान किया करते हैं। शास्त्रकार इसे अनर्थदण्ड कहते हैं। यह निरर्थक पाप है। प्रत्येक पाप से बचना चाहिए, किन्तु निरर्थक पाप से तो बचना ही चाहिए। जिस पाप के सेवन से आपको किंचित भी लाभ नही है, उसका सेवन करके आप अपने रास्ते मे काटे क्यो बो रहे हैं ? अपनी आत्मा को मलीन क्यो कर रहे हैं ? मनुष्य होकर और वीतरागप्ररूपित धर्म को श्रवण करके भी अगर आप इतनी सीधी सादी बात नही समझ सकते तो आश्चर्य की बात है'

किसी को चिन्तामणि मिल जाय और वह उससे अपना माथा फोड ले तो आप उसे क्या कहेगे ? बुद्धिमान कहेगे या बुद्धिहीन कहेगे ? भाग्यवान कहेगे या अभागा कहेगे ? मन तो चिन्तामणि रत्न से भी अधिक मूल्यवान है। क्योकि चिन्तामणि चिन्तित पदार्थ की पूर्ति करता है परन्तु चिन्तन तो मन से ही किया जायगा। मन न होगा तो किससे इष्ट पदार्थ का चिन्तन करोगे ? असज्ञी जीव के पास चिन्तामणि पडा हो तो वह उससे क्या लाभ उठा सकता हैं? उसके लिए वह व्यर्थ हैं। तो चिन्तामणि की उपयोगिता की पहिचान कराने वाला भी मन ही है। अतएव मन उससे भी अधिक मूल्यवान् सिद्ध होता है। वह भाग्योदय से आपको सहज ही प्राप्त हैं। फिर भी उसका दुरुपयोग क्यो करते हो ? मन का दुष्प्रणिधान करना चिन्तामणि से कपाल फोडने की अपेक्षा भी अधिक मूर्खता हैं।

वचन और तन तो मन के चेरे है। जिस रास्ते मन उन्हे ले जायगा वे उसी रास्ते चले जाएगे। अतएव मन को शुभ बनाने से वचन और काया की प्रवृत्ति भी शुभ होने लगेगी। इस प्रकार जब तीनो योग शुभ होकर रहेगे तो आप अशुभ कर्मबन्धन से बच जाएगे। मन, वचन और काय के रूप मे आपको जो शक्तिया मिली है, इनसे आप अपने को तार भी सकते है और मार भी सकते है। अजर-अमर भी बना सकते है और जन्म-मरण के अनन्त स्त्रोत मे भी गिरा सकते है। अब यह निर्णय करना आपका कर्त्तव्य है कि आप क्या चाहते है ? समझदार हो तो गभीरता से चा. करो।

वचन कर्म की हुड्डी है, आत्मा इसका अधिकारी है।
टा और नफा स्वयं भोगे, इसमें नहिं साझेदारी है॥

भाइयो ! मन वचन और काया यह तीन दुकाने हैं और इन्ही के द्वारा आत्मा व्यापार करता हैं। इन्ही तीन दुकानों के द्वारा नफा और नुकसान होता है। जैसा-जैसा माल खरीदोगे वैसा ही पाओगे। जैसे कर्म करोगे वैसा हो फल पाओगे। जब ससार के समस्त प्राप्त वैभव का परित्याग करके यहा तक कि शरीर काभी त्याग करके आत्मा निकलता है तब खुद के किए कर्म ही साथ जाते हैं और उन्ही के अनुरूप परभव मे दु ख या सुख की प्राप्ति होती है। भगवान् महावीर स्वामी ने भी श्रीउत्तराध्ययनसूत्र मे फर्माया है :--

कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छइ उ परं भवं ।
सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए ॥

सुना भाइयो ! एक राजा शिकार करने के लिए वन मे गया। वहा उसने एक मृगयूथ को देखा और उसमे से एक हिरण को लक्ष्य करके बाण चलाया।

विचार होना है, राजा शिकार करने क्यो गया ? क्या छोटे-छोटे पशुओ की हत्या करने मे उसकी कोई बहादुरी थी ? क्या उन पशुओ के पास, जो घास खाकर और सरोवर का पानी पीकर अपनी जिंदगी व्यतीत करते हैं, कोई खजाना था, जिसे पाने के लिए राजा उनके प्राण लेने पर उतारू हुआ है ? क्या जगल मे विचरण करने वाले उन दीनहीन पशुओ ने राजा के किसी कानून का उल्लघन किया था कि वह उन्हे सजा दे रहा था? आखिर क्यो उसने उन निरपराध और निशस्त्र पशुओ के प्राण लिये ? इनमे से कोई भी कारण नहीं था। बेचारे पशु किसी पर डाका नही डालते। किसी का कुछ नही बिगाडते। फिर भी मनुष्य उनकी

हत्या करता है। यह मनुष्य का मनुष्येतर प्राणियो के प्रति घोर अन्याय और अत्याचार है। पर उन मूक प्राणियो की वकालत करने वाला कौन है ? लोकोक्ति है – ज्वर्दस्त का ठेगा सिर पर मनुष्य सबल और शक्तिशाली प्राणी है और निर्बल प्राणियो के साथ जैसा सलूक करना चाहे, कर सकता है। वे फरियाद करने जाए तो कहा जाए ? उन बेचारो की कौन सुनता है ?

हम जैसे कुछ लोग है जो उनके पक्ष मे चिल्लाते है, परन्तु हमारे सम्पर्क मे आने वाले कितने लोग है ? हमारे पास भी अपनी बात को मनवाने के लिए कोई सत्ता नही हैं। हम उपदेश करते हैं। आपकी सोई हुई आत्मा को जगाने का प्रयत्न करते हैं। आपकी सद्भावनाओ पर तो आच्छादन आया हुआ है, उसे दूर करने का प्रयास करते हैं। आपकी नैतिक भावना को उभाडना चाहते हैं परन्तु ससार बहुत बडा है और प्राणी मात्र की आत्मा को समान समझ कर उन पर करुणा करने वाले और करुणा का उपदेश देने वाले सन्त थोड़े है। यही कारण है कि ससार मे निरपराध जीवो की आखेट के नाम पर, धर्म के नाम पर या जिह्वालोलुपता आदि के लिए घोर हिंसा हो रही है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस राजा को यदि सतो की संगति करने का अवसर मिला होता तो वह शिकार खेलने न गया होता। परन्तु उसे सत्सग नही मिला। सत्सग के बिना सच्चा ज्ञान प्राप्त होना कठिन है। जिस व्यक्ति को बाल्यावस्था से ही सत्सगति का लाभ हो जाता है, वह सैकडो बुराइयो और निरर्थक पापो से कर अपने जीवन को उच्च और पवित्र बना सकता है।

आज के बालको, विद्यार्थियो और नवयुवको को देखते तो प्रतीत होता है कि वे सत्सग से और धर्म से कोसों दूर भागते

है। साधु-सन्तो के पास जाना और उनका उपदेश सुनना उन्हें व्यर्थ जान पडता है। वे सिनेमा के शौकीन बन गये हैं। धर्म से विमुख बनाने वाले, विलासवृत्ति और विकार भावना जगाने वाले जीवन के अणु-अणु मे अनैतिकता के विष को घोलने वाले और जिन्दगी को सत्यानाश करने वाले चलचित्रो के प्रति उन्हे अभिरुचि है। वे पैसे देकर विनाश को मोल लेने के लिए उतावले रहते हैं। परन्तु घडी भर किसी सन्त पुरुष के पास जाकर नीति और धर्म की बात करना पसन्द नही करते।

यही नही, कुछ लोग तो खुल्लमखुल्ला धर्म और ईश्वर का विरोध भी करने लगे हैं। कहते हैं--धर्म ढोंग है और ईश्वर पाखण्ड है! कुछ लोग धर्म को झगड़ो का कारण समझते है और उसे हेय कह कर अपनी अक्लमन्दी का परिचय देते हैं।

परन्तु मैं कहता हू कि ऐसे लोग नादान हैं। वे धर्म के स्वरूप को किंचित भी नही समझते हैं। धर्म ही ससार मे शान्ति और सुख का एक मात्र आधार है। धर्म ही जगत को धारण कर रहा है। धर्म के बिना दुनियाँ टिक नही सकती जिस दिन दुनिया से पूरी तरह धर्म उठ जाएगा, उसी दिन प्रलय को काली घटाएँ उमड पडेगी। अहिंसा, सयम, तप, यह धर्म है। कौन कह सकता है कि इस धर्म को बदौलत ससार को कभी हानि पहुँची है या आगे पहुच सकती है? लेकिन जिनके दिमाग मे मिथ्याज्ञान की दुर्गन्ध भरी है, उन्हे कैसे समझाया जा सकता है?

ऐसा भ्रमपूर्ण विचार रखने वाले लोग आज बढते जा रहे हैं और सच पूछिए तो इसी कारण दुनिया के दुःख बढते जा रहे हैं जो लोग ऐसे गदे विचार रखते हैं, उनकी सन्तान भी इसी प्रकार की मलीन विचार वाली होती है। किसी ने कहा है:—

जैसे होंगे नदी नाले, वैसे उनके कड़का कड़की।
जैसे होंगे माता-पिता, वैसे उनके लड़का लड़की।।

जो लोग प्रातः साय धर्मक्रिया करते है, प्रतिदिन सन्तो का उपदेश सुनते है और धर्म स्थान मे जाकर आध्यात्मिक विचारधारा को जगाते है, उनके बालक भी उनका अनुकरण करते है। अथवा वे बालको को ऐसा करने के लिए प्रेरणा दे सकते है। परन्तु जो लोग स्वय धर्म से विमुख है वे अपने बालको को कैसे प्रेरणा देगे? और उन बालको का आगे चल कर क्या हाल होगा? पहले के गृहस्थ स्वय धर्मक्रिया करते। साथ ही उन्हे किसी जीव को न सताने की, पराई चीज बिना पूछे न उठाने की तथा देव गुरु धर्म पर श्रद्धा रखने की शिक्षा दिया करते थे। पर आज इस ओर किसी का लक्ष्य ही नहीं दिखाई देता।

उस राजा को सत्सगति नही मिली थी। इस कारण वह क्षत्रिय के वास्तविक कर्त्तव्य से भी अनभिज्ञ था। क्षत्रिय का कर्त्तव्य तो यह है कि वह सबल से निर्बल की रक्षा करे, किसी पर अन्याय-अत्याचार न होने दे और ऐसा वातावरण बनाए कि सब सुख-शान्तिपूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सके। राजा अपने इस कर्त्तव्य से अनभिज्ञ होने के कारण निरपराध जीवों की हत्या करने के लिए वन मे गया। उसने हिरन यूथ पर बाण चलाया। किसी ने ठीक ही कहा है –

वसन्त्यरण्येषु चरन्ति दूर्वाम्,
पिबन्ति तोयान्यपरिग्रहाणि।
ापि वध्या हरिणा नराणाम्।
को लोकमाराधयितुं समर्थः॥

बेचारे हिरण वन मे निवास करते है, दूब-घास खाकर जीवनयापन करते हैं, पानी पीते हैं और शरीर के सिवाय कोई सम्पत्ति उनके पास नही होती। फिर आश्चर्य की बात है कि मनुष्य हिरणो का वध करता है। सच है-ससार को समझाना बडी टढी खीर है।

एक विद्वान् इस हिंसा पर विचार करते-करते विस्मित हो जाते हैं। उनकी कल्पना मे ही नही आता कि समझदार मानव प्राणी किस प्रकार इतना क्रूर हो सकता हैं कि वह निरपराध जीवो की हत्या करे ? वह कहते हैं--

कण्टकैरपि ये विद्धा, दुःखं जानन्ति चात्मनः।
ते दुष्टा भल्लकैः कृत्वा, हिंसां च कुरुते कथम् ॥

पाव मे काटा लग जाने पर भी जिन्हें वेदना होती है--जो दु ख से कराहने लगते हैं, वही दुष्ट भाले मार-मार कर पशुओ की हिंसा कैसे करते होगे ? क्या उन्हे यह खयाल नही आता होगा कि मुझसे तो काटे की पीडा भी नही सही जाती तो इन पशुओ को भाले भोंकने पर कैसी वेदना होगी ? मगर हाय रे विवेकहीन मानव ! तू जरा भी विचार नही करता !

राजा भी ऐसा ही विवेकहीन था। उसके अन्त.करण की दैवी भावनाएँ सोई हुई थी। उसका भीतर का 'देवता' जागृत नही था। अतएव उसने तीर चलाया। तीर निशाने पर लगा। हिरण उस तीर से विध कर जमीन पर लोटने लगा और वेदना से विकल होकर तडफने लगा।

जहां हिरण मारा गया, वही एक महान मुनिराज ध्यानस्थ विराजमान थे। राजा अपने शिकार को लेने के लिए उसी जगह

पहुचा, जहा वह महात्मा समाधि मे मग्न थे। वह आत्माराम मे रमण कर रहे थे। संसार से ही नही, देह से भी पृथक अपनी चिदानन्द-चेतना मे तल्लीन थे। राजा वहा पहुंचा तो उसकी दृष्टि ध्यानमग्न मुनिराज के ऊपर पडी। मुनि को देखते ही राजा भयभीत हो उठा और व्याकुल होकर दीन शब्दों मे, हाथ जोड कर गिडगिडाने लगा— गुरुदेव! मैं आपका अपराधी हूँ। मुझे ज्ञात नही था कि यह हिरण आपका है। मैंने अज्ञान से आपके हिरण को तीर लगा दिया है। अनुग्रह करके मुझे क्षमा प्रदान कीजिये। महात्मन्! मेरी प्रार्थना को अगीकार कीजिये और मुझे अपराध से मुक्त कीजिये।

भाइयो! राजा का भयभीत हो जाना और गिडगिडाकर क्षमायाचना करना किसका प्रभाव था? यह मुनिराज के अतिशय, आत्मबल, तपस्तेज और समभाव का ही प्रताप था। मुनिराज का अन्तस्तल करुणा से ओतप्रोत था। उनके चित्त से अहिंसा, अनुकम्पा और दया की विमल धारा प्रवाहित हो रही थी। उसी के प्रभाव से राजा की हिंसकवृत्ति भाग गई और वह विनीत शब्दो मे क्षमा की भीख मागने लगा।

किन्तु मुनि ध्यान मे लीन थे। दुनिया से दूर थे। उन्हे क्या पता था कि बाह्य जगत् मे क्या घटनाएँ घट रही हैं? वे तो अपने ही अन्तर्जगत् मे मस्त थे। सच्चे साधु तो ऐसे आत्मनिष्ठ होते हैं। । है:—

ऐसे सन्त जगत् में कहना, मुख बोले अमृत बैना।
धन दौलत माया त्यागै, राव-रंक चरणां लागै जी।
नहीं रखे कुत्ता तोता मैना ॥१॥

मुनि अतिशय दयावान् होते हैं। राजा के दीनता और करुणा से भरे शब्द सुनकर उन्होने ध्यान खोल दिया और राजा से कहा-राजन् ! मैं तुझे अभय देता हू।

अभयो पत्थिवा ! तुब्भं, अभयदाया भवाहि य।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥

हे राजन् ! तुझे अभय है, मगर तू भी तो अभयदाता बन ! लेना ही लेना किसी भद्र पुरुष का काम नही है। न्यायपरायण पुरुष लेता भी हैं और देता भी हैं। तू मुझसे अभय ले रहा हैं तो तेरा कर्त्तव्य हैं कि तू दूसरो को अभय दे।

पार्थिक ! तुमने मुझसे अभय की याचना की। जब तय मैं बोला नही तब तक तुम दु.खी रहे और जब मैंने तुम्हे अभय-वचन कहा तो तुम्हे प्रसन्नता हुई। इसका अर्थ यह हैं कि अभय पाकर प्राणी के हृदय मे प्रमोदभाव उत्पन्न होता है। देखो, यह वन्य पशु तुम जैसे शिकारियो से बहुत दुःखी हैं। अगर तुम्हारी ओर से इन्हे अभय मिले तो इन्हे भी प्रमोद होगा। अतएव तुम भी इन वनचर प्राणियो को अभयदान दो। इससे तुम्हे भी बहुत शान्ति मिलेगी क्योकि—

सव्वेसु दाणेसु अभयप्पयाणं।

अर्थात्—सभी दानो मे अभयदान प्रधान है।

जीव को अपने प्राण सबसे अधिक प्रिय होते हैं। वह अपना सर्वस्व दे करके भी प्राणो की रक्षा करना चाहता हैं। इस सचाई को समझने के लिए कही दूर जाने की आवश्यकता नही हैं।

आप अपने संबध मे विचार कर देखिए। जो बात अपने विषय मे है वह दूसरो के लिए भी समझ लेना चाहिए। कहा भी है--

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।

जैसे तुझे अपने प्राण प्यारे लगते है, उसी प्रकार अन्य प्राणियो को भी अपने-अपने प्राण प्रिय हैं। अतएव अपने प्राणो की तरह दूसरे के प्राणो की रक्षा करना तेरा धर्म हैं। तू दूसरो को अभय देगा तो तुझे भी अभय मिलेगा। कहा भी है:-

आराम के बदले तुझे आराम मिलेगा।
नेकी का बदला नेक सुबह शाम मिलेगा।।
चमकोगे सूर्य की तरह तुम कैसे छिपोगे ?
ऐ सताने वालों ! कहो कैसे तिरोगे ?

भाइयो! जो जैसा करेगा, वैसा ही पाएगा। जैसे बीज बोएगा, वैसे फल चखने को मिलेंगे। दया किये बिना कुछ भी मिलने को नही है। अतएव प्राणियो पर दया करो। प्राणियो पर दया करना अपने आप पर दया करना हैं। अतएव अपनी भलाई के लिए, अपने कल्याण के लिए प्राणियो की दया पालो।

देखो, मुनिराज ने काम्पिल्यपुर के उस राजा सयती से कहा-हे राजन्! तू अपने मन, वचन और काया के द्वारा जैसे कर्म उपार्जन करेगा, वही तेरे साथ जाएँगे। कोई आदमी नाना ार के पापो का आचरण करके धनोपाजन करता हैं, किन्तु उसे अमर नही बना सकता। एक न एक दिन उसे मरना ही। और जब मरना पड़ेगा तब वह धन साथ मे नही जायेगा।

धन यहीं रह जायगा, मगर किये हुए पापकर्म अवश्य ही उसके उसके साथ जाएँगे।

एक चोर चोरी करके धन ले जाता है और स्टेशन पर पहुंचता है। पीछे से पुलिस तार और टेलीफोन करके उसे पकड लेती है। इसी प्रकार पाप कर्म करने वाले यमदूतो के द्वारा पकडे जाते हैं। उनके पापकर्म ही टेलीफोन का काम करते हैं। पुलिस चूक सकती है, परन्तु कर्म कदापि नही चूक सकते। उनके फल से बचना असभव है।

बडौदा के राजा, राजा बनने से पहले मामूली आदमी थे। वह दो भाई थे। एक बार राजगद्दी पर बिठलाने के लिए राजा की आवश्यकता हुई। तो बडे भाई को छोडकर छोटे भाई को राजगद्दी दी गई। यह छोटा भाई जंगल मे भेड चराने गया था। सुना जाता है कि यह लडका किसी पेड के नीचे सोया था। उसके मुख पर धूप आने लगी तो एक सर्प ने आकर अपना फन फैलाया और छाया कर दी। यह दृश्य देख कर समझा गया कि लडका भाग्यशाली है और इसे राजगद्दी पर बिठलाना चाहिए।

उदयपुर के महाराणा फतहसिहजी भी एक छोटे-से गाव के ठाकुर थे। मोई वाले राजा, राजा बनने से पहले दर्जी का काम करते थे। इन सब के पुण्य ने अपना प्रभाव दिखलाया और वे राजा बन गये। साराश यह है कि जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है।

पूर्व जन्म का किया मिला, अब करो वही फिर पाओगे।
जो गफलत में समय गया तो मित्रो! फिर पछता

जो किया है उसका फल भोग रहे हो और जो कर रहे हो उसका भविष्य मे फल पाओगे। इस अटल सिद्धान्त को समझ लो और प्रमाद का परित्याग कर दो। यदि प्रमाद मे पडे रहे और विषयवासना की ही लहरो मे बहते रहे तो मित्रो ! पछताना पड़ेगा।

भाइयो ! ज्ञानी जन करुणा करके ससार के प्राणियो को सावधान करते हैं और पाप का आचरण न करने की प्रेरणा करते हैं और कहते हैं- धर्म करो, धर्म करो, धर्म ही तुम्हारा कल्याण करेगा। देखो वह मुनि, जिसका नाम गर्दभाली था, राजा सयती से कह रहे हैं--नरपति ! तू अच्छा काम कर। बुरे काम छोड़ दे। बुरे का परिणाम बुरा होता है।

उज्जैन मे एक करोडपति सेठ के लड़के को उसकी माता कहा करती थी-बेटा, वासी टुकडा खाने मे क्या मजा हैं ? एक दिन उस लडके ने माता से पूछा--वासी टुकडे कैसे ?

माता ने कहा-इसका मतलब समझना है तो नगर के बाहर एक मुनिराज विराजमान हैं, उनके पास जाकर समझो।

लड़का मुनिराज के पास पहुचा। उसने मुनि को वन्दना करके कहा—गुरुदेव, मेरी माता कहती है--वासी टुकड़े खाने मे क्या मजा है ? कृपया करके मुझे समझाइए कि इसका अर्थ क्या हैं ?

मुनिराज ने कहा--चम्पा नगरी के पास चेटक नामक एक भागी रहता है। तू उसके पास जा। वह तुझे इसका मतलब [illegible]ाएगा।

लड़का घर आया और माता की अनुमति लेकर चम्पा के रवाना हुआ। चम्पा पहुँचा और किसी सेठ की दुकान पर कर पूछा--चेटक भागी कहा रहता है ?

वह सेठ बडा अजीब आदमी था। उसके वाल बढे हुए और अस्तव्यस्त थे। नाखून ऐसे मालूम होते जैसे जिदगी मे कभी कटे ही न हो! दाँत गदे, पीले और सडे हुए थे। शरीर काला-कलूटा था और कपडो से ऐसा जान पडता मानो दरिद्रता मनुष्य की आकृति धारण करके आ उपस्थित हुई है। फिर भी वह चार करोड का मालिक था। सेठ ने इस लडके से कहा– क्या लेना है?

लडका—लेना कुछ नही है। चेटक भगी का ठिकाना बतला दो।

सेठ—जा जा, इतनी देर मे तो दो ग्राहको से वात करता। खैर, सीधा चला जा। आगे एक दरवाजा मिलेगा। उसके बाहर एक मकान मिलेगा, जिसके बाहर घटी लगी है। वही चेटक का मकान है।

लडका सीधा सेठ के बतलाये मार्ग पर आगे बढ़ा। दरवाजा पार करके उसने देखा—यही घटीवाला मकान चेटक का होना चाहिए। मकान छोटा-सा था, मगर साफ सुथरा था। उसके सामने एक बूढा बैठा था। लडका उसके पास पहुचा। उससे पूछा चेटक कहा रहते हैं?

वही बूढा चेटक था। उसने कहा—चेटक मेरा ही नाम है। आप यहा किस प्रयोजन से आए?

लडके ने पिछली सारी कथा कह सुनाई। चेटक समझ गया कि यह मेरा साधर्मी भाई है। इसके गुरु वही हैं जो मेरे गुरु हैं। इसके बाद चेटक ने कहा—आप मेरे साधर्मी भाई हैं और गुरु भाई भी हैं। दूर से आए हैं। थोडा विश्राम कर लीजिए, भोजन कर लीजिए। फिर मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूगा।

लडका सोच-विचार मे पड गया ! साधर्मी भाई होने पर भी आखिर चेटक जाति का भगी है ! मैं महाजन हू—सेठ का लडका हू इसके घर का भोजन कैसे करू ?

मगर चेटक अनुभवी आदमी था। वह फौरन ही लडके की मनोभावना को समझ गया और बोला—सोच-विचार मत करो। मैं दुकान से सामान दिला दूगा। आप स्वय भोजन बना लेना।

चेटक लड़के के साथ उसी पहले वाले सेठ की दुकान पर आया। उसने सेठ से कहा—इन्हे जो सामान चाहिए, दे दीजिये। उसने सेठ को चार रुपये दे दिये।

चेटक इतना कह कर और दाम देकर चला गया। सेठ ने पूछा— कहो भाई क्या सामान दे दू ?

लड़का—ऐसा सामान दो कि जल्दी से जल्दी भोजन बन जाए।

सेठ ने अपनी औरत के पास जाकर पूछा—जल्दी से जल्दी क्या भोजन बनता है।

सेठानी ने कहा—कढी और रोटी !

सेठ- तो बना दो और बाहर खड़े आदमी को जिमा दो।

भाइयो ! आप सोचते होगे—यह करोडपति का लडका था ! क्या अपने पैसे से भोजन खरीद कर नही खा सकता था ? उसने ... के दामो से भोजन करना क्यो स्वीकार किया ? इसका उत्तर ... जा सकता है कि अपने दामो का भोजन करना उसके ...ई बात नहीं थी। फिर भी वह चेटक का अतिथि था और ... कोई साधारण व्यक्ति नही था। उसे अपने प्रश्न का

उत्तर पाने के लिए मुनिराज ने चेटक के पास भेजा था। ऐसी स्थिति मे चेटक की ओर से भोजन करना वह अस्वीकार नहीं कर सकता था। ऐसा करने मे चेटक का अपमान था। कोई अतिथि दूर देश से आपके घर पर आवे और अपने पैसो से भोजन करे तो क्या आप अपना अपमान नही समझेंगे ? यही सोच कर सभवत: लडके ने कोई आनाकानी नही की और चेटक की ओर से भोजन करना स्वीकार कर लिया।

सेठानी ने लडके से पूछा— बोलो, क्या जीमना चाहते हो ?

लडका—जो भोजन जल्दी बन जाय वही जीम लू गा।

लडका बैठ गया और सेठानी भोजन बनाने लगी। भोजन बनाते-बनाते सेठानी ने सहज ही पूछ लिया—बच्चे तुम कहां के निवासी हो ?

लडके ने अपना परिचय दिया और पिछली सारी कथा कह सुनाई।

लडके का परिचय पाकर सेठानी ने कहा –अरे ! तू तो मेरा भाई है ! मैं ने विवाह के बाद कभी मायके का मु ह नही देखा आज तू मेरा भाई अचानक मेरे घर आ पहुचा ! धन्य भाग्य है मेरा ! थोडा ठहर जा भैया, ठीक तरह भोजन की तैयारी करूंगी ।

लडके ने कहा—आज तो मैं अपने साधर्मी भाई का ही भोजन करूंगा। कल तुम्हारे यहां जीमने मे कोई बाधा नही है।

आखिर यही हुआ। चेटक की ओर से भोजन करके वह लडका तत्काल चेटक के घर की ओर रवाना हुआ। वहां पहुचा तो उसने विचित्र दृश्य देखा। चेटक के घर के बाहर १०-१५

आदमी मातमी सूरत बनाये बैठे थे और कुछ लोग रो रहे थे। यह हाल देख लडके ने पूछा-- क्यो भाई, क्या बात हो गई? चेटक कहा है ?

बैठे लोगों मे से एक ने बतलाया-अभी-अभी उनकी मृत्यु हो गई है !

यह सुन कर लडका अत्यन्त गभीर विचार मे पड गया मगर किसी से कुछ भी कहे-सुने बिना, चुपचाप अपनी बहिन के घर लौट आया। उसने बहिन के पास बैठकर इधर-उधर की बात-चीत की और कहा —आज तुम्हारे यहा का भोजन करूँगा।

बहिन ने अपने भाई के लिए घेवर बनाने का विचार किया। उसने अपने पति से कहा —आज मेरा भाई आया है। मैं उसके लिए घेवर बनाऊँगी ! यह सुन कर वह मूजी सेठ बडा ही कुपित हुआ ! उसने अपनी पत्नी को आडे हाथो लिया और कहा- मेरा भाई आया था, उसे तो मैंने पानी भी नही पिलाया ! तू अपने भाई के लिए घेवर बनाएगी ! कभी नही बनाने दूगा !

सुना भाइयो ! आपने ? उस मूजी ने अपने भाई को पानी भी नही पिलाया ! करोडपति की यह हालत है ! जहाँ ऐसे मूंजी इकट्ठे हो जाएँ वहा कल्याण ही समझो !

आखिर सेठानी पडौसी के घर से सामान लेकर भाई के .ए घेवर बनाने का उपक्रम किया। सेठ ने घर मे आकर पूछा-- ा कर रही है ? भोजन बन गया कि नही ?

सेठानी - और सब चीजे बन गई हैं, सिर्फ घेवर बाकी हैं। ह भी जल्दी बनाए डालती हूँ।

सेठ यह सुन कर ऊपर से नीचे तक जल-भुन गया। क्रोध से कांपते हुए बोला– अरी चाण्डालिन! तू बड़ी खराब औरत है। पति की आज्ञा तो मानती ही नहीं! मैं ने घेवर बनाने को मना कर दिया था, फिर भी तू ने मनमानी की?

इस प्रकार कह कर सेठ अपने ही हाथो अपनी छाती पीटने लगा। छाती पीटता-पीटता वह वहा से चला गया और एक कोठरी मे जाकर बेहोश होकर गिर पडा। वह उसी समय नीलाम बोल गया।

भाइयो! कृपण जनो की ऐसी ही दुर्दशा होती है। वे हाय-हाय करते करते ही जीते हैं और हाय हाय करते ही मरते हैं। वे अपने धन का न स्वयं उपभोग कर सकते हैं, न दूसरो को करने देते है। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है--

कृपणेन समो दाता, न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि, यः परेभ्यः प्रयच्छति॥

अर्थात्—कजूस के समान दाता इस भूतल पर न जन्मा है और न कभी जन्मेगा। बडे से बडे दाता भी अपने लिए कुछ कुछ शेष रख लेते है, परन्तु बेचारा कजूस तो अपने सर्वस्व को हाथ भी नही लगाता और सब का सब दूसरे को देकर चला जाता है।

इसी सेठ को देख लीजिए। करोडो की सम्पत्ति उसके पास थी। मगर उसने न कभी कौडी दान की, न अच्छा खाया-पिया और न किसी को अपने जीते जी खाने दिया! सब का सब संभाल कर रखे रहा और आखिर सब ज्यों का त्यो छोड़कर चला गया।

ऐसा महान् दानी ससार मे कृपण के समान और कौन मिलेगा ? हिन्दी मे कहा है--

दातारों का मजा यही, धन खाने और खिलाने में ।
है कंजूसों को मजा यही, धन जोड़ जोड़ मर जाने में ॥

हा, तो सेठ महायात्रा के लिए प्रस्थान कर गया और सेठानी को पता ही नही चला । वह रसोई घर मे भोजन बनाती रही । जब घेबर बन कर तैयार हो गए तो उसने अपने भाई से कहा--जाओ भैया, अपने बहनोईजी को बुला लाओ । वह गया और बोला--बहिनोईजी ! चलिए, भोजन तयार है । भोजन कर लीजिए !

मगर बहिनोईजी तो नीलाम बोल गए थे ! उत्तर देता तो कौन देता ? आखिर वह लौट गया और अपनी बहिन से बोला--वह बोलते ही नही है !

बहिन--अच्छा, तुम जीमो मैं जाकर मना लाऊँगी । सेठानी फिर कहने लगी--देख भैया, मेरे घर मे चार करोड नकद पडे है और लाखो का व्यापार चल रहा है । फिर भी इन्हे सन्तोष नही है । आज घेवर वनाने के कारण इतना क्रोध किया कि न पूछो वात ! अपनी छाती पीटने लगे ! ऐसी मुसीबत मे पडी हुँ कि कहते नही वनता ! तू ही कह, क्या करू, क्या न करू !

भाइयो ! कोई भी व्यक्ति लाखो और करोडो की सम्पत्ति ट्ठी कर सकता है, किन्तु पुण्य के विना वह भोग नही सकता । त मे किसान अडवा (बिजूका) खडा कर देते है । वह न स्वय ाता है और न पक्षी आदि को खाने देता है । इसी प्रकार कृपण

जन न खुद खा सकता है और न दूसरे को खाने देता है। वह धन का पहरेदार मात्र है। उसकी रखवाली करना ही उसका काम है।

हां, तो सेठानी उस कजूस सेठ को बुलाने गई। सेठ जब न उठा तो उसने हाथ पकड कर उठाने का प्रयत्न किया। तब उसे पता चला कि वह तो चल बसे है !

आखिर पति के मृत कलेवर को वही छोड कर वह रोती-रोती अपने भाई के पास पहुची। बोली-भाई, तुम्हारे वहिनोईजी तो हमे छोड कर चले गये ! अब मेरा क्या होगा ? हाय, इतनी वडी गृहस्थी को कौन सभालेगा ? लाखो का कारबार यो ही डूब जायगा। आगे पीछे कोई भी तो नही है !

भाई ने वहिन को खूब आश्वासन दिया। उसने कहा—वहिन, चिन्ता करने से कुछ होने वाला नही है। जो होनहार होगा सो होगा। तुम्हारे पास हू। जैसा कहोगी वैसा करूगा। तसल्ली रखो। धैर्य के साथ परिस्थिति का मुकाबिला करो। धैर्य छोड देने से कठिनाईया वेहद बढ जाती हैं। अतएव वहिन, हिम्मत न हारो। जो हो चुका है, वह मिटने वाला नही है।

सेठानी बोली—भैया, मेरी जन्मपत्री मे लिखा है कि मेरे एक पुत्र अवश्य होगा। मुझे भी यही जान पड़ता है। जन्मपत्री सभवत झूठी नही होगी। अतएव तुम कुछ दिनो तक यहीं ठहरो। वहनोईजी को जलाना ठीक नहीं है। राजा को पता चल जायगा तो वह सारा धन अपने अधिकार मे कर लेगा। मकान के पीछे जो बाडा है उसमे गड्हा खोदकर इन्हे गाड देना चाहिए।

सेठानी फिर बोली—तू कम से कम तीन महीने तक यहीं

रहना। अगर मालूम हो जाय कि पुत्र होगा तो अधिक दिन ठहर जाना, नही तो जैसी इच्छा हो सो करना।

भाई ने बहिन की बात मान ली। जब उसे मालूम हुआ कि बहिन गर्भवती है तो वह और अधिक समय तक ठहरा रहा और उसका व्यापार- धन्धा सभालता रहा।

आखिर प्रसव का समय सन्निकट आ गया। तब बहिन ने भाई से कहा—भैया, नाइन को बुला लो।

नाइन बुलाई गई। उसने आकर घर में प्रवेश किया ही था कि बच्चा जन्म लेकर बोल उठा-मामा! मामा! मामा!

यह शब्द सुनते ही सेठानी ने अपने भाई को पास बुलाया। उसके आते ही लडके ने कहा--मामा, जिस चेटक भगी के पास तुम आये थे, उसकी औरत ने अभी—अभी बच्चे को जन्म दिया है। तुम २०–२५ रुपये और जापे का सामान लेकर जल्दी उसके घर जाओ और उस बालक को बचाओ। नही तो वह उसे मार डालेगी।

नवजात शिशु के मुख से ऐसी स्पष्ट और गुह्य बात सुनकर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। परन्तु वह चुपचाप बालक की रक्षा के निमित्त उसी समय चल पड़ा। उसने जापे की सामग्री के साथ रुपये ले जाकर दिये और कहा—बच्चे की हिफाजत रखना। आवश्यकता होने पर और भी सहायता मिल जाएगी।

भगिन ने कहा-सेठजी, तुम न आते तो मैं अभी इसका काम तमाम कर देती। अब व्यवस्था हो गई है तो काहे को मारूंगी!

भगिन के घर से वह जल्दी ही वापिस लौट आया । उसके आश्चर्य का पार नही था । बहुत-बहुत विचार करने पर भी उसकी समझ मे कुछ नही आ रहा था । पहले वह चेटक के पास गया तो चेटक मर गया । बहिनोई के घर आया तो बहिनोई भी मर गया। आज बहिनोई के घर पुत्र का जन्म हुआ तो चेटक के घर भी पुत्र का जन्म हुआ। भाणेज को जन्म लेते देर नही हुई कि उसने ऐसी बात कही, मानो कोई सिद्ध पुरुष अपने दिव्य ज्ञान मे देखकर भविष्य कह रहा हो।

यह सब सोचकर वह चकित और विस्मित हो रहा था । वह घर पर आया बडी उत्कंठा लेकर। इस गुह्य रहस्य को वह जानना चाहता था । उलझी पहेली को सुलझाना चाहता था । मगर उसके सुलझने मे देरी नही लगी ।

ज्यो ही उसने घर मे प्रवेश किया और नवजात बालक की दृष्टि उस पर पडी त्यो ही बालक ने पूछा—मामा, लौट आये ?

मामा—हा, आ गया हूं । पर यह तो बता कि तुझे इन सब बातो का पता कैसे चला ?

बालक—मामा, सुनो । जिस चेटक से प्रश्न पूछने के लिए तुम आए हो, वही चेटक मैं हूं । मर कर तुम्हारे भानेज के रूप मे जन्मा हूं और तुम्हारा बहिनोई चेटक की पत्नी के उदर से उत्पन्न हुआ है । मामा, चेटक के वशीभूत एक देव था । वही तुमसे यह वार्तालाप कर रहा है । मैं इस सद्य प्रसूत शिशु के गले पर बैठ कर उत्तर दे रहा हूं । चेटक जब मरने लगा तो उसने कहा—आगत व्यक्ति के प्रश्न का उत्तर कौन देगा ? तब मैं ने उसके सामने प्रतिज्ञा की थी कि मैं उत्तर दूंगा । तुम्हारे प्रश्न का उत्तर यही है कि चेटक

ने चार रुपया साधर्मी भाई के लिए खर्च किये तो चार करोड का धन पाया। इससे विपरीत सेठ ने कुछ भी दान नही किया तो मेहतर के घर जन्म लिया और दरिद्र अवस्था का सामना करना पडा।

उजैन से आने वाला सोचता है मेरी माता ने जो कुछ भी कहा था, सत्य ही कहा था उनका कथन बहुत मर्म भरा है। जीवन के लिए वह महत्त्वपूर्ण सत्य है। मैं करोडपति होकर कुछ नही करूंगा तो मेरी भी ऐसी ही दशा होगी, जैसी मेरे बहिनोई की हुई।

आखिर अपनी बहिन से विदाई लेकर वह वापिस उजैन आ गया। कुछ समय के पश्चात् उजैन मे वही मुनिराज फिर पधारे जिन्होने उसे चेटक के पास जाने और उससे उतर पाने का सुझाव दिया था। वह लडका, जो अब सेठ बन चुका था, पुनः मुनिराज की सेवा में उपस्थित हुआ और कल्याणकारी बोध देने के लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने लगा। उसने कहा—महामुनीन्द्र! आपने अपरिमित अनुग्रह करके इस दास की दृष्टि खोल दी। मुझे तो प्रत्यक्ष बोध प्राप्त हुआ है, उसने मेरे जीवन की दिशा परिवर्त्तित कर दी है। गुरुदेव! आपने मेरे अज्ञान-अन्धकार का निवारण कर दिया है।

मुनिराज तो 'समो निंदापससासु' के प्रत्यक्ष उदाहरण थे अपनी प्रशसा से उन्हे किंचित भी प्रसन्नता न हुई। वह ज्यो के त्यो गभीर भाव मे स्थित रहे और बोले—सेठ, यो सुनो—

जीवन सफल बनाना हो तो धर्म करो। टेर॥
सब तन में है नर-तन ताजा, स्वर्ग मोक्ष का यह दरवाजा।
सुर नर मुनि बखाना, प्यारे धर्म करो॥१॥

भाइयो, सुना आपने कि उन मुनिराज ने क्या कहा ? वह कहते है—हे मनुष्यो ! यदि इस जीवन को सार्थक करना चाहते हो तो धर्म का आचरण करो। संसार मे अगणित प्रकार के शरीर हैं, किन्तु उन सब शरीरो मे मनुष्य का शरीर ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है। इसकी उत्कृष्टता का कारण यही है कि यह शरीर स्वर्ग और मोक्ष का द्वार है—साधन है। आज तक जितने जीवो ने मोक्ष प्राप्त किया है, सबने मनुष्य शरीर से ही किया है। भविष्य मे जिन्हे मोक्ष की प्राप्ति होगी, इसी शरीर से होगी। मनुष्य शरीर की प्राप्ति के बिना आत्मा का परम और चरम कल्याण कदापि नही हो सकता।

तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, बलदेव और वासुदेव वगैरह ससार मे उत्तम समझे जाने वाले महापुरुष भी मानवदेह मे ही प्रकट होते है। कभी सुना है आपने कि कोई पशु-पक्षी इन महान् पदवियो का धारक हुआ ? नही। ऐसा नही होता है।

मनुष्य-शरीर मे बुद्धि का जो विशिष्ट विकास हो सकता है, वह किसी भी अन्य शरीर मे नही हो सकता। मनुष्य मननशील प्राणी है। वह अपने हित-अहित का, अपने भविष्य के मगल-अमगल का जितना गम्भीर विचार कर सकता है, अन्य प्राणी नही कर सकते।

मनुष्यो को ही सुस्पष्ट वाचा-शक्ति प्राप्त होती है। वह अपनी मनोभावनाओ को दूसरे के समक्ष प्रकट कर सकता है। दूसरे की वाणी से लाभ उठा सकता है। वास्तव मे मनुष्य को जो सुविधाएँ प्राप्त है, किसी भी धरातल के दूसरे प्राणी को प्राप्त नही है।

यह तो चित्र का एक बाजू है। मनुष्य शरीर की योग्यता का दिग्दर्शन है। अगर मनुष्य शरीर पाकर किसी ने अपनी योग्यता से लाभ न उठाया, बल्कि आत्मा के अमगल मे ही अपनी शक्तियो का व्यय किया तो यही वरदान अभिशाप के रूप मे भी परिणत हो सकता है। अतएव यह शरीर श्रेष्ठ तभी माना जायगा जब वह धर्म का आचरण करे। धर्म का आचरण न किया तो नर शरीर पाना बेकार हो गया। कहा है—

मानव श्रेष्ठ धर्म से माना, धर्महीन नर पशु समाना।
अपना फर्ज बजाना हो तो धर्म करो॥ प्यारे०॥

भाइयो! धर्म के आचरण की दृष्टि से ही यह शरीर श्रेष्ठ माना गया है। इस शरीर से धर्म न किया गया तो यह बेकार है। इसकी कुछ भी उपयोगिता नहीं है।

हस्ती दंत के खिलौने जगत के आवे काम,
बाघों का बाघंबर शिवशंकर चित्त लाएगो।
मृगन की खाल को बिछावत हैं जोगीराज,
वृषभ के चर्म कछु अन्न को निपजाएगो।
करैले की खाल में होत है सुगन्ध त्यार,
बकरे की खाल कछु पानी भर मिलाएगो।
सांभर के सटके तो बांधत हैं सिपाही लोग,
गेंडे की ढाल राजा राणा मन लाएगो।
नेकी और बदी दो ही संग चले मयाराम,
पर मनुष्य की खाल कछु काम नहीं आएगो॥

बोलो, मनुष्य के शरीर की कौन-सी वस्तु काम आती है ? पशुओं के शरीर की तो प्रत्येक वस्तु काम आ जाती है। बेचारा पशु खाता क्या है ? घास-पात। और मनुष्य के खाद्य पदार्थों की तो गणना भी नहीं की जा सकती। तरह-तरह की मिठाइयां, खटाइयां, नमकीन और न जाने क्या-क्या खा जाता है ! फिर भी पशु का गोबर काम आता है। गोबर के लिए औरतें लड़ती और झगड़ती हैं। मगर मनुष्य का मल कितना अशुचि है ? मनुष्य किसी के द्वार पर मलोत्सर्ग करना चाहे तो कोई करने देगा ? अजी, डंडा तान कर कपाल क्रिया करने को तैयार हो जाएगा। पशुओं के केश भी काम में आते हैं। मगर महिलाओं के लम्बे-लम्बे पशुओं की पूंछ से भी लम्बे केश किस दिन क्या काम आए हैं ? तात्पर्य यह है कि पशुओं के शरीर के अवयव तो फिर भी काम आ जाते हैं, किन्तु धर्म का आचरण न किया तो मनुष्य का शरीर एकदम ही निरर्थक है। कहा है —

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः,
धर्मेण हीनः पशुभिः समानः ॥

अर्थात्—आहार, निद्रा भय और कामभोग का सेवन, यह चार बातें पशुओं और मनुष्यों में समान रूप से पाई जाती हैं। परन्तु धर्म ही मनुष्य में अधिक है। अतएव जिस मनुष्य में धर्म हो, वह पशु समान ही है, क्योंकि उसमें मनुष्य की विशेषता धर्म—नहीं है।

भाइयो ! मनुष्य जीवन की कृतार्थता तो प्रभु का भजन करने मे आत्मा-परमात्मा का स्वरूप समझकर परमात्मा-पद की प्राप्ति करने मे तथा जगत् को सन्मार्ग दिखाकर उसका वास्तविक कल्याण करने मे ही है। जो लोग भगवद्भजन के अमृत का परित्याग करके विषय रूपी विष का सेवन कर रहे है वे अपने जीवन को निरर्थक ही नही, दुरर्थक बना रहे हैं। वे इस अनमोल अवसर को पाकर के अपने पतन के लिए गडहा खोद रहे है।

विषय-कषाय बीच भटकाना, अमृत छोड़ जहर को खाना।
जन्म फेर नहीं पाना हो तो धर्म करो ॥ प्यारे० ॥
मात पिता कुटुम्ब सुत दारा, करे प्रीति स्वार्थवश सारा।
इनमें क्यों ललचाना, प्यारे धर्म करो ॥ प्यारे० ॥

माता, पिता, पुत्र आदि सभी स्वार्थ के सगे हैं। अगर इनका स्वार्थ सिद्ध न हुआ, उन्हे सन्तोष न हुआ तो बहिन भाई को, भाई भाई को पिता पुत्र को पुत्र पिता को, पति पत्नी को और पत्नी पति को गालियाँ देने से नही चूकती। 'इसलिए हे भोले जीव ! तू इन्हे छोड और सारे विश्व के प्राणियों को समान समझ कर अपने जीवन की सफलता की ओर कदम रख।

चौथमल रहा साफ सुनाई, सुरदुर्लभ नरतन को पाई।
स्वर्ग मोक्ष में जाना हो तो धर्म करो ॥ प्यारे० ॥

भाइयो ! हमारे पीछे कोई बेटा-बेटी नही है। घर-द्वार का ग करके हमने अकिंचनता का व्रत अगीकार किया है। अत- . तुमसे कोई स्वार्थ सिद्ध नही करना हम लाग-लपेट की ही कहेगे। ठकुरसुहाती कहने का हमारा ध्येय नही है। अल-

वत्ता, तुम्हारे कल्याण की वात कहेंगे। सौ बात की एक बात यह है कि अगर तुम सुख चाहते हो, स्वर्ग के उत्कृष्ट सुख भोगना चाहते हो तो पुण्य करो, अगर मोक्ष चाहते हो तो धर्म करो ।

भाइयो ! इस शरीर से कुछ न कुछ करना चाहिए। देखो, राजा सयती ने मुनि महाराज का उपदेश सुना तो उसे ज्ञान की उपलब्धि हो गई। वह बोला—गुरुदेव ! मेरे अन्त.करण मे एक विचार पुन पुनः उत्पन्न होकर चिन्ता उत्पन्न कर रहा है । उस विचार के कारण मेरी आत्मा काँप रहा है। मैं सोचता हूँ—मेरा जीवन पार हो पाप मे व्यतीत हुआ है मेरे हाथ खून से लथपत है, मैंने करुणाहीन होकर न जाने कितने निरपराध जीवो के प्राणो को लूटा है ! अनेक दौडते-भागते और किलोल करते हुए पशुओ को मजा के लिए स्पन्दनहीन बना दिया है। मेरे पापो की कोई सीमा नही दिखाई देती। इन पापो का प्रतिकार किस प्रकार होगा? मेरी जिन्दगी अल्प ही अवशेष रही है। मैं जो थोडा सा धर्म का आचरण करूँगा उससे मेरे महान् पातको का विनाश कैसे होगा ? गुरुदेव, मेरे इन पाप के प्रतीकार का कोई मार्ग है ?

हो चलने की प्रतिज्ञा करली है तो भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। जानते हो घास की गंजी कितनी ऊंची और कितनी विशाल दिखाई देती है ? परन्तु उसे भस्म करने के लिए पहाड़ के बराबर आग की आवश्यकता नहीं होती। दियासलाई की एक ही सींक सारी ढेरी को क्षण भर में राख बना देती है। एक ही सुलगती चिनगारी क्षण भर में घास के पहाड़ को अस्तित्वहीन बना देती है।

इसी प्रकार हे राजन्! सम्यग्ज्ञानपूर्वक की हुई थोड़ी तपश्चर्या भी समस्त पापों का प्रणाश करने में समर्थ होती है।

गुरुदेव के यह आश्वासन वचन सुनकर सयती राजा का भय भगा और उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ तपश्चरण करने का संकल्प कर लिया। राजपाट का परित्याग करके उसने मुनिवृत्ति अंगीकार की और आत्मा का कल्याण किया।
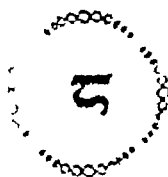
अनित्यता

卐

स्तुतिः—

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्॥

चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देखकर उसे पकड़ने की चेष्टा करता है, इसी प्रकार मैं भी बालचेष्टा कर रहा हू । बालक चन्द्रमा को पकड नही सकता, फिर भी पकडने की चेष्टा करता ही है, वह ऐसा किये बिना रह नही सकता, इसी तरह आपके गुणो की स्तुति मुझ से हो नही सकता, फिर भी आपके गुणो मे मेरा जो अनुराग है, वह अनुराग मुझे स्तुति करने की प्रेरणा करता है । उस प्रेरणा को मैं दबा नही सकता ।

प्रभो ? आपके गुण सागर के जल के समान अपरिमित है और मेरी बुद्धि गागर के समान परिमित है। मै सागर को गागर मे भरना चाहता हूँ। किन्तु सागर गागर मे समा नही सकता, इसी प्रकार आपके अनन्त गुण मेरी बुद्धि मे नही समा सकते । फिर भी मैं आपके गुणो को स्तुति करने की धृष्टता कर रहा हूँ । यह मेरी बालचेष्टा है । तथापि आपकी स्तुति किये बिना रहा नही जाता !

ऐसे अनन्त गुणधारी भगवान् ऋषभदेव है। उनको ही मेरा बारबार नमस्कार है !

भाइयो ! भगवान की स्तुति कौन कर सकता है ? वही मनुष्य भगवान की स्तुति या महिमा करेगा जो अपनी आत्मा का कल्याण चाहता होगा और अपनी आत्मा को निष्कलक, निर्विकार ..., निरजन और निष्पाप बना कर ऊँचे स्थान पर ले जाना ...ेगा । जो ऐसा न चाहेगा, उसके मुँह से भगवान का क...न ही सभव नही ! उसके हृदय मे ऐसी पावन प्रेरणा . न होगी ।

अनादिकाल से भव-भ्रमण करता हुआ संसारी जीव प्रति-क्षण नवीन-नवीन कर्मों का बन्धन कर रहा है। इन कर्मों के प्रभाव से वह अपने वास्तविक स्वरूप से वंचित हो रहा है। उसकी चेतना मलीन हो रही है। चेतना की मलीनता के कारण उसकी रुचि भी विकृत हो गई है। अतएव वह इन्द्रिय-सुख की ओर आकर्षित होता है। इन्द्रियों के विषयों की प्राप्ति के लिए ही उद्यत रहता है। अज्ञानी जीव को असली सुख [illegible] का पता नहीं है। उसे ज्ञात नहीं है कि सुख आत्मा का स्वभाव [illegible]। इस आत्मा में अनन्त, असीम और अव्याबाध सुख का [illegible] सागर लहरा रहा है। फिर भी जीव उसे पहचान नहीं पाता। अतएव वह तुच्छ इन्द्रिय सुख को ही सार समझता है। असली सुख उसकी कल्पना से बाहर है। वह नकली, क्षणस्थायी और परिणाम में दुःख देने वाले विषयसुख की प्राप्ति के लिए ही रात-दिन उद्योगशील रहता है।

लिए तडफता रहता है। संसारी जीव की यह दशा देख देख कर ज्ञानीजनों के अन्तःकरण में अनन्त अनुकम्पा का भाव जागृत होता है। वे ऐसे बाल जीवों पर तरस खाकर उन्हें सन्मार्ग पर आरूढ होने की प्रेरणा करते हैं। कहते हैं—

विसृज विसृज मोहं, विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ।

अरे जीव! मोह मूढता को छोड छोड! आत्मतत्त्व को पहचान, पहचान! मगर अज्ञान के प्रभाव से प्रभावित जीव इस कल्याणमयी वाणी को श्रवण नहीं करता! सुनकर भी अनसुनी कर देता है।

भाइयो! ऊपर चढने के लिए प्रयत्न करना पडता है। नीचे गिरना तो आसान ही है। अच्छाई सीखना कठिन है, बुराई अपने आप ही आ जाती है। इन बहिनों से कहा जाय कि सामायिक प्रतिक्रमण करना सीखो, तब यह कहती है—महाराज क्या करें? हमें याद ही नहीं होता। मगर तरह-तरह के गीत कैसे याद हो जाते हैं? उन्हें सीखने के लिए कौन-से स्कूल में तालीम लेने को जाती है? उन गीतों को न कोई याद कराने बैठता है, न उसकी पुस्तक छपी हुई है! फिर भी कैसे वह याद हो जाते हैं?

सच बात तो यह है कि जिसका अच्छा होने वाला होता है, उसी के मुँह से परमात्मा का नाम निकलता है। पुण्यशाली ही प्रभु का स्तवन, गुणगान और ध्यान करते हैं।

देश के विभिन्न भागों में और खास तौर से इस प्रान्त में बडी बुरी बात देखी जाती है। कई लोग ऐसे होते हैं कि बात-बात के पीछे गाली बोलते हैं, जैसे एक-एक कौर के पीछे चटनी

नाथ बनने मे सहायक हो सकता है, जिस जीवन को पाकर आत्मा परमात्मा के परमोच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है, जिस पर्याय को पाकर प्राणी अपने अनन्त ऐश्वर्य की दिव्य ज्योति का परिपूर्ण प्रसार कर अजर-अमर ज्योति स्वरूप बन सकता है और अनन्त अव्याबाध आनन्द मे सदा काल निमग्न रहने की योग्यता प्राप्त कर सकता है, उसी अपरिमित महिमा वाले मानव-जीवन को पाकर यह जीव वृथा नष्ट कर देता है।

मनुष्य मूल्यवान जीवन को प्राप्त करके उसके महत्त्व को भूल जाता है यह बडे ही खेद और आश्चर्य की बात ह ? और-और बातो मे तो वह बडी लम्बी लम्बी बातें सोचता है, आगे की विचारता है, किन्तु अपने जीवन के सम्बन्ध मे कुछ भी विचार नही करता। उसे खयाल नही आता कि मकान तो सौ दो सौ पॉच सौ वर्ष तक भी टिक सकता है, किन्तु यह शरीर कब तक टिक सकेगा ? यह शरीर अल्पकालीन है, क्षणभगुर है किसी भी समय स्वल्प-सा आघात लगने ही समाप्त हो सकता है। इसे रोज-रोज बादामो का हलुवा खिलाओ भस्मे खिलाओ औषधियाँ खिलाओ सब प्रकार का आराम पहुचाओ, लाख यत्न करो कि यह सदा बना रहे मगर एक समय आएगा कि यह नही रहेगा। जाएगा, अवश्य जाएगा। आज तक इस पृथ्वी पर अगणित ऐश्वर्यशाली सम्राट् आए, बडे २ धनकुबेर सेठ साहूकार आए, उन्होने ससार का उत्तम से उत्तम सुख भोगा शरीर को खूब आराम दिया, विश्राम दिया, मगर आज देखते हैं तो उनमे से एक भी नही बचा ? सब यथासमय चल दिये। एक दिन सब के शरीर ने जवाब दे दिया। वह लाचार हो गए, विवश हो गए, दीन-मलीन हो गए। शरीर के वियोग की व्यथा से व्यथित हो गए, परन्तु शरीर नहीं टिका नही टिका।

शरीर क्षणभंगुर तो है ही, साथ ही इसका स्वरूप भी बडा विचित्र है। संसार मे जो वस्तुएँ अपावन से अपावन समझी जाती हैं, उन्ही का यह पिण्ड है और उन्ही से इसकी उत्पत्ति होती है। यह मनुष्य देह पशुओ के देह से भी गई गुजरी और घृणास्पद है। जानवर कभी एण को फाको नही लेते और न बुखार की दवा ही लेते है। किन्तु फिर भी तन्दुरूस्त रहते हैं और मनुष्य माल खाते खाते भी बीमार हो जाता है। जरा शरीर की अनित्यता असारता और अशुचिता का विचार तो करो।

इस तन का क्या विश्वासा,
जैसे पाणी बीच बतासाजी ॥ टेर ॥

चाम नसां हाड़ मांस जानो, शुक्र रुद्र से पिड रचायोजी।
मल मूत्र कफ पित्त का वासा ॥ १ ॥
चर्म-थैली रोग को घर है,फिर मृत्यु जरा को डर है जो।
नहि शुचि को अंश है मासा ॥ २ ॥
कंकू चन्दन की खोर कढावे, नोलम के क़ठे झुकावेजी।
है वहाँ, तक जहाँ तक आसा ॥ ३ ॥
जैसा आक ईश का माचा,कांच की शीशी कुँभ काचाजी।
ऐसा समझ तन तमाशा ॥ ४ ॥
ऐसे अशुचि भावना भाई, सनत्कुमार चक्रवर्त्ती राईजी।
कहे चौथमल सुलासा ॥ ५ ॥

भाइयो! इस शरीर का भरोसा मत करो। जैसे पानी मे शक्कर का बना बतासा डाला जाय तो वह अधिक समय तक नही

अशुचि का यह पिण्ड शुचि स शुचि वस्तुओ को भी पल भर मे अशुचि बना डालता है ।

इतने पर भी यह शरीर रोगो का घर है। कहा भी है—

शरीर व्याधिमन्दिरम् ।

अर्थात्—यह शरीर नाना प्रकार की बीमारियो क घर है ।

कदाचित् किसी मनुष्य के प्रबल सातावेदनीय कर्म का उदय हुआ और बीमारी न हुई तो भी शरीर सदा टिक नही सकता। वृद्धावस्था और मृत्यु अनिवार्य है। इन्हे रोकना किसी की सामर्थ्य मे नही है। मनुष्य क्या स्वर्गलोक का राजा और देवो का अधिपति इन्द्र भी मौत से न बच सकता है और न किसी का बचा सकता है। जो स्वय मौत के मुँह मे पडा है वह दूसरो को मौत से कैसे बचा सकता है ?

भाइयो ! तुम शरीर का शृंगार करते हो, सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करके फूले नही समाते हो, शरीर पर कुम्कुम लगाते हो, चदन लगाकर इसे सुगधित बनाने की कोशिश करते हो, और गोरी चमडी पाकर कितने प्रसन्न होते हो ! नीलम का कण्ठा गले मे पहन कर ठसक दिखलाते हो। समझते हो कि ससार मे जो हूँ सो मै ही हूँ ? मै श्रीमन्त हूँ, सुन्दर हू, सबल हूँ मगर ... यह अभिमान कितने दिनो का है ? जब तक श्वासोच्छ्वास ... है, तब तक ही यह ठस्सा भले चल जाय ! श्वास समाप्त होने ... तुम्हारे शरीर को आग की लपटो के सिपुर्द कर दिया जायगा ! यह राख बन कर उडता फिरेगा ! अरे ! यह शरीर तो एक तमाशा है। आक की लकडी का पलग कितनी देर तक ठहर

सकता है ? यह शरीर तो उससे भी अधिक अस्थायी है। कांच की शीशी हाथ से छूटी नही कि टुकड़े-टुकड़े हो जाती है ? कच्ची मिट्टी का घड़ा कितने दिनों तक चलता है ? बस, यही हालत आपके शरीर की है।

सनत्कुमार चक्रवर्ती के शरीर सौन्दर्य की तुलना मे तुम्हारा सौन्दर्य किस गिनती मे है ? मगर उन्होने इस शरीर की निस्सारता और अपवित्रता पर विचार किया। उन्होने अशुचि भावना भाई। तभी उनका कल्याण हुआ। उन्हे शरीर की वास्तविक स्थिति का पता चला ? इसी प्रकार तुम वास्तविकता का विचार करो।

मृगापुत्र सुग्रीव नगर के राजकुमार थे। एक बार वह अपने महल मे बैठे-बैठे नगरी की सुन्दरता का अवलोकन कर रहे थे कि अचानक ही उनकी दृष्टि एक मुनिराज पर पड़ गई। टकटकी लगाकर वह मुनिराज को देखने लगे और सोचने लगे कि—मैंने ऐसा रूप कभी पहले भी देखा है ? आखिर उन्हे जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया। चित्त मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह उसी समय संयम धारण करने का संकल्प करके अपने माता पिता के पास पहुंचे और बोले—मैं दीक्षा लेना चाहता हूं। यह संसार तो दुःख का घर है ? और यह शरीर—

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइ असुइसंभवं ।
असासयावासमिणं, दुक्खकेसाण भायणं ॥
असासए सरीरम्मि, रइ नोवलभामहं ।
पच्छापुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसन्निभे ॥

माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए ।
जरामरणघत्थम्मि, खणं पि न रमामहं ॥
—उत्तराध्ययन, अ० १६

मृगापुत्र राजकुमार कहते हैं—यह शरीर अनित्य है तथा स्वय अशुचि अर्थात् अपवित्र भी है। अपवित्र ही नही, अपवित्र वस्तुओ से उत्पन्न हुआ है और अपवित्र वस्तुओ को उत्पन्न भी करता है। यह शरीर ऐसी वस्तुओ से बना है कि उनके अगर दाग लग जाय तो हिन्दू राम का नाम और मुसलमान नमाज नही पढते। किसी की किसी से लडाई हो जाती है तो वह कहता है—किसके मूत्र से पैदा हुआ है ? ऐसा कोई नही कहता कि किसके कलाकन्द या किसकी रबडी से पैदा हुआ है। वास्तव मे इस शरीर की उत्पत्ति शुक्र और शोणित से हुई है। फिर यह शरीर अशाश्वत है और दुःखो तथा क्लेशो का भाजन है।

मृगापुत्र कहते है—इस अशाश्वत शरीर मे मुझे प्रीति नही रही है। जल के बुलबुले के समान पलप्रणाशी यह काया देर सबेर छोडनी तो पडेगी ही। इस कारण विविध व्याधियो और रोगो के घर, जरा और मरण से ग्रस्त तथा निस्सार मानवदेह मे क्षण भर के लिए भी मुझे रति नही होती।

भाइयो ! मृगापुत्र ने जो बात कही है, उसे आप सच मानते हैं अथवा नही ? और यदि सच मानते हैं तो सिर्फ मृगापुत्र के लिए ही यह सत्य है या आपके लिए भी ? मृगापुत्र का शरीर ही अशुचि अशुचिजनित, अशुचिजनक, अशाश्वत और असार था या आपका शरीर भी वैसा ही है ? क्या कहते हो ?

'सभी का शरीर ऐसा ही है।'

तो फिर क्यो शरीर के पीछे आत्मा के हित का नाश कर रहे हो ? क्यो शरीर को ही परमात्मा समझ कर इसी की अभ्यर्थना मे लगे रहते हो ? भाइयो ! जैनशास्त्रो मे जीव की उत्पत्ति का क्रम बहुत ही स्पष्ट, विस्तृत और विशद रूप से बतलाया गया है इस शरीर को त्याग कर आत्मा कहा जाता है ? जहा जाता है वही क्यो जाता है ? जाने के बाद नया शरीर कैसे बनता है । पूर्वभव और पुनर्भव के बीच मे कितना समय लगता है ? उत्पत्ति योग्य स्थान पर पहुचने पर किस प्रकार नवीन शरीर का निर्माण होता है ? आदि आदि सभी प्रश्नो का युक्तिसगत समाधान जैन साहित्य मे बडा ही सुन्दर किया गया है। उसका यहाँ विवेचन नही किया जा सकता । उस विवेचन के लिए तो कई महीनो तक व्याख्यान करने की आवश्यकता है । परन्तु यहाँ थोडी-सी बातें बतला देना आवश्यक हैं ।

इस जीव के साथ इस स्थूल शरीर के अतिरिक्त दो सूक्ष्म शरीर भी बने हुए हैं । उनके नाम हैं—तेजस और कार्मण । मृत्यु होने पर स्थूल शरीर यही छूट जाता है किन्तु तेजस और कार्मण शरीर आत्मा के साथ लगे रहते हैं । कार्मण शरीर कृत कर्मो का समूह रूप है। उसके प्रभाव से जीव अन्यत्र जन्म लेने के लिए जाता है और अपने लिए पहले से निर्माण की हुई योनि में पहुँचता है । उत्पत्ति स्थान तक जाने मे उसे लम्बा समय नही लगता । ज्यादा से ज्यादा ३-४ समय मे ही वह अपने गन्तव्य स्थान पर जा पहुँचता है । समय का अर्थ है—काल का सूक्ष्मतम अश, इतना सूक्ष्म कि आँख का पलक गिराने मे असख्य समय हो जाते हैं । इसका अभिप्राय यह हुआ कि जीव एक क्षण से भी पहले अपने उत्पत्ति स्थान तक पहुच जाता है ।

जोव जब गर्भ मे आता है, तब छह बाते होती है—(१) आहारपर्याप्ति(२)शरीरपर्याप्ति(३)इन्द्रियपर्याप्ति(४)श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति (५) भाषापर्याप्ति और (६) मन पर्याप्ति।

जीव गर्भ मे पहुचते ही पिता के वीर्य और माता के रज को ग्रहण करता है—दोनो के सम्मिश्रण का आहार करता है। उस समय उसके मुँह नही होता है। प्रश्न हो सकता है कि अगर मुँह नही होता तो जोव आहार कैसे करता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे तेल मे भुजिए डालो ता वह चारो ओर से तेल पोकर मोटा हो जाता है। उसके मुँह नही होता फिर भी वह तेल का आहार ग्रहण करता है इसी प्रकार जीव गर्भ मे आकर रज-वीर्य का आहार करके शरीर बनता है। आहार ग्रहण करने को इस परिपूर्ण योग्यता को ही आहार पर्याप्ति कहा गया है। इस आहार से शरीर बनता है। शरीर के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करना और उसे शरीर के रूप मे परिणत करने को पूरी योग्यता शरीरपर्याप्ति कहलाती है। साथ ही आँख, कान, नाक भी बनाने लगते है और श्वासोच्छ्वास भी बनता है। भाषावर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके, उन्हे भाषा के रूप मे परिणत करके ध्वनि रूप मे छोडने की शक्ति भी उस समय आ जाती है और मनोवर्गणा के पुद्गलो का अपना कर मन रूप मे पलट कर उनके सहारे सोच-विचार करने शक्ति भी आ जाती है, इन शक्तियो की पूर्णता यद्यपि क्रम से है, तथापि उसमे पौन घंटे से भी कम समय लगता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए की भाषा आदि की शक्ति ही समय उत्पन्न होती है। जीव उस समय बोलने नही लगता है। भाषा तो बाद मे, धीरे-धीरे होती है।

कई अनजान लोग समझते हैं कि गर्भ के बाद पाचवें महिने मे जीव आता है। उनके इस कथन का आधार यह है कि उस समय गर्भस्थ जीव की हलन-चलन क्रिया स्पष्ट मालूम होने लगती है। परन्तु वास्तविक बात तो यही है कि जीव गर्भ रहते ही उत्पन्न हो जाता है। पहले जीव आता है और फिर शरीर बनता है। जीव के अभाव मे शरीर का निर्माण हो ही नही सकता।

पहले कारीगर आता है, पीछे वह नींव लगाता है।

यह नही हो सकता कि पहले नीव लग जाय और फिर कारीगर आए। इसी प्रकार पहले जीव आता है फिर शरीर बनता है।

गर्भ मे नौ महिने तक जीव उलटा लटका रहता है और बहुत कष्ट पाता है। तब सोचता है—हे प्रभो! मैं बाहर निकल जाऊँ तो तुझे याद करूंगा। मगर बाहर निकल जाने के पश्चात् ईश्वर भजन तो भूल जाता है और शरीर को देख कर अभिमान करता है। मगर ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जिसे देख-देख कर तू अभिमान करता है, वह शरीर तो अशुचि से बना है! कहा भी है:—

अजिनपटलगूढं पञ्जरं कीकसानाम्,
कुथितकुणपगन्धैः पूरितं मूढ! गाढम्।
यमवदननिषण्णं रोगभोगीन्द्रगेहं,
कथमिह मनुजानां प्रीतये स्याच्छरीरम॥

यह शरीर चमडी से ढँका हुआ है, हाडो का ढाचा सडांदभरे मलमूत्र रक्त मास आदि से परिपूर्ण है, यमराज मे दबा हुआ है, रोग रूपी सांपो का घर है। हे मूढ

तुच्छ एव निस्सार शरीर पर तू कैसे प्रीति करता है ?

कई लोग शौच धर्म के हिमायती होते हैं। कहते हैं, शरीर को पानी से शुचि कर लेगे। परन्तु तत्त्वदर्शी कहते है :—

यदीदं शोध्यते दैवाच्छरीरं सागराम्बुभिः ।
दूषयत्यपि तान्येव, शोध्यमानमपि क्षणम् ॥

कदाचित् इस अशुचिमय शरीर को समुद्र से शुद्ध किया जाय तो शरीर तो शुद्ध होगा नही, समुद्र का जल ही क्षण भर मे अशुद्ध हो जाएगा ! ऐसी स्थिति है इस शरीर की !

कोई यह सोचे कि ससार मे कस्तूरी, केसर, चन्दन आदि बहुत से सुगन्धित पदार्थ है। उनसे शरीर को शुद्ध और सुगधित किया जा सकता है और उसकी दुर्गन्ध दूर की जा सकती है परन्तु:—

कर्पूरकुङ्कुमागुरुमृग मदहरिचन्दनादि वस्तूनि ।
भव्यान्यपि संसर्गान्मलिनयति कलेवरं नृणाम् ॥

कपूर कुंकुम, अगर, कस्तूरी, चन्दन आदि-आदि अच्छी वस्तुओ को भी मनुष्यो का यह शरीर मलीन बना देता है ! इन वस्तुओ के प्रयोग से शरीर निर्मल होने के बदले यही वस्तुएँ मलीन हो जाती हैं।

भाइयो ! इस शरीर को देखकर क्यो गर्व करते हो ? यह तो रुधिर, चर्म, मल-मूत्र आदि की थैली है और जानवरो के भी निकम्मा है ! हा, इस शरीर को पाकर अगर परमात्मा जन किया जाय, सयम की साधना की जाय और धर्म का रण किया जाय तब यह शरीर सबसे श्रेष्ठ है ! इसी औदारिक

शरीर से शाश्वत सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। अतएव इससे जितना आत्महित साधा जा सकता हो, उतना साध लेना चाहिए। यही ज्ञानियो का कथन और उपदेश है।

गेंद को ठोकर लगाई जाय तो कौन कह सकता है कि वह कहाँ जाएगी और कहा रुकेगी ? इसी प्रकार यदि धर्म का आचरण न किया तो क्या ठिकाना है कि आपकी आत्मा कहाँ किस योनि मे उत्पन्न होगी ? किस स्थिति मे रहेगी और कैसे-कैसे कष्ट भोगेगी ? अतएव विवेक के आन्तरिक नेत्र खोल कर देखो और परमात्मा का भजन कर लो। इस शरीर का कोई भरोसा नही है कि यह कब छूट जायगा ? यहाँ से बम्बई के लिए रवाना हुए और अहमदाबाद के स्टेशन पर ही नीलाम बोल गये, जहाँ लावारिश लाश समझकर भगियो ने उठाकर कही पटक दिया और कोई जलाने वाला भी नही मिला ! क्या ऐसी घटना हो जाना असंभव है ? प्राण निकलते क्या देरी लगती है ? कहा है :—

> क्षणभंगुर है तेरी काया, मूरख इसमें क्यों ललचाया।
> ढलती फिरती बादल छाया, वीर प्रभु का सुमिरण कर,
> यह चोला है अनमोल ॥ १ ॥

भाइयों ! इस क्षणविनश्वर शरीर का कोई भरोसा नही है। फिर भी जवानी के मद मे उन्मत्त हुए लोग इस तथ्य को, इस वज्र-सत्य को नही सोचते हैं। वे तो यही सोचते हैं कि मेरे मुकाबिले और कोई है ही नही, मरने के लिए दूसरे हैं, मैं तो अमर होकर आया हू ! किन्तु ज्ञानी कहते हैं— जीवो ! जरा सभलो, सोचो और विचार करो :—

जहेह सीहो व मियं गहाय,
मच्चू नरं नेह हु अन्तकाले।
न तस्स माया व पिया व भाया,
कालम्मि तम्मंसहरा भवन्ति॥
—उत्तराध्ययन, अ. १३, गा. २२

भयानक अटवी मे सिंह हिरण को पकडकर ले जाता है। तब उसके साथी-सगी अपनी अपनी जान बचाने की ही चिन्ता करते है। उसे बचा लेने की शक्ति किसी मे नही है। इसी प्रकार अन्त काल मे जब मृत्यु आकर मनुष्य पर झपटती है तो माता, पिता, भाई बन्धु कोई भी सहायक नही होते। अकेले ही जीव को मौत का शिकार बनना पडता है। वह एकला ही अपने कर्मों के अनुसार परलोक जाता है।

भाईयो। सर्वज्ञ वीतराग देव ने जगत के महान् मगल का मार्ग दिखलाया है। उसी मार्ग का आज मुनिराज उपदेश कर रहे हैं। कहा है.—

ये मुनिराज महाराज बड़े उपकारी,
महाराज! ज्ञान देकर समझावेजी।
जो फूले सो कुमलाय, एकसा नहीं रहावेजी॥टेक॥

साधु-मुनिराज आपके हक मे सदा अच्छा करने वाले हैं। वे आपको ज्ञान देकर समझाते है। प्रभु के वे सदेशवाहक है। के उपदेश पर ध्यान दो और जगत एव जीवन की अनित्यता विचार करके आत्मा के सच्चे कल्याण के पथ पर अग्रसर होओ

चम्पा नगरी मे एक बार करकडू राजा था। वह बडा भोगी यशस्वी, तेजस्वी, पराक्रमी और स्वरूपवान था। उसके रहने के लिए सोने के महल थे। ऐसा वीर था कि शत्रुगण उसके नाम मात्र से घबराते थे। सब जागीरदार उसके अधीन थे। उसके अन्त पुर मे पुण्यशाली रानिया थी और अनेक राजकुमार थे। तात्पर्य यह है कि पूर्वजन्म मे वह ऐसी तपस्या करके आया था कि उसे सभी प्रकार के अनुकूल सयोग मिले। किसी वस्तु की कमी नही थी।

भाइयो ! तपस्या मे कसर रह जाती है तो जीवन को सुखद सामग्री मे भी कमी रह जाती है। राज्य ऐश्वर्य धनसम्पत्ति आदि सभी कुछ मिल जाय तो लडका गोदी लाना पडता है। लडका हो जाय तो शरीर मे कोई स्थाई बीमारी घर बना लेती है।

कल्पना करो—आज आपने चौदस का उपवास किया और यहाँ से कही बाहर दूसरे गाव जाना पडा। वहाँ बीज हुआ और उसमे बादाम का हलुवा बना। आपको भोजन करने का आग्रह किया गया। आपके मुँह मे लार आ गई। आप सोचने लगे—आज उपवास न किया होता तो अच्छा था !

इस प्रकार भूखे भी रहे, हलुवा से भी गये और ...
उसे निर्मल भी न रख सके। तपस्या मे कसर रह ...
क्रिया का प्राण है। उसे बिगाड लिया तो क्रिया नि...

राजा करकण्डू ऐसी तपस्या करके आ...
जीवन मे किसी प्रकार की कसर नही थी। स...
लग रहा था। इसीलिए मैं कहता हू कि ...
जो कह रहा हूँ, अपने लाभ या कल्याण के...
कल्याण के लिए कहता हू। अतएव जो ...
अन्त में लाभ ही होगा।

इस विषय मे एक उदाहरण लीजिए। एक सेठ जिस मुनीम को रखता था, उससे शर्त कर लेता था कि जब भोजन करके मैं दुकान पर पहुच जाऊँ तब तुम भोजन करने जाना। मुनीम इस शर्त को स्वीकार तो कर लेते थे, परन्तु आखिर वह उन्हे बहुत भारी पडती थी। सेठ ऐसा व्यवहार करता और ऐसा परेशान करता कि कोई मुनीम अधिक समय तक टिक नही पाता था। कितने ही मुनीम आये और चले गये।

अब एक नया मुनीम आया। उसने एक बार निर्जली एकादशी की। दूसरे दिन बिना भोजन किये ही वह दुकान पर आ गया। उस दिन सेठ एक बजे दुकान पर पहुँचा। आते ही उसने कहा—गरमागरम मालपुए उतर रहे है, पाव भर ले आओ। मुनीम जाकर ले आया। फिर कहा आधा पाव गरम जलेबी भी तो ले आओ। मुनीम मन ही मन कुढने लगा, मगर गया और जलेबी भी ले आया। तत्पश्चात सेठ ने कहा—अरे कहना भूल गया एक छटाक रबडी भी लानी थी। लेते आओ! मुनीम क्रोध से भीतर ही भीतर जलने लगा। मगर नौकर ठहरा! गरज बावली होती है! सोचने लगा मैं तो कल का भूखा हू और यह भोजन करके आया है। फिर भी बार बार दौडा रहा है। मुनीम मन मसोस कर रबडी भी ले आया। मगर सेठजी ने फिर भी पिंड न छोडा। कहा—और सब चीजे तो ले आये, किन्तु एक चीज रह गई खटाई बिना मिठाई नही भाती। दो आने के दहीबडे और लेते आओ!

सेठ का इतना कहना था कि मुनीम से नही रहा गया। बोला- बस सेठ साहब! मैं आपके यहा नौकरी नही करूगा! मुझे छुट्टी दीजिए। सेठ बोला—अच्छा, यह सब चीजे दुकान के

पीछवाडे तो रख दो फिर चले जाना। मुनीम ने ऐसा ही किया। सेठ भी साथ गया और जीमने बैठ गया। तब मुनीम ने कहा—अच्छा साहब जाता हू !

सेठ ने कहा जाते तो हो, मगर मैं भोजन करके आया हू। मुझे यह सब नही भाता। तुम भूखे हो। तुम्हारा घर एक मील दूर है। कब जाओगे और कब खाओगे ! लो, आओ तुम्ही इन्हे खाजाओ। यह कहकर जबर्दस्ती मुनीम को खाने के लिए बिठला दिया और सेठ स्वय बाहर आ गया !

मुनीम मिठाइयाँ खाता जाता है और सोचता है—क्या ही अच्छा होता, मैं दो आने के दहीवडे भी लेता आता, क्योंकि मिठाई खटाई के बिना नही चलती है। सेठजी ने यह सब मिठाइया मेरे लिए ही मगवाई थी, परन्तु मुझे ज्ञान नही था ! इस प्रकार मुनीम पश्चात्ताप करता है।

तो जैसे मुनीम ने सेठ का कहना माना और थोडा-सा न मानने के कारण उसे पछताना पडा, इसी तरह साधु—महात्मा कहते हैं-हमे किसी प्रकार का लोभ-लालच नही है। हमारा कोई स्वार्थ नही है। अतएव जब हम कहते हैं-दान दो, शील पालो तपस्या करो, किसी भी प्राणी को पीडा न पहुचाओ, असत्यभाषण न करो, चोरी न करो, क्रोध और कपट से बचो, लोभ मत करो तो हमारा कहना मानो। ऐसा नही करोगे तो तुम्हें भी मुनीम की तरह पश्चाताप करना पडेगा। साधु-महात्मा तुम्हे सच्चे सुख का मार्ग बतलाते हैं। उस मार्ग पर चलोगे तो मोक्ष की प्राप्ति कर सकोगे।

एक बार मैंने उदयपुर के राणा भोपालसिहजी को उपदेश दिया था कि जीव रक्षा करना मनुष्य मात्र का परम धर्म है और

विशेषत: क्षत्रियो का। राणा साहब उपदेश सुनते थे तो उसे याद भी रखते थे। एक बार कर्मचारियो की प्रेरणा से वे शिकार खेलने के लिए जयसमन्द गये। शिकार हाथ आया तो कर्मचारियो ने कहा—अन्नदाता! बडा शिकार आया है। राणाजी बोले-अच्छा, आने दो। शिकार मौके पर आया तो कहा—बन्दूक लाओ। बदूक लेकर निशाना ताका और फिर कहा—मुझे तो महाराज श्री चौथमलजी का उपदेश याद आ गया है कि जीव रक्षा करने से धर्म होता है। मै इस प्राणी को अभयदान देता हूँ। महाराज श्री के पास जाकर यह समाचार उन्हे सुना दो।

भाइयो! कहने का अभिप्राय यह है कि हम आपको जो उपदेश देते हैं वह आपके ही हित के लिए है। आप श्रद्धापूर्वक उसे सुनेगे और व्यवहार मे लाएँगे तो आपका ही हित होगा। जो धर्म करेगा वही उसका फल पाएगा। बाप करेगा तो बाप भोगेगा बेटा करेगा तो बेटा भोगेगा। यह सभव नही कि परिवार मे एक ने धर्म का आचरण किया तो सब को उसका फल मिल जाएगा। पत्नी के धर्म से पति को बैकुण्ठ नही मिल सकता। यह बात तो प्रत्यक्ष देखी जा सकती है कि जो खाता है, उसी का पेट भरता है। एक खाने से दूसरे को तृप्ति का अनुभव नही हो सकता चाहे उनमे कितनी ही आत्मीयता क्यो न हो!

भाइयो! और-और वस्तुओ मे पाती हो सकती है, परन्तु धर्म और विद्या मे पाती नही हो सकती। चार भाइयो मे कोई एम.ए. एल-एल. बी. है तो यह सम्भव नही कि वह अपनी विद्या का बटवारा करदे-एम ए का ज्ञान एक भाई को दे दे, वकालत की बुद्धि दूसरे को बाट दे और आप कोरा हो जाय! इसी प्रकार दया और करुणा करोगे तो आपके पीछे है और हिंसा करोगे तो भी आपके पीछे है।

करकडू राजा वीतराग भगवान् के बतलाये मार्ग पर चला और पुण्योपार्जन करने मे समर्थ हुआ तो आज सब प्रकार से सुखी है। ससार जिन सुखो की स्पृहा करता है, जिस सुख सामग्री के स्वप्न देखा करता है और जिसका न्यूनतर अश पाकर ही अपने को कृतार्थ समझता है, वह सब सुख और वैभव उसे अनायास ही प्राप्त हो गया था। हां, कमी थी तो सिर्फ यही कि वह धर्म का आचरण नही कर रहा था। यो तो राजा शिक्षित और विवेकवान् था, जानता था कि पुण्य है, पाप है, धर्म का फल मधुर और अधर्म का फल कटुक होता है। फिर भी वह सयम धर्म का आचरण करने मे उद्योगशील नही था।

एक बार वह पुण्यशाली राजा वायुसेवन के लिए महल से बाहर निकला। उसने देखा कि उसकी गौएँ और उसके बछड़े चरने जा रहे हैं उन सबमे एक बछडा राजा को बहुत सुन्दर प्रतीत हुआ अकस्मात् राजा को उस पर परम प्रीति उत्पन्न हो गई।

राजा की कृपादृष्टि जिस पर पड़ जाय, वह निहाल न हो जाय तो कृपादृष्टि पडी ही क्या!

हैदराबाद की घटना है। वहां का नवाब बूढा था और शाहजादा बैठा हुआ था। इतने मे एक आम वाला निकला और उसने मीठे आम खरीदने की टेर लगाई। शाहजादे ने बाहर आकर उससे पूछा-आम क्या भाव हैं?

शाहजादे की यह बात नवाब ने सुन ली। उन्हे बहुत क्रोध आया। बाहर आकर बोले-कमीने! तू मेरी गद्दी के योग्य नही है। रैयत भी भाव पूछती है और तू भी भाव पूछता है तो तुम मे और रैयत में क्या अन्तर हुआ? तुझे आम पसन्द आये तो ले ले और टोकरा भर रुपये दे दे! तात्पर्य यह है कि राजा की कृपा दृष्टि निहाल कर देती है।

राजा करकडू ने गुवाल को आदेश दिया कि इस बछडे की माता का दूध न निकाला जाय और इस बछडे को ही पिला दिया जाय। इतने पर भी भूखा रह जाय तो दूसरी गाय का दूध पिला दिया जाय !

राजा के आदेश से बछडे को भरपेट दूध मिलने लगा। वह बछडा कभी-कभी राजमहल मे भी ले जाया जाता और राजा उसे पौष्टिक माल खिलाया करता था। इस प्रकार वह बछडा फूल गया और यथासमय मस्त साड बन गया।

सांड इतना अधिक मस्त हो गया कि लोगो ने उसका नाम 'दूधमल्ल' साड रख दिया। उसे देखकर दूसरा सांड पास भी नहीं फटकता था।

परन्तु यह जीवन और यौवन-सब अनित्य है टिकने वाला नही है। कहा भी है—

आयुर्विनश्यति यथाऽऽमघटस्थतोयम्,
विद्युत्प्रभेव चपला बत यौवनश्रीः।

जैसे कच्चे घडे मे स्थित जल विनाश को प्राप्त होता है उसी प्रकार आयु भी प्रतिक्षण नाश को प्राप्त हो रही है। इसी तरह यौवन भी विद्युत् की चमक के समान क्षणभगुर है।

निसर्ग के अनिवार्य विधान से मदोन्मत्त और हृष्टपुष्ट साड भी बूढा हो गया। उसके खुर और सीग ढीले पड गए। धीरे-धीरे वह अत्यन्त शिथिल हो गया। यहा तक कि एक दिन वह चलता-चलता रास्ते मे पड गया। कुछ लोग उसे उठाने लगे। लोग उठाते साड उठने की कोशिश करता था और फिर गिर पड़ता था।

अचानक उधर से राजा करकडू भी निकल पडे। भीड़ का कारण पूछने पर कहा गया कि आपके सांड को बुढ़ापा आ गया है और इतना शिथिल हो गया है कि वह उठ नही सकता।

राजा करकडू सवारी से उतरे। उन्होने उसकी हालत देखी। चित्त मे घोर निर्वेद उत्पन्न हुआ। सोचने लगे-आह ! एक दिन इसकी क्या स्थिति थी और आज क्या दशा है ? सत्य है, शरीर क्षणभगुर है और इस जीवन मे लेश मात्र भी स्थायित्व नही है।

जीवित मरणान्त हि, जरान्ते रूपयौवने।
सम्पदो विपदान्ता वा, अत्र को रतिमाप्नुयात् ॥

जीवन का अन्तिम परिणाम मृत्यु है। सौन्दय और यौवन अन्त में जरा के रूप में परिणत हो जाते हैं। सम्पत्ति विपत्ति के रूप में परिणत हो जाती है। ऐसी दशा मे कौन विवेकवान् मनुष्य इनमें अनुराग धारण करेगा ?

राजा गम्भीर विचार मे पड गया। उसने कहा साड की यह दशा हम सब के लिए एक सुनहरी शिक्षा है। हमारे जीवन को आगे चल कर किस रूप में परिणति होने वालो है, यह तथ्य हमारे सन्मुख मूर्तिमान् रूप ग्रहण करके प्रस्तुत है। साड मानो ललकार कर कह रहा है—शीघ्र ही सावधान हो जाओ—तुम्हारा भी बुढ़ापा आने वाला है, तुम्हारी भी मृत्यु होने वाली है। तुम्हारी इन्द्रियाँ भी इसी प्रकार शिथिल पड जाएँगी, अग-अग ढीले हो जाएँगे ! यौवन की यह बहार चार दिन की है !

निर्वेद ही निर्वेद मे राजा करकडू राजमहल मे आया। उसने अपने राज्य के बड़े बडे उच्चकोटि के वैद्यों को आमन्त्रित किया और उनसे कहा—मैं ऐसी औषध चाहता हूँ कि—

हम नही मरें अमर रहें जग में, नही बुढापा आवेरे ।
जागीरी बक्षीस करु, जो दवा खिलावेरे ॥१॥

भिषक्‌गण । लाखो रुपया खर्च हो जाय तो भले हो जाय, मगर ऐसी कोई औषध तैयार कर दो कि प्रथम तो बुढापा न आवे और दूसरे मौत न आने पावे ! क्या यह सभव है ?

वैद्यों ने परस्पर विचार-विमर्श करके कहा—पृथ्वीनाथ ! ऐसी औषध तो तैयार हो सकती है,किन्तु उसे तैयार करने के लिए ऐसे घर की राख मगवानी पडेगी जिस घर मे आज तक कोई मरा न हो !

राजा ने आदमी भेजे किन्तु ऐसा कोई घर न मिला !

तब वैद्यो ने कहा-महाराजाधिराज ! तब औषध नहीं तैयार हो सकती । वृद्धावस्था और मृत्यु जीवन के अनिवार्य अग हैं । निसर्ग के इस अटल नियम का उल्लघन करने की किसी मे शक्ति नही है । अमर्त्य कहलाने वाले देवगण भी अन्त मे मृत्यु रूपी व्याघ्रो की विकराल दाढो मे पिस जाते हैं,तो मनुष्य की क्या चलाई है ? वह तो मर्त्य कहलाता है । मौत उसे नही छोडेगी, कदापि नहीं छोडेगी ।

दूसरे वैद्य ने कहा-भूपालवर ! मौत की भी एक उपयोगिता है । मौत न हो तो इस ससार मे मनुष्यो की इतनी वृद्धि हो जाय कि तिल धरने को भी अवकाश न रहे ! उनके जीवन-निर्वाह की समस्या उलझ जाय और विकराल स्थिति उत्पन्न हो जाय ! मनुष्य सदा के लिए स्वर्ग और मोक्ष के सुख से वचित हो जाय, क्योकि र का त्याग किये बिना उनकी प्राप्ति नही हो सकती !

सच ही कहा है-

आने की शहादत जाना, जाने से क्या पछताना।
दुनिया है मुसाफिर खाना रे,तू जाग जरा या सो लेरे ॥
काया का पिंजरा डोले ॥

कोई कहे कि जाने का क्या प्रमाण है ? उत्तर है—आना ही जाने का प्रमाण है। जन्म लेना ही मरने का सबूत है। लडका जन्म लेता है तो कहा जाता है—लडका जाया ! आप यह नही कहते कि लडका आया ! कहा भी है

जाया जाया सब कहे, आया कहे न कोय।
जाया नाम जनम का तो, रहना किस विध होय ॥

तो स्पष्ट है कि आएगा सो जाएगा। ससार की कोई भी औषधि, कोई भी शक्ति और कोई भी व्यक्ति इस नियम को पलटने मे समर्थ नही है। यही सोच कर राजा करकडू के अन्त करण मे वैराग्य की किरणें प्रस्फुटित हुई। उन किरणो मे राजा अपना भावी जीवन देखने लगा-अपने भविष्य को उसने साफ-साफ देख लिया। राजा ने उस साड को देखकर समझ लिया। कि इस काया को कितना ही लाड लडाओ, कितना ही हृष्ट-पुष्ट बनाने का यत्न करो, एक दिन यह धोखा दे ही जायगी। यह शिथिल होकर गिर जायगी और अन्त मे निर्जीव होकर चिता मे भस्म की जायगी।

राजा करकण्डू सच्चा पुण्यवान् था। उसने विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण करली और आत्मा का कल्याण किया।

भाइयो ! असीम पुण्योदय से मानवभव की प्राप्ति हुई है। ईश्वर का भजन करके, अन्तरात्मा मे समता भाव जाग्रत करके

अहिंसा आदि व्रतों का पालन करके और आत्मरमण करके इसे सफल बनाओ। ससार की अनित्यता को समझो और मोह-ममता को कम करो। ऐसा करोगे तो आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।
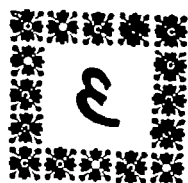
२३-१-४६
राणावास

मनुष्य और पशु

स्तुति :—

अहिंसा आदि व्रतों का पालन करके और आत्मरमण करके इसे सफल बनाओ। ससार की अनित्यता को समझो और मोह-ममता को कम करो। ऐसा करोगे तो आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

२३-१-४६ }
ब्यावर }
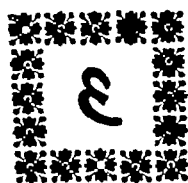
मनुष्य और पशु

स्तुति :–

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्व बोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथै: ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति को जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! समस्त शास्त्रो के अध्ययन मनन और चिंतन से उत्पन्न हुई बुद्धि के कारण जो अत्यन्त पटु हैं, ऐसे शक्रेन्द्र महाराज ने आपके गुणो की स्तुति की है। वह स्तुति भी कुछ साधारण नहीं थी। तीनो जगत के समस्त भव्य प्राणियो के चित्त को हरण करने

मे समर्थ और अत्यन्त उदार एव उदार भावो से परिपूर्ण थी । इस प्रकार इन्द्र के सदृश पटु भक्त जिनकी इतनी मनोहर स्तुति कर चुके हैं, मैं भी उनकी स्तुति करने चला हू ! कैसा अतिसाहस है मेरा !

जिन आदिनाथ प्रभु के एक गुण का वर्णन करने में भी वाणी समर्थ नही है, वे अनन्त गुणो से विभूषित हैं । किसका सामर्थ्य है जो उन गुणो का वर्णन कर सके ? एक ग्रन्थकार यथाथ ही कहते हैं :–

पत्र व्योम मसी महाम्बुधिसरित्कुल्यादिकानां जल,
लेखिन्यः सुरभूरूहा, सुरगणास्ते लेखितारः समे ।
आयु सागरकोटयो बहुतरा स्फीता तथापि प्रभो !
नैवस्यपि गुणस्य ते जिन ! भवेत्सामान्यतो लेखनम् ॥

ग्रन्थकार भगवत्स्तुति करने का सकल्प करके चले मगर उन्हे पता चला कि मामला बडा बेढव है-। भगवान् मे अनन्तगुण हैं और उनमे से एक गुण को स्तुति करना अर्थात् एक गुण का भी शब्दचित्र अकित करना कठिन है । तब वे अपनी असमर्थता प्रकट करके ही स्तुति करने लगे । उन्होने कहा-हे जिन देव! प्रभो! सम्पूर्ण अनन्त आकाश को यदि कागज बना लिया जाय, समस्त सागरो नदियो और सरोवरो आदि के जल को स्याही बना लिया जाय, तमाम कल्पवृक्षो को लेखिनी के रूप मे प्रयुक्त किया जाय, स्वर्ग के सब देवो को लेखक के रूप मे काम म लिया जाय, उनकी आयु बहुत से करोडो सागरो जितनी विपुल हो तब भी आपका एक भी गुण पूरी तरह नही लिखा जा सकता !

ऐसी है परमात्मा के गुणो की महिमा ! कहा प्रभु के अनत गुण और कहा साधारण मनुष्य की क्षूद्र-सी शक्ति !

प्रश्न हो सकता है—अगर महात्मा की स्तुति करना असभव है तो फिर उसके लिए प्रयत्न ही क्यो किया जाय ? असभव कार्य मे हाथ डालना बुद्धिमत्ता नही कही जा सकती ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मनुष्य ससार की समस्त खाद्य सामग्री नही खा सकता, फिर भी शक्ति के अनुसार खाता ही है। कोई भी पुरुष ससार की समस्त विद्याओ और कलाओ का ज्ञान प्राप्त नही कर सकता, फिर भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करता ही है। ऐसी बातो मे यह नही सोचा जाता कि सब खाद्य नही खाये जा सकते तो थोडे क्यो खाये जाएँ ? परिपूर्ण ज्ञान नही प्राप्त किया जा सकता तो अपूर्ण क्यो प्राप्त करूँ ? तो फिर प्रभु के गुण स्तवन के सम्बन्ध मे हो ऐसा क्यो सोचना चाहिए ? जितना खाया जायगा और पचाया जायगा, उतने का ही रस बनेगा और उसी परिमाण मे शरीर को पोषण मिलेगा। इसी प्रकार भगवान के गुणो की जितनी स्तुति करोगे और उससे हृदय को द्रवित करोगे, उतना ही लाभ होगा, उतना ही आत्मा को पोषण मिलेगा। अतएव प्रत्येक भक्त का यही कर्त्तव्य है कि वह अपनी-शक्ति के अनुसार परमात्मा की स्तुति भक्ति करे और आत्मा का कल्याण करे।

इस प्रकार जिनके समस्त गुणो का वर्णन करना सभव नही, उन आदिनाथ भगवान को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयों ! भगवान् ऋषभदेव सब क्षत्रियो मे आद्य-मुख्य क्षत्रिय हुए हैं। वह सबसे पहले राजा हुए। उन्होने ही राज्य करने की प्रणाली चलाई। राज्य की प्रणाली को सुव्यवस्थित करने के पश्चात् उन्होने राज्य का परित्याग कर दिया और साधु बन गए। तपस्या करके सर्वज्ञानी बन गये। तदन्तर जगत् को

दिया । वही जैनधर्म मे सबसे पहले तीर्थ कर कहलाते है ।

भगवान् ने बतलाया कि ससार मे चार तीर्थ हैं। जिसका आश्रय लेकर ससार-सागर तिरा जाय-पार किया जाय अर्थात् भवभ्रमण से छुटकारा पाया जाय, उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसे तीर्थ चार हैं–साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। जो अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाच महाव्रतो का पूर्ण रूप से पालन करते हैं, ऐसे पुरुष साधु कहलाते है। इन्ही महाव्रतो का पालन करने वाली महिलाएँ साध्वी कहलाती है। इन व्रतो को पूर्ण रुप न पाल सकने के कारण जो आशिक रूप मे पालते है, उन नर-नारियो को क्रमश श्रावक और श्राविका कहते है।

किसी भी स्थावर या जगम प्राणी को मन, वचन, काय से पीडा न पहुँचाना, दूसरे से न पहुचवाना और पहुँचाने वाले की अनुमोदना न करना पहला अहिसा महाव्रत कहलाता है। इसी प्रकार असत्य वचन पीडाजनक वचन, क्लेश-कारक, सतापजनक, सदिग्ध और निष्ठुर वचन न बोलना सत्य महाव्रत कहलाता है। यह भी मन, वचन और काय से पाला जाता है। किसी वस्तु को यहा तक कि तिनका जैसी तुच्छ को भी, बिना आज्ञा ग्रहण न करना अस्तेय महाव्रत है। पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करना, अपनी इन्द्रियो पर पूरी तरह काबू रखना ब्रह्मचर्य महाव्रत कहलाता है। धन, दौलत, मकान, महल, हाथी, घोड़ा, मठ, जागीर आदि किसी प्रकार की सचित्त अथवा अचित्त वस्तु पर ममता न रखना और धर्म के उपकरणो के सिवाय अन्य किसी भी वस्तु को अपने पास न रखना अपरिग्रह महाव्रत है। साधु साध्वी के लिए मन, वचन, काय से इन महाव्रतो का पालन करना अनिवार्य होता है। इन महाव्रतो को आजीवन पालने की भीष्म-प्रतिज्ञा करने वाले मुनिजन ही प्रथम तीर्थ है।

साधुनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागमः ॥

साधु जनों का दर्शन पुण्य रूप है, क्योंकि साधु साक्षात् तीर्थ स्वरूप हैं। और-और तीर्थ तो समय पर ही फल देते हैं, किन्तु साधुओं का समागम शीघ्र ही अपना फल प्रदान करता है।

आज तो कोई किसी को और कोई किसी को तीर्थ कहता है। मगर किसी तीर्थ मे जाओ,वह आपको आत्म ज्योति नही दे सकता आप उसे अपना आदर्श मानकर आत्मा के असली स्वरूप को, अन्त-स्तत्त्व को नही पहचान सकते। वह आपको धर्म का मार्ग नही बतला सकता। किन्तु साधुतीर्थ के समागम से आपको यह सब लाभ होते हैं। सन्त पुरुष स्वय तिरते और दूसरो को तारते हैं।

यह धर्म शास्त्र की बात है। नीतिशास्त्र मे माता-पिता आदि गुरुजनो को भी तीर्थ कहा गया है। वैष्णव धर्म मे तो यहा तक कहा गया है कि जब तक माता-पिता विद्यमान हैं, तब तक पुत्र को दूसरे तीर्थो में अटन करने की आवश्यकता ही नही है।

भाइयो! आजकल के लोगो ने,कलियुग के प्रभाव से प्रभावित होकर, नया दर्शनशास्त्र बना लिया है। उनकी समझ मे सासू तीर्थ है और श्वसुर तीर्थ है। यह सब दृष्टिकोण आपके सामने मौजूद हैं। आपको जो पसद हो, उसी तीर्थ को मान लो! सुना तो यहाँ तक जाता है कि आजकल माता-पिता तीर्थ का स्थान सासू श्वसुर तीर्थ ने ग्रहण कर लिया है। लोग अपने सगे भाई को का भेद नही बतलाते, मगर साले को सारा भेद दे देते हैं

यह तीर्थ तो खैर है सो हैं ही, परन्तु पूरा तीर्थ तो गृहदेवी का घरवाली का–है। कम्पनी-सरकार जो हुक्म फरमाती है, उसी का पूरी तरह पालन किया जाता है। जितने कदम उठाने को कहती है, उतने ही कदम उठाये जाते है। मगर याद रखना यह अनीति के तीर्थ है। माता-पिता आदि नीतिशास्त्र के तीर्थ है। और सन्तजन परमज्ञानियो के माने हुए तीर्थ हैं। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अनीति का परित्याग करके नीति का अवलम्बन करे और धर्म एव अध्यात्म की ओर अग्रसर हो।

चार पूर्वोक्त तीर्थों मे श्रावक भी तीर्थस्वरूप माना गया है। संसार से पूरी तरह जिसकी मोह-ममता नही टूटी है और जो पूर्ण रूप से पापो का परित्याग करने मे असमर्थ, है. इस कारण जो महाव्रतो को नही पाल सकता, उसे कम से कम गृहस्थ धर्म का पालन तो करना ही चाहिए। गृहस्थ के लिए ज्ञानियो ने मुख्यरूप से बारह नियम बतलाये हैं। जो धर्म से सर्वथा रहित हैं, उनमे और पशुओ मे क्या अन्तर है ? कहा भी है :—

> अहारनिद्राभयमैथुनञ्च,
> सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
> धर्मो हि तेषामधिको विशेषः,
> धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

नीतिकार का कथन है कि मनुष्य और पशु मे धर्म ही विभाजक रेखा है। मनुष्य भी आहार करते है और पशु भी आहार करते । मनुष्य सोते हैं तो पशु भी सोते है। भयजनक पदार्थों को देख-मनुष्य भी डरते है और पशु भी डरते है। मनुष्य काम-

वासना को चरितार्थ करते है तो पशुओ मे भी वह वासना विद्यमान है। इन सब बातो मे मनुष्य और पशु के बीच कोई अन्तर नही है। अन्तर है तो यदि कि मनुष्य जिस धर्म का पालन करते हैं, पशु नही कर सकते। जब मनुष्य और पशु मे केवल धर्मपालन का ही अन्तर है तो यह भी स्पष्ट है कि जो मनुष्य की आकृति को धारण करके भी धर्म का पालन नही करता, वह पशु के ही समान है।

भाइयो ! केवल नर की आकृति पा लेने मे ही कोई महत्ता अथवा विशेषता नही है। नर की आकृति तो वानर मे भी पाई जाती है। मनुष्य की विशेषता सच्चा मनुष्यत्व प्राप्त करने मे है। मनुष्यत्व का अर्थ है नीति और धर्म की मर्यादा को समझना और उसके अनुकूल वर्त्ताव करना। इसी अभिप्राय से मनुष्य का दर्जा ऊचा माना गया है।

कल्पना कीजिये, किसी सेठ को राजा ने नगर सेठ की पदवी प्रदान कर दी। अब वह सेठ अगर अपने पद गौरव को नही समझता और बाजार मे गधे की सवारी करके निकलता है तो जनता यही कहेगी कि पदवी पाकर यह ऊँचा बना है, बल्कि इसने गौरवमयी पदवी के गौरव को नीचा कर दिया है। इसमे नगरसेठ की पदवी की योग्यता नही है।

तमाम पशुओ और नरकयोनि के जीवो में तो मनुष्य का दर्जा ऊचा है ही, धर्म के लिहाज से देवो और देवेन्द्रो से भी ऊचा है। मनुष्य प्राणी जगत् का सरदार कहलाता है, इसी दृष्टि से कि वह अपने आपको समझ सकता है और अपने स्वरूप को पा सकता है।

सिंह का बच्चा मर जायागा, मगर घास नही खाएगा। जब जानवरो में भी यह तासीर है तो ऐ मनुष्य ! तू इतने ऊँचे दर्जे पर

पहुँच कर अपनी मर्यादा के विरूद्ध कार्य कैसे करता है ? अगर करता है तो मनुष्य कहलाने का तुझे क्या अधिकार हैं ? इसलिए मै कहता हूँ कि मनुष्य अपनी इज्जत को समझे और ज्ञानी एवं चरित्रनिष्ठ महात्माओ की संगति करे, जिससे कि वह ऊँचे दर्जे पर पहुँच कर नीचे की ओर न गिरे और अपने पद की प्रतिष्ठा में धब्बा न लगने दे।

इज्जत थारी रे तू रखजे चतुर सँभाल ।
इज्जत थारी रे ।। टेर ।।
तन धन से इज्जत बड़ी, आदर देवे भूपाल ।। १ ।।

सब से ऊचे दर्जे का जन्म मिला है तो इसकी आबरू रखना । याद रक्खो, इज्जत-आबरू मोल नही मिलती । यह बड़े ऊचे दरजे की चीज है और तन एव धन से भी अधिक मूल्यवान है। कितने ही लोग इज्जत के लिए हजारो-लाखो खर्च कर देते ह और कितने ही वीर पुरुष प्राण भी अर्पण कर देते हैं । समझदार लोग इज्जत के लिए सर्वस्व समर्पित करते भी हिचकते । नागे लोग इज्जत के महत्व को नही समझते । उनके तो आगे पीछे नौबत बजती है ।

आपको पता ही होगा कि महाराणा फतहसिहजी से पहले स्वरूपसिहजी हुए । उन्होने रावली दुकान के नाम से एक दुकान खुलवाई । दुकान खुलवाने का उद्देश्य कमाई से नही था । वरन् प्रजा को सुविधा पहुंचाना चाहते थें । अतएव उस दुकान में यह नियम बनाया गया था कि जिसे किसी दूसरी दुकान से उधार न मिले, वह इस दुकान से उधार ले जाय । महाराणा जब दुकान का ९५ ८न करने गये तो उन्होने मुनोमको हिदायद देते हुए कहा–

देखो, सबको खास तौर से गरीबो को उधार देना किन्तु जो मुझसे बडा हो, उसे उधार मत देना।'

महाराणा साहब की यह उक्ति सुनकर मुनीम और दूसरे सुनने वाले भौंचक-से रह गये। वे सोचने लगे अन्नदाता मे बडा कौन है? तब एकने साहस करके पूछ लिया अन्नदाता! आपके कथन का अर्थ समझ मे नही आया। आपसे बडा कौन है?

महाराणा ने उत्तर दिया–समझे नही? जो नागा हो और निर्लज्ज हो, जिसे अपनी इज्जत का खयाल न हो, वही मुझसे बडा है।

भाइयो! जब ऐसे लोग गलियो मे होकर निकलते हैं तो लोग उनकी तरफ उँगली उठाते हैं। वास्तव मे ऐसे लोगो की जिदगी किसी काम की नही है। आपको मालूम होगा कि कोला (कूष्माण्ड) जिस बेल मे लगता है, उसकी ओर उँगली उठा दी जाय तो वह सूख ही जाता है। कोला एक फल है परन्तु उसे मालूम है कि मैं सब फलो मे बडा हू और मेरी ओर उँगली उठा दी! जब फल मे यह तासीर है तो मनुष्य मे क्या होना चाहिए, यह मनुष्य स्वय सोच ले!

रामचन्द्रजी ने सीता के लिए रावण से लडाई की। क्यो? क्या उन्हे दूसरी पत्नी नही मिल सकती थी? रानियो की उनके लिए कमी नही थी। स्वय रावण ने उन्हे प्रलोभन दिया था कि सीता के बदले मे हजारो सुन्दरी कन्याओ के साथ आपका विवाह करा दू गा। किन्तु रामचन्द्रजी ने यह स्वीकार नही किया। उन्होंने सीता की और अपनी इज्जत के लिए भयानक सग्राम किया। जब राम ने लका पर चढाई की तो रावण के भाई विभीषण ने और रानी मन्दोदरी ने उसे बहुत समझाया कि सीता को वापिस लौटा

मगर रावण ने कहा–मैं जिस हाथ से सीता को लाया हू, उसी हाथ से वापिस लौटा दू तो मेरी इज्जत चली जायगी। मैं राम से कम नही हू। जब तक मेरे दम मे दम है, तब तक मैं सीता को नही दू गा। इस प्रकार राम ने लडाई की तो इज्जत के लिए और रावण ने लँका एव प्राणो का चला जाना स्वीकार किया तो भी अपनी इज्जत के लिए ही। इसे इज्जत कहो, बात कहो, पानी कहो या पत कहो, एक ही बात है।

सच तो यह है कि इज्जत के बिना मनुष्य का मूल्य कानी कौडी का भी नही है। इज्जतदार मनुष्य ही पूरा मनुष्य है। ससार के इतिहास को देखने से पता चलेगा कि इज्जत की रक्षा के लिए कितने ही पुरुषो ने घोर से घोर सकट सहन किये हैं। दूर जाने की आवश्यकता नही है। मेवाड और चित्तौड के इतिहास पर ही एक दृष्टि डालोगे तो विदित हो जायगा कि इज्जत कितनी कीमती वस्तु है और उसकी रक्षा के लिए मेवाड के वीरो और वीरागनाओ ने कितने-कितने सकट सहन किये है, कैसा कैसा गभीर और महान् उत्सर्ग किया है।

मैंने विक्रम सवत २००० मे चित्तौडगढ में चौमासा किया था। उस समय वहा के सब स्थान देखने मे आये। देखा कि यहाँ पद्मिनी का महल था, यहाँ मुगल-बादशाह गया और यहाँ यह हुआ। यह सब देखकर राजपूतो की असाधारण वीरता के दृश्य आँखो के आगे आ गये। उसी समय एक लावनी बनाई गई :—

यह गढ़ चित्तौड़ की कथा सुनो नर नारी।
हुई सती पद्मिनी वीर धरम की धारी ।। टेर ।।
श्रीरत्नसिंह महाराजा नूर नूरानी।

ये सिंहल द्वीप की ब्याही पद्मिनी रानी।
जिसके स्वरूप की घर घर फैली कहानी,
सुन अलाउद्दीन खिलजी की नियत पलटानी।
कब बेगम मेरी होवे पद्मिनी नारी ॥ १ ॥

यह शीशोदिया वंश की महारानी पद्मिनी का, जिसने अपने धर्म और इज्जत की रक्षा के लिए जौहर किया-प्राणोत्सर्ग किया, उसी का यह प्रेरणाप्रद वृत्तान्त है। मेवाड के महाराणा एक वार जगदीश गये थे। उस समय सिंहलद्वीप में, जिसे आजकल सीलोन कहते हैं, राजपूत राजा राज्य करते थे। उनकी कन्या का नाम पद्मिनी था। पद्मिनी नाम की पद्मिनी नहीं थी, लक्षणों और गुणों से भी थी। वह ऐसी सुकोमल और रूपवती थी कि जब पानी पीती तो उसके गले में पानी उतरता हुआ दिखाई देता था। ऐसी पुण्यशालिनी वह कन्या थी।

सिंहलद्वीप के राजा को पता चला कि उदयपुर-नरेश जगदीश-यात्रा करने आये हैं। उसने उन्हें अपने यहां आमन्त्रित किया और सब प्रकार से योग्य वर समझ कर पद्मिनी का उनके साथ विवाह कर दिया। राणाजी रानी पद्मिनी को लेकर चित्तौड आ गए। पद्मिनी के रूपसौन्दर्य की ख्याति सब जगह फैल गई, यहां तक कि दिल्ली तक जा पहुँची। उस समय दिल्ली बादशाह अलाउद्दीन खिलजी था। उसने पद्मिनी के रूप की प्रशंसा सुनकर उसे प्राप्त करने की चेष्टा की और विशाल सैन्य सुसज्जित करके चित्तौड की ओर प्रस्थान कर दिया।

ले विकट फौज चित्तौड़ पै करी चढ़ाई।
दोनों नदियों के बीच फौज ठहराई ॥

किल्ले को घेर कर यहीं छावनी छाई।
छह महीने में भी नहीं पद्मिनी पाई ॥
तब विवश होय कर एक अनीति विचारी ॥२॥

अलाउद्दीन ने अपनी सेना से चित्तौड को घेर लिया। किले फाटक बंद कर दिये गए राणाजी को बादशाह की नियत मालूम हो गई थी। वह उसके मनोरथ को पूर्ण करने में असमर्थ थे। बादशाह को पड़े-पडे छह महीने बीत गये। जब सफलता का कोई आसार नजर नहीं आया तो उसने कपटनीति अख्तियार की।

कर कपट बात यह राणा को कहलाई,
मैं नहीं चाहता वैर विरोध लड़ाई।
पद्मिनी की महिमा दिल्ली में सुन पाई,
तब से दर्शन करने की मन में आई ॥
यह इच्छा पूरग कीजे मित्र! हमारी ॥ ३ ॥

छल का प्रयोग करते हुए बादशाह ने राणाजी के पास संदेश भेजा—मैं आपसे लड़ने के लिये नहीं आया हूँ आपकी रानी पद्मिनी की तारीफ सुनकर उसकी जियारत के लिए आया हूँ। मैं आपका दोस्त बनकर आया हू। पद्मिनी के दर्शन करके अपनी फौज के साथ वापिस चला जाऊगा।

राणाजी ने यह सदेश सुना। राजपूत सच्चे वीर थे, परन्तु कपट नहीं जानते थे। वे निष्कपट ओर सरल हृदय वाले थे।
तः—

महाराणा सरल स्वभाव उसे बुलवाया,
शीशे में महाराणी का मुंह दिखलाया।
महमान समझ कर नीचे तक पहुँचाया,
छिपी हुई फौज से राणा को पकड़ाया॥
हुआ दगा राजपूतों ने लिया विचारी ॥ ४ ॥

महाराणा भी सरल स्वभाव के वीर थे। उन्होंने सोचा—अलउद्दीन एक मित्र के नाते आता है तो आने दो। यह सोचकर उन्होंने उसे बुला लिया बादशाह के आने पर राणाजी ने उसका स्वागत किया और उसे मर्दाने महल में ले गये। दूसरे महल से पद्मिनी का रूप शीशे मे उसे दिखलाया। परन्तु उस रूप को देखकर बादशाह की नियत और अधिक बिगड़ गई, क्योंकि पुण्यवती स्त्री का रूप, चाहे वह सुन्दर वस्त्र और आभूषण न भी धारण किये हो तो भी, मनोहर ही होता है। जिसने पूर्वजन्म में अच्छी करणी न की हो, उसे अच्छा रूप नहीं मिलता। सुन्दर रूप भी पुण्य का एक फल है।

हां, तो बादशाह पद्मिनी का रूप देखकर रवाना हुआ तो शिष्टाचार के अनुरोध से राण जी उसे पहुंचाने गये। कपटी और धूर्त बादशाह ने राणाजी से चिकनी चुपड़ी बातें छेड़ दीं और यों करते-करते उन्हें अन्तिम दरवाजे तक ले आया। पहुचते ही उसने इशारा किया और छिपे हुए सैनिकों ने राणाजी को घेर कर पकड़ लिया और कैद कर लिया।

उसी समय यह संवाद किले पर पहुच गया। समस्त सरदार और उमराव एकत्र हुए। उन्होंने कहा दगाबाज बादशाह बेईमानी

करने से नहीं चूका । शीघ्र ही हमें इसका प्रतीकार करना होगा।

पद्मिनी की पीडा असीम थी। वह सोचने लगी...महाराणा की विपत्ति का कारण मै हूँ। मेरे कारण ही उन्हें शत्रु के पजे मे पडना पडा है! मगर क्या किया जाय? उसने उमरावों को संदेश भेजा मेरे स्वामी को शीघ्र ही मुक्त करके लाने का उपाय करो।

सब सरदार सभा भवन में चिन्ताकुल बैठे समस्या पर विचार विमर्श कर रहे थे। उन्होंने पद्मनी को उत्तर दिया—'आपके स्वामी हमारे भी स्वामी हैं और उन्हें वापिस लाने के लिए जैसे आप चिन्तित हैं वैसे ही हम भी। स्वामी अवश्य आएंगे चाहे हम सब के प्राण चले जाएं।' आखिर सरदारों ने निश्चय किया—दगा का उत्तर दगा से ही दिया जाना चाहिए। और उन्होंने सम्पूर्ण योजना बनाकर राणाजी को छुड़ा लाने का उपाय खोज निकाला। उन्होंने बादशाह के पास समाचार भेज दिया कि महारानी पद्मिनी आपसे मिलने के लिए आना चाहती है।

कर खबर बादशाह पै ये खबर भेजावे,
पद्मिनी प्रेमवश पास तुम्हारे आवे।
सात सौ बांदियां डोले में संग लावे,
सुन अलाउद्दीन की तबियत अति हर्षावे ॥
एक डोले पर दुशाला जरा का डारी ॥४॥

बादशाह को संदेश दिया गया कि पद्मिनी इज्जत के साथ आपके पास आएगी। उसकी सात सौ बांदियां है और वे भी पर्दा-
हैं। अतएव वे भी डोलों मे बैठकर आएंगी।

वादशाह अपनी सफलता पर फूला न समाया। उसने सोचा—रक्त की एक भी बूंद बिना बिहाये काम बन रहा है! बादियां डोलों में वठ कर आती हैं तो आने दो।

इधर सात सौ डोले तैयार हुए। पद्मिनी के बहाने सजाये गये डोले में गौरा और बादल सरदार सशस्त्र होकर बैठ गये और शेष सात सौ डोलों मे दूसरे सरदार और वीर अपने-अपने हथियारों से लैस होकर जम गये। एक एक डोले को उठाने के लिए चार चार योद्धा लग गये और वे भी सब शस्त्र सज्जित थे। खास डोले पर जरी का पर्दा डाल दिया गया।

डोले में एक सरदार चार उठावे,
शस्त्रों से डोले सजे सैन्य में आवे।
पद्मिनी पति से अन्तिम मिलना चहावे,
यह शाह सुणी राणा के पास पठावे॥
मिलने के बहाने राणा को लिया निकारी॥६॥

आखिर सात सौ डोले बादशाह की छावनी मे जा पहुचे। वहां पहुच कर बादशाह से कहा गया—जहांपनाह! इस डोले में महारानी पद्मनी हैं। वे अपने पति के अन्तिम दर्शन करना चाहती हैं।

बादशाह ने कह दिया-अच्छा, मिल लेने दो!

डोला राणाजी के पास पहुँचा। दोनों सरदार उसमें से निकल पडे और महाराणा से कहा-आप इसमें बैठ जाइए। जरी का पर्दा दूसरे डोले पर डाल दिया गया। वह डोला

लेकर किले की ओर रवाना हुआ। बादशाह ने उसे जाते देखा तो कहा-यह डोला कहां जा रहा है? उसे उत्तर दिया गया एक बादी बीमार है। वह महलों में जा रही है। बादशाह ने कहा-अच्छा जाने दो। वह डोला ज्यों ही दरवाजे के भीतर प्रविष्ठ हुआ कि दरवाजा बद कर दिया।

इधर एक साथ सभी सरदार डोलों में से बाहर आ गये। बादशाह की फौज बेखबर पड़ी थी, क्योंकि लडाई की कोई संभावना नहीं थी। अचानक राजपूत वीरों को प्रकट हुआ देखकर बादशाह ने कहा-या अकबरअली!

इधर राजपूतों ने गर्जना की हर-हर महादेव! बजरअली। राजपूतों ने पल भर भी विलम्ब किये बिना बादशाह की फौज को काटना आरम कर दिया। बहुत कुछ सफाया हो गया!

डोले में बिठा फौरन राणाजी ताई,
और गढ़ चित्तौड़ पर दीना तुरत पठाई।
फिर राजपूतों ने ऐसी खड्ग बजाई,
खा हार बादशाह दिल्ली कूच मनाई॥
पद्मिनी को चित्त से किन्तु नहीं बिसारी॥ ७॥

जब राजपूतों की कठोर करवाल से बादशाह की अधिकाश सेना कट गई तो शेप बची सेना को लेकर वह दिल्ली की तरफ माग गया। मगर पद्मनी को वह भूल न सका। उसके हृदय में यही रहा कि अगर पद्मिनी को अपनी बेगम न बनाया तो यह सल्तनत ही बेकार है! इस कुत्सित विचार से—

एक बार बादशाह फिर चित्तौडगढ़ आया,
क्षत्रियों ने उसको खूब हाथ दिखाया।
रणवास में राणा अंत में आ जतलाया,
रहे धर्म तुम्हारा शरण अनल की जायां॥
अग्नि का कुंड एक रचा सामने भारी॥८॥

अब की बार बादशाह बहुत बड़ी फौज लेकर आया था। उसने चारों और से चित्तौड के किले को घेर लिया। राजपूतों ने डट कर मुकाबिला किया, किन्तु विजय की कोई आशा न रही। तब सब राजपूत किले के भीतर आ गए और द्वार बन्द कर लिये गये। राणाजी हाथ मे नगी तलवार लिये रनवास मे आये। उन्होंने रानियों को चेतावनी दी–शत्रु की सेना बहुत विशाल है। हमारे पास इतने सैनिक नहीं हैं कि हम उसे सामना करके परास्त कर सकें। अगर तुम्हें अपने धर्म की रक्षा करनी है, अपनी इज्जत रखनी है, तो तैयार हो जाओ। अग्नि की शरण में जाने के सिवाय धर्मरक्षा का अन्य मार्ग नहीं दिखाई देता।

राजपूत महिलाए भी वीरागनाए थीं। वीरागनाएं न होती तो वीरप्रसविनी माताएँ कैसे बन सकती थीं? कायर स्त्रियां वीर सन्तान को जन्म नहीं दे सकतीं। वे अपने धर्म की रक्षा के लिए हँसती-हसती प्राण दे सकती थीं। महाराणा ने उन्हें जब यह चेतावनी दी तो वह धर्म रक्षार्थ अग्निदेवता की शरण में आने को तैयार हो गई।

तीन सौ रानियां अनुक्रम से चल आवे,
राणा को नमन कर अग्नि में जल जावे।

पद्मिनी अंत में पति को शीश नमावे,
अग्नि में स्नान कर अपना धर्म बचावे ॥
दिया राजकुंवर को गुप्त मार्ग से काढ़ी ।९॥

तीन सौ रानियां सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित हो गई और ड्योढ़ी में खड़े राणाजी को नमस्कार कर-करके अनुक्रम से आग में जलने लगीं। सब के अन्त में पद्मनी आई। उसने भी महाराणा से सदा के लिए विदाई ली। फिर अग्निकुण्ड के सामने खड़ी होकर कहने लगी।

अगनि अब रखियो लाज हमारी ॥ टेक ॥
हम सब बाला निपट बिहाला, पति बिन परम दुखारी।
वेगि चिता धकि भस्म करो हम, आई शरण तिहारी ॥१॥
सुनरे यवन अधम चंडालो! हृदय दियो तुम जारी।
साखी सुरपति फल पाओगे, भोगोगे दुःख भारी ॥२॥

भाइयों! भारत का इतिहास बड़ा ही प्राणमय है। राजपूत नर-नारियों ने जो वीरता और त्यागशीलता दिखलाई है, संसार के इतिहास में उसकी कोई भी मिसाल नहीं मिलती। धर्म, देश की स्वाधीनता और कर्त्तव्य पालन के लिए प्राणों की बलि चढ़ा देना उनके बायें हाथ का खेल था, मगर ऐसी असाधारण ज्वलन्त वीरता को भी फूट-राक्षसी निगल गई। राजपूतों की देशव्यापिनी शक्ति कभी संगठित नहीं हुई। यही नहीं बल्कि वह पारस्परिक संघर्ष में लगी और क्षीण हो गई। अनेक राजपूत राजाओं ने शत्रुओं को सहायता दी और देश के साथ द्रोह किया। इसी कारण वे सफल न हो सके। देश पर विजातीयों की सत्ता स्थापित हो गई।

हां तो यह राजपूत-रमणियां अग्निदेवता से कहने लगीं-हे पाविनी! हम तुम्हारी गोदी में शरण चाहती हैं। तुम हमारे धर्म की रक्षा करना। हम धर्म को गवा कर जीवित नहीं रहना चाहती। ज्वालामयी, हमें अंगीकार करो, शीघ्र ही भस्म कर दो। और यवनो! नराधमो! तुमने जो अत्याचार किया है, उसका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा।

इस प्रकार कहकर वे आग में कूद पडी और भस्म हो गई। उधर राजकुमार गुप्त मार्ग से किले के बाहर चले गये।

फिर वीरों ने केसरिया भेष सजाया,
कई यवनों के हर प्राण, प्राण गंवाया
आ गढ़ में बादशाह खाक देख पछताया,
फूलों के बदले खार हाथ में आया ॥
ले सेना वापिस दिल्ली गया सिधारी ॥१०॥

तत्पश्चात् सब राजपूतों ने केसरिया कपडे पहने और घोड़ों पर सवार होकर, हथियार ले-लेकर दुश्मनों पर टूट पड़े। उन्हें मार-मार कर खत्म हो गए। जब विजयोन्माद में झूमता हुआ बादशाह रानी पद्मिनी को पाने की कामना से किले मे प्रविष्ट हुआ। तो उसे पता चला कि जिसके लिए इतना भीषण नरसंहार हुआ, वह तो सदा के लिए मेरी पहुँच से बाहर हो चुकी।

किले का घोर भयावह दृश्य देखकर और जौहर की कठोरता का विचार करके बादशाह का दिल दहल उठा। आंखों में आंसू आ गए। वह मस्तक अपनी हथेली पर टेककर सोचने लगा-राजपूत जाति भी कैसी अनोखी है। यह जाति मरने से तो डरती

ही नहीं ! मरना इसके लिए खिलवाड है। अफसोस। मै क्या पाने आया था और क्या पल्ले पड़ा। मैं फूल के लिए आया था, मगर कांटे हाथ लगे। इतिहास लिखने वाले घृणा के साथ मेरे नाम का उल्लेख करेंगे। ससार मेरे नाम पर थूकेगा। मै पापी माना जाऊगा। कुरान के १८वें पारे मे लिखा है कि किसी औरत पर बलात्कार न करो, मगर मैने नियत बिगाडी और कुरान को ठोकर मारी। अल्लाह मुझे दोजख मे भेजेगा। और इधर बदनामी के सिवाय कुछ भी हाथ न आया।

आखिर रजीदा होता हुआ बादशाह अलाउद्दीन खिलजी देहली की तरफ चल पड़ा।

संवत तेरह सौ आठ का जिक्र बनाया,
दृढ़ रहो धर्म पर सब ही बायां भाया।
गुरु हीरालाल प्रसादे चौथमल गाया,
दो हजार के साल चौमासा ठाया॥
चित्तौड़गढ़ पर करी लावनी त्यारी॥११॥

यह संवत् १३६० का वृत्तान्त है। असल में यह लावनी सतीत्वधर्म की रक्षा के लिए बनाई गई है। इसका सार यही है कि जैसे चित्तौड की सहस्रों राजपूत रमणियों ने शीलधर्म को अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् समझा उसी प्रकार प्रत्येक बहन को शीलधर्म सर्वोपरि समझना चाहिए। शील रह गया तो सभी कुछ रह गया। शील न रह सका तो जीवन रखने से भी क्या लाभ है ? मनुष्य जीवन की सच्ची सार्थकता तो धर्म में ही है।

मैने प्रारम्भ में ही बतलाया था कि मनुष्य की विशेषता उसके

धर्मपालन मे ही है। अतएव जिसका जीवन धर्म के सुनहरी रंग मे रगा हुआ नहीं है, जिसकी नस-नस मे रुधिर की तरह धर्म नहीं रमा है, जो धर्म की मर्यादाओं का अनुसरण नहीं करता और जिसने धर्म के लिए ही अपने जीवन को नहीं समझा, उसका मनुष्य होना निरर्थक है।

भाइयों। और बहिनों। इस सचाई को समझो और धर्म को स्मरण रखकर ही प्रत्येक व्यवहार और वर्त्ताव करो तो भविष्य कल्याणमय वन जायगा और वर्त्तमान में भी आनन्द ही आनन्द होगा।*

२४-१-४१
सिरीयारी

*सिरियारी (मारवाड) के रावले (राजकीय अन्त पुर) में प्रवचन।

भक्त सुदर्शन

★

—: स्तुति :—

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाण—
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा—
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

भगवान् ऋषभदेव को भक्ति के वशीभूत होकर देव प्रणाम करते हैं। देवों के मस्तक पर मुकुट होते हैं और उन मुकुटों मे मणि जड़ी रहती है। जब देव भगवान् के चरणों में नमस्कार करने के लिए मस्तक झुकाते हैं, तब उनके मुकुटों की मणियो पर भगवान् के

चरणों की-नखों की परछाई पड़ती है। वह परछाई इतनी उज्ज्वल और भास्वर होती है कि मणि भी चमकने लगती है। भगवान् के चरण पाप रूपी अंधकार के समूह को नष्ट करने वाले हैं। संसार रूपी सागर में गोता खाने वाले जीवों के आलम्बन हैं। जैसे किसी-किसी कुए में जंजीरें पड़ी होती हैं, जिससे अचानक कोई कुए में गिर जाय तो जंजीर के सहारे अपने प्राण बचा सके। इसी प्रकार संसार रूपी समुद्र में पड़े हुए प्राणियों को भगवान् के चरण ही शरण हैं।

ऐसे भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्हीं को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो! आत्मकल्याण के अनेक मार्ग बतलाये जाते हैं। कोई ज्ञान से मुक्ति होना मानते हैं, कोई कर्मयोग को आत्मोत्थान का उपाय कहते हैं, कोई क्रिया से मोक्ष कहते हैं और कोई भक्तिमार्ग को ही सर्व श्रेष्ठ बतलाते हैं। मगर विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आत्मा का कल्याण करने के लिए इनमें से कोई भी एक मार्ग अकेला पर्याप्त नहीं है। ज्ञान से आत्मतत्त्व को पहचाना जा सकता है, उसके समीचीन स्वरूप को समझा जा सकता है, परन्तु उसकी उपलब्धि के लिए क्रिया तो करनी ही होगी। क्रियाविहीन कोरे ज्ञान से यथेष्ट लाभ नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसी प्रकार सही दिशा में क्रिया करने के लिए ज्ञान भी अपेक्षित है। अज्ञान की क्रिया गलत मार्ग पकड़ लेती है तो कल्याण होना दूर रहा, उलटा अकल्याण हो जाता है।

इसी प्रकार ज्ञान और क्रिया के साथ भक्ति भी अपेक्षित। भक्ति से अपने आराध्य के प्रति प्रीति की उत्पत्ति होती है। वह प्रीति शनैः शनैः बढ़ती हुई आराध्य के साथ तद्रूपता उत्पन्न कर देती है। ... जन भक्ति के आवेश में अपने आपको परमात्ममय अन...

ऐसे भयावह समय पर भगवान महावीर नगर के बाहर पधारे वे एक मनोरम उद्यान मे ठहर गये। नगरनिवासियों को भगवान् के आगमन का वृत्तान्त विदित हुआ, परन्तु किसी की हिम्मत न पडी कि वे उनके दर्शनार्थ जाएँ।

उसी नगर में एक भक्त सेठ थे—सुदर्शन। सुदर्शन के अन्तःकरण में भगवान् महावीर स्वामी के प्रति अत्यन्त प्रगाढ़ भक्ति थी। भगवान् के पदार्पण का संवाद पाकर उनसे नहीं रहा गया। घर बैठे गंगा आई और उससे लाभ न उठा पाया तो दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। ऐसा विचार कर वे भगवान् के दर्शनार्थ जाने को तैयार हो गए। भक्ति के तीव्रतर उद्रेक में वे प्राणों के संकट को भूल गये। घर वालों ने बहुत समझाया, आग्रह किया, अनुरोध किया, अनुनय विनय की और जाने से रोका, मगर सुदर्शन सेठ ने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया। भक्ति के वशीभूत उनका हृदय भगवान् के दर्शन के लिए मचल रहा था। प्राणों का मोह उन्हें रोकने में समर्थ नहीं हो सका। वह घर से बाहर निकले और चल पडे। नगर के लोग कहने लगे—सेठ की मौत आई है! जान-बूझ कर मृत्यु का आलिंगन करने जा रहा है। भगवान् के पास पहुचने से पहले ही यम के पास पहुँच जायगा।

परन्तु सुदर्शन। देखो, शान्त और गम्भीर भाव से परम-प्रभु महावीर स्वामी में लौ लगाये चला जा रहा है। उसका हृदय प्रभु के चरणों मे है। उसे शरीर की चिन्ता नहीं, प्राणों की परवाह नहीं, मौत का डर नहीं।

आखिर भक्त सुदर्शन नगर के बाहरी भाग मे जा पहुँचा जुंन तो ताक में फिर ही रहा था सुदर्शन सेठ पर उसकी दृष्टि और अपना मुद्गर संभाल कर उसकी और लपका। नगर के

भीतर मकानों की छत पर चढ़कर लोग देख रहे थे। वे हाय-हाय करने लगे। उन्होंने समझा-सुदर्शन सेठ अब मौत के शिकार हुए। उनका कचूमर निकलने में अब देर नहीं है। दर्शकों के दिल दहलने लगे। आंखों के आगे अंधेरा छा गया।

अब अर्जुन माली अपना मुद्गर उबारे सुदर्शन के सन्निकट था। सुदर्शन ने उसे देखा। वह उसी जगह कायोत्सर्ग करके खड़ा हो गया। उसकी आत्मा भगवान् के ध्यान में तल्लीन हो गई। वह देहातीत दशा की अनुभूति करने लगे। जिस देह को खतरा था, वही उसने अपनी ओर से त्याग दिया। फिर डर काहे का था?

अर्जुन आया। उसने प्रहार करने के लिए मुद्गर ऊपर उठाया, मगर वह उठा ही रह गया। नीचे न आ सका
भक्ति ने अद्भुत चमत्कार उत्पन्न किया। यक्ष उस
निकल कर भाग गया और अर्जुन बेहोश होकर

इस घटना से समझा जा सकता है कि भक्त कैसा होना चाहिए और भक्ति कैसी होनी चाहिए ? समय आने पर भक्त कभी पीछे पैर नहीं रखता। वह भक्ति के वश होकर अपने आपको भूल जाता है और अपने आराध्य के प्रति एकनिष्ठ प्रति रखता है। एकनिष्ठ भक्ति के विषय मे ठीक ही कहा है.—

भक्ति भवताप मिटाती है,
भक्ति भव-सिंधु तिराती है।
भगवान् भक्त में भेद नहीं,
भक्ति भगवान् बनाती है॥

सच्ची भक्ति ससार के संताप का विनाश करती है और जन्म-मरण के दुःखों को दूर करके अनन्त अक्षय असीम अव्याबाध सुख को प्राप्त कराती है। भक्ति वास्तव मे भक्त को भगवान् बना देती है। गौतम स्वामी भगवान् महावीर के परमभक्त शिष्य थे तो उन्हें भी वह पद प्राप्त हुआ जो भगवान् को प्राप्त हुआ था। वे स्वय तीन लोक के पूज्य और अजर-अमर हो गये।

भक्ति ऐसी उच्च श्रेणी की वस्तु है। मगर हृदय मे सच्ची भक्ति जागृत होनी चाहिए। भक्ति को जागृत करने का सच्चा उपाय है-अविचल विश्वास, अखण्ड आस्था। सच्चा और पक्का श्रद्धान होने पर ही भक्ति भाव जागृत होता है। सुदृढ़ आस्था होने पर ससार-सागर से पार होने में क्या देर लगती है!

चन्दनबाला चम्पा नगरी के राजा दधिवाहन की लडकी थी। उस राजा की तीन रानियां थीं-एक धारिणी, दूसरी पद्मावती और री अभया। धारिणी रानी बडी जबर्दस्त थी। उसने शील की । के लिए अपने शरीर का त्याग कर दिया था। मरना कबूल

मातरं पितरं चैव, साक्षात्प्रत्यक्षदेवताम्।
मत्वा गृही निषेवेत, सदा सर्वप्रयत्नतः ॥

साधु हो जाने पर संसार के सभी संबंधों का त्याग हो
है, साधु होना एक प्रकार से नवीन जन्म ग्रहण करना है। अ
उस अवस्था की बात अलग है। परन्तु जब तक मनुष्य गृहस्था
में है और संसार के संबंधों का त्यागी नहीं बना है तब तक उ
कर्त्तव्य है कि वह अपने माता-पिता को साक्षात् देवता स्व
मानकर अपनी समस्त शक्ति के साथ उनकी सेवा करे। वैदिक
के शास्त्र मे भी कहा है:—

मातृदेवो भव,
पितृदेवो भव,
आचार्यदेवो भव।

अर्थात्-माता देवता है, पिता देवता है और शिक्षागुर
देवता है।

यह गृहस्थ का परम नैतिक कर्त्तव्य कि जिन्होंने उसके
जीवन के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया है, जिन्होंने भांति-भांति
के कष्ट सहन करके पालन-पोषण एवं संवर्धन किया है, उनके
उपकारों को भूलकर कृतघ्न न बने। हमारे यहां श्रावक के गुणों मे
कृतज्ञता को भी इसीलिए स्थान दिया गया है। जो कृतघ्न है, अपने
परमोपकारियों के प्रति भी जिसे सहानुभूति नहीं है जो उनके प्रति
न नहीं रखता, वह सच्चा श्रावक नहीं बन सकता।

सुदर्शन स्वयं धर्मनिष्ठ था और उनकी पत्नी भी धर्मपरायणा
। उनके परिवार के वातावरण में धर्म की प्रधानता थी। ऐसी

स्थिति में लड़कों को उपदेश की आवश्यकता ही नहीं थी। वे बिना उपदेश, माता-पिता के उच्च व्यवहार को देख देखकर स्वयं ही, विनीत, श्रद्धालु और धर्मात्मा बन गये थे

सन्तान को सभी सदाचारी देखना चाहते हैं। कोई चाहता है कि हमारी सन्तान दुराचारी बने? किसकी इच्छा नहीं होती कि हमारी सन्तति यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करे तथा हमारे कुल की कीर्त्ति बढ़ावे? परन्तु सब की इच्छा पूरी नहीं होती। इसका मुख्य कारण यही है कि वे स्वयं ऐसा व्यवहार नहीं करते कि जिसे देखकर और आदर्श मान कर सन्तान ऐसी बन सके। बात बात में झूठ बोलने वाले माता पिता की सन्तान हरिश्चन्द्र कैसे बन सकती है? सन्तान बहुत कुछ अपने माता पिता से ही सीखती है।

हां, तो सुदर्शन और उनकी पत्नी के सद्व्यवहार का प्रभाव उनकी सन्तान पर भी पड़ा और वह भी सदाचार परायण और धर्म प्रेमी बन गई।

सुदर्शन चम्पा नगरी का बड़ा सेठ था। उसने धन-सपत्ति को हीन और धर्म को महान् समझा था। क्योंकि धन-सम्पत्ति तो अधिक से अधिक इसी भव तक साथ देती है परन्तु धर्म परभव में भी साथ देता है। यहां लाखों और करोड़ों का धन है, राज्य हैं, साम्राज्य है और विपुल वैभव है, परन्तु शरीर त्यागने के पश्चात् क्या है? कुछ भी साथ नहीं जाता। कानी कोडी भी काम नहीं आती। सब का सब यहीं धरा रहता है। साथ जायगा तो धर्म या अधर्म ही।

भाइयों! जरा विचार करो कि उस समय
करने वाला कौन होगा? स्मरण रक्खो, धन-स
जाने का एक ही उपाय है और वह यह कि उ

उसे परोपकार मे लगा दो, खैरात कर दो ! सुदर्शन सेठ तत्त्व का ज्ञाता था। अतएव उसका जीवन सब प्रकार से उन्नत था। वह दानशील था, परोपकारी था और इसी मे। अपना कल्याण मानता था।

सुदर्शन सेठ और राजपुरोहित मे घनिष्ठ मैत्री थी। दोनों साथ-साथ वायुसेवन करने जाया करते थे। एक दिन पुरोहितजी नहीं आये तो सुदर्शन ही उधर जा पहुंचे। घर पर आवाज दिलवाई तो पता चला कि वह घर पर नहीं है। सुदर्शन उसी समय लौट आए। बाद मे दुकान पर दोनों का मुकाबिल हुआ। सेठजी ने पूछा-पुरोहितजी आज कहा चले गये थे ? पुरोहितजी बोले—एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ा था।

एक दिन दोनों बग्घी मे बैठकर पुरोहितजी के मकान के पास हो कर निकले। पुरोहितानी की नजर उन पर पड़ गई। सुदर्शन अतिशय सुन्दर थे। उनके सौन्दय को देखकर पुरोहितानी की नियत बिगड गई उसके चित्त मे विकार उत्पन्न हुआ। वह सुदर्शन से मिलने की इच्छा करने लगी।

इधर सेठ सुदर्शन पक्के शीलवान् थे। वे शीलधर्म पर इतने दृढ़ थे कि आकाश से साक्षात् अप्सरा ही क्यों न उतर आए, उन्हे शील से विचलित नहीं कर सकती थी।

भाइयों ! हम भी सुदर्शन जैन धर्मनिष्ठ पुरुषों की ही रीफ करते है। धर्म की दृष्टि से जो दिवालिया है, उनकी तारीफ नहीं करते।

एक बार पुरोहितजी को कहीं बाहरगांव जाना पडा । उनकी पत्नी ने पूछा-कितने दिन लगेंगे आपको ? पुरोहितजी बोले-दो दिन तो लग ही जाए गे। संभव है एक दिन ज्यादा भी हो जाय।

पुरोहितानी मन मे कहने लगी और अधिक दिन लग जाएं तो और भी अच्छा है। परन्तु प्रकट मे बोली–अच्छी बात है, जल्दी लौटना।

पुरोहितजी चले गये। उनके जाने के बाद पुरोहितानी न सोलहों शृंगार किये और पलंग पर जाकर सो गई। उसने अपनी दासी से कहा–तू सेठ सुदर्शन के पास जा। उनसे कहना पुरोहितजी बाहर जा रहे थे, किन्तु अचानक बीमार हो गए हैं और आपसे मिलने के लिए अत्यन्त उत्कंठित हैं।

दासी गई। उसने सेठजी से वही सब कह दिया जो पुरोहितानी ने कहलवाया था। बेचारे सेठ को क्या पता था कि क्या षड्यन्त्र रचा गया है? किसी को किसी के मन क्या पता है?

कुण जाणे पराया मन की;
मनकी तन की लगन की रे ॥टेक॥

सेठ सुदर्शन स्वयं निष्पाप थे। वह किसी के पाप की निराधार कल्पना नहीं कर सकते थे। अतएव वह पुरोहितजी से मिलने के लिए उसी समय तैयार होकर उनके घर पहुंचे। ज्यों ही वह मकान में दाखिल हुए, दासी ने भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया।

सेठ ने द्वार बन्द का कारण पूछा तो दासी ने कहा—कुत्ता बिल्ली के घुस जाने का भय है। दासी सेठ को उसी क
ले गई, जिसमें पुरोहितानी दगा करके सो रही थी। सेठ
घुसते ही वह उठ कर बैठ गई और नाना प्रकार के
और कुचेष्टाएं करने लगी। सुदर्शन सेठ समझ गये
कुछ और है मेरे साथ दगा हो गया है।

पुरोहितानी ने भरसक चेष्टा की। अपने सभी शस्त्र आजमा लिये, किन्तु सेठजी चुपचाप ही रहे—बोले नहीं। अन्त में वह कहने लगी—बात क्या है ? आप हँसकर बोलते क्यों नहीं है ?

सुदर्शन के सामने बड़ा संकट उपस्थित था। ऐसे अवसर पर किसी भी पुरुष का अपने शील पर दृढ़ रहना बहुत कठिन है। कहा जाता है कि दुःख रूप प्रतिकूल परीषह सहन करना उतना कठिन नहीं है, जितना प्रलोभन रूप अनुकूल परीषह को सहन कर लेना। सुदर्शन सेठ के सामने आज घोर प्रलोभन था। नवयुवती स्त्री, शृङ्गार किये, एकान्त में वासना पूर्त्ति के लिये अनुनय विनय कर रही है और सुदर्शन सुमेरु की तरह अपने धर्म पर अचल अटल है। सचमुच यह धर्मनिष्ठा अत्यन्त सराहनीय है।

सुदर्शन को छुटकारे का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। जब पुरोहितानी से पिण्ड छुडाना कठिन हो गया तो उन्हें सहसा एक विचार आया। उन्होंने उससे कहा—तुम्हारे हाव-भाव और तुम्हारा सौन्दर्य ऐसा है कि कोई पुरुष अपने ऊपर काबू नहीं रख सकता। किन्तु मेरे लिए वह सब वृथा है, क्योंकि—

पुरोहितानी—पूरी बात कह डालिए। संकोच न कीजिए।

सुदर्शन—आगे की बात स्वयं समझ लो। मैं तुम्हारे काम का नहीं हूँ। मेरे समक्ष तुम्हारा यह प्रयास व्यर्थ है।

पुरोहितानी ने समझ लिया कि सुदर्शन में पुरुषत्व नहीं है। [illegible] जड़ है।

यह समझना सुदर्शन के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन्हें [illegible] मिल गया। वह तत्काल जान बचा कर वहां से चल [illegible]। पुरोहितानी मन ही मन अतिशय लज्जित हुई और पश्चात्ताप करने लगी।

दो दिन के बाद पुरोहितजी आये। सेठजी से मिले। परन्तु सेठजी ने उनसे इस घटना का कोई जिक्र नहीं किया। सोचा—मेरा सदा के लिए पिण्ड छूट गया है, अब पुरोहितानी की बुराई न करना ही उचित है। इस घटना का उल्लेख करने से दोनों का जीवन कटुक बन जायगा।

कितनी उदारता। कैसी विचारशीलता। ऐसे होते हैं महावीर के धर्म के अनुयायी श्रावक।

उधर पुरोहितानी के चित्त में चिन्ता की आग सुलग रही थी। वह भय के कारण काप रही थी। वह समझती थी कि सुदर्शन ने मेरे पति के सामने इस घटना का जिक्र किया तो गजब हो जाएगा। मेरी जिन्दगी दूभर हो जायगी। किन्तु जब दो महीने वीत गये और कोई नवीन घटना सामने न आई तो उसे धैर्य बँधा। उसने सोच लिया कि सेठ ने वह बात दबा दी है।

कुछ दिनों बाद की बात है। उसी नगर के राजा की रानी अभया एक दिन अपनी दासियों के साथ उद्यान की ओर जा रही थी। पुरोहितानी भी साथ थी।

उधर सेठ सुदर्शन की पत्नी भी अपनी दासियों के साथ बाहर निकली थी। वह रथ में बैठी जा रही थी। उसके आसपास सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित तथा घोड़ों पर सवार उसके पांचों पुत्र चल रहे थे। उन्हें देखकर रानी को प्रसन्नता हुई। उसने पूछा—यह पाच पुत्र किसके हैं? और यह रथ में बैठी रमणी कौन है?

एक दासी, जो उनसे भलिभांति परीचित थी, बोली—महारानीजी, यह पाचों सुन्दर पुत्र सेठ सुदर्शन के हैं और यह पत्नी है। यह सब वायुसेवन के लिए जा रहे हैं।

दासी के द्वारा किया हुआ परिचय पुरोहितानी ने भी सुना। मगर पुरोहितानी उसे सुनकर चकित रह गई। उसके चेहरे पर कुछ ऐसे विशिष्ट भाव उदित हुए कि रानी अभया को कुछ रहस्य प्रतीत हुआ। तब रानी ने कहा-पुरोहितानीजी, क्या बात है ? तुम्हारे चेहरे पर यह सलवट कैसे पड़ गए ?

पुरोहितानी—कुछ भी तो नहीं।

रानी बड़ी चालाक थी। पुरोहितानी के मनोभाव उससे छिपे नहीं रहे। अतएव उसने कहा—पुरोहितानीजी मेरे आगे तुम कुछ नहीं छिपा सकोगी। मुझसे सच्ची-सच्ची बात कहनी ही पड़ेगी।

पुरोहितानी—मेरे मन में आया कि सेठानी दुराचारिणी है। यह पांचों लड़के सेठ के नहीं हैं। किसी अन्य पुरुष से उत्पन्न हुए हैं।

रानी—यह तुम्हें कैसे पता चला ?

पुरोहितानी—मैं भलीभांति जानती हूँ।

रानी—मगर कैसे ?

पुरोहितानी—सेठ की परीक्षा की जा चुकी है। उसने स्वयं कहा है।

रानी—तुम ना समझ हो ! मर्द की चालाकी में आ गई।

पुरोहितानी—अच्छा यही सही, तुम कभी बुलाकर देख लेना।

—अच्छी बात है। एक वर्ष के भीतर-भीतर सेठ को । न बुला लिया तो मेरा नाम अभया नहीं।

रानी वायुसेवन करके महल में पहुँची। वह सोचने लगी-महल में पहरे की व्यवस्था इतनी सख्त है कि पुरुष की तो बात दूर,

कुत्ता भी प्रवेश नहीं कर सकता। फिर उस सेठ को बुलाऊं तो कैसे बुलाऊं ?

इस विश्व के प्राणी-जगत् में मनुष्य सब से अधिक बुद्धि शाली हैं बुद्धि एक शस्त्र है। उसका सदुपयोग भी किया जा सकता है और दुरुपयोग भी। भाग्यवान् की बुद्धि अच्छे रास्ते पर जाती है और अभागे की बुरी राह पर। उसी बुद्धि से धर्म कार्य भी किया जा सकता है और उसी से पापों का सचय भी किया जा सकता है। धर्म करे तो स्वर्ग और मोक्ष पाता है, अधर्म करे तो नरक कुण्ड मे पड कर दुख भोगता है। मनुष्य के वही हाथ दूसरे की रक्षा करने के लिए, डूबते को उबारने के लिए, और दान देने के लिए होते हैं और उन्हीं से दूसरों को थप्पड लगाई जा सकती है। दूसरों को धक्का देकर गड्डे मे गिराया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के पास जो शक्ति है, उससे वह लाभ भी उठा सकता है और हानि भी उठा सकता है। यह उसकी सद्बुद्धि और दुर्बुद्धि पर अवलम्बित है।

भाइयो ! तुम्हें यह मुख प्रभु का भजन करने को मिला है। इससे भजन करोगे तो कल्याण होगा और यदि भजन न करके दूसरों को गाली दोगे तो जूते खाने पड़े गे। इसी प्रकार दो हाथ मिले हैं तो इनसे दान दो, दुखियों को दु'ख से बचाओ। ऐसा न करोगे और दूसरे को तलवार से मारोगे तो स्वय मरना पड़ेगा। कान भगवान की वाणी सुनने को मिले हैं और समग्र शरीर तपस्या करने, धर्म का आचरण करने और आत्मा का उत्थान करने के लिए है। यही इसका सदुपयोग है। मगर कितने ही लोग ऐसे है ज सवत्सरी का भी उपवास नह करते।

एक पुरुष कभी उपवास नहीं करता था। एक बार स के पूर्ववर्त्ती दिन, उसकी पत्नी ने उससे कहा—आज खूब तृ

चूरमा बाटी जीमो और कल उपवास कर लेना। स्त्री बडी धर्मात्मा थी। वह अपने पति को भी सच्चे धर्म मे प्रवृत्त करना चाहती थी। वास्तव में आदर्श पत्नी वही कही जा सकती है जो अपने पति की धर्मसहायिका होती है। केवल विषयभोग की पुतली बनना और काम वासना को चरितार्थ करना पत्नी का आदर्श नहीं है। शास्त्र में आदर्श पत्नी को 'धम्मसहाया' कहा है। पत्नी, पति की सहायता से और पति, पत्नी की सहायता से अपने धर्म का पालन करें, तभी गृहस्थाश्रम सफल समझा जा सकता है।

तो उसकी पत्नी ने सवत्सरी से एक दिन पहले उसे रोता हुआ चूरमा और हंसती हुई बाटियां जिमाई और मावा (खोया) भी खिलाया। दूसरे दिन आग्रह करके पडौसी के साथ उसे व्याख्यान सुनने भेजा। उसने कहा—इन्हें साथ लेते जाओ। आगे बिठलाना और उपवास कराना। पडौसी साथ ले गया और आगे बिठलाया।

मुनिराज धर्मोपदेश देने लगे। तपस्या का प्रसग चला। मुनिराज ने बीच में कहा—उपवास करने वाले खडे हो जाएं।

औरों की देखा देखी उसे भी खडा होना पडा। उपवास कर लिया। करीब तीन बजे स्थानक से लौट कर घर पहुँचा। थोड़ी देर विश्राम कर चुकने पर सध्या के समय उसकी स्त्री ने कहा—आज करने के लिए स्थानक में ही जाइये।

पुरुष ने कहा—न मैं जाऊंगा, न तुम्हें जाने दूंगा। मैं से मर जाऊंगा। मेरे लिए जल्दी ही पारणा तैयार करना।

यह कह कर वह बिस्तर बिछा कर सो गया। स्त्री प्रतिक्रमण करने चली गई। वह प्रतिक्रमण करके रात्रि के समय लौटी तो उसकी नींद खुल गई। वह बोला—अब कितनी रात बाकी है?

पत्नी ने कहा—अभी हिरणी आ रही है। एक नींद और ले लो।

लाचार वह फिर सो गया। मगर भूखे को गहरी और लम्बी नींद कहां ? पिछली रात में वह उठ बैठा। उस समय कोई लड़की ससुराल जा रही थी। उसके रोने की आवाज उसके कानों में पड़ी। तब वह कहने लगा—देख ले, एक उपवास करने वाला तो मर गया। अब मेरे मरने में भी ज्यादा देरी नहीं है ?

पत्नी-कैसे जाना कि उपवास करने वाला मरा है ?

पुरुष-नहीं तो क्या खाने वाले मरते हैं ?

पत्नी एक दिन उपवास करने वाले कभी नहीं मरते।

पुरुष-ठीक है, फिर तुझे ही पछताना पड़ेगा।

पत्नी-थोडी धीरज रक्खो। सवेरा हुआ ही चाहता है।

थोडी देर बाद फिर किसी के घर से बच्चे के रोने की आवाज आई। तब वह फिर बोला—देख लिया, कोई दूसरा उपवास करने वाला भी मर गया है।

ज्यों-त्यों बड़ी कठिनाई से सूर्योदय हुआ। पत्नी ने चटपट पारणा की सामग्री तैयार की और प्रेम से पति को जिमाया। तब कहीं उसे सन्तोष हुआ।

ऐसे लोगों को क्या कहना चाहिए ? रोज-रोज ठूंस-ठूंस कर खाने वाले जो लोग वर्ष में एक दिन भी उपवास नहीं कर सकते, उन्हें 'अन्नकीट' के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? उन्हें विचार करना चाहिए कि वे आखिर किस उद्देश्य से शरीर का पालन पोषण करते हैं। इस प्रकार खाने के लिए ही जीने वाले लोगों का जीवन सर्वथा निरर्थक है।

भाइयो। इस शरीर को कितना ही खिलाओ-पिलाओ, आखिर तो इसे छोड़ जाना होगा। अगर शरीर से कुछ धर्म-कार्य कर लोगे तो यह सार्थक हो जायगा। इस शरीर को पाकर तपस्या करोगे तो निहाल हो जाओगे।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को सब प्राणियों की अपेक्षा जो श्रेष्ठ शक्ति प्राप्त हुई है, उसे उसका सदुपयोग करना चाहिए, आत्म-कल्याण के पथ की गवेषणा करनी चाहिए और समझदारी के साथ उसी पथ पर अग्रसर होना चाहिए। किन्तु खेद है कि अधिकांश लोग ऐसा नहीं करते। अभया रानी भी ऐसा न करने वालों में ही थी। यही नहीं, उसने अपनी बुद्धि-शक्ति का दुरुपयोग किया। वह इसी विचार में तल्लीन रहने लगी कि सेठ सुदर्शन को किस प्रकार राजमहल मे लाया जाया और किस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा की पूर्त्ति की जाय ?

आप जानते हैं कि जो जैसा होता है, वैसे ही साथी भी खोज लेता है। अभया रानी की कुछ दासिया भी उसी के समान थीं और वही उसकी अन्तरग सखी थीं। एक दिन रानी ने अपनी इन्ही सखियों के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया। उनमें से एक बडी घाघ थी। उसने युक्ति बतलाते हुए कहा—पहले आप किसी कुम्भार से सेठ के आकार की सात मूर्त्तिया बनवाइए। फिर शेष काम मैं कर लूगी।

कुम्भार को मूर्तियां बनाने का आदेश दिया गया और वे बनकर आ गईं। दासी उन्हें म्याने में रखकर ड्योढ़ी में लाई तो सपाहियों ने म्याने को रोक दिया। उन्होंने कहा—पहले दिखलाना होगा कि म्याने मे कौन है ?

पहले ही निश्चय किया जा चुका था कि सिपाही अगर अड़ जाय तो मूर्ति को वहीं फोड़ दिया जाय। ऐसा करने पर वे फिर नहीं रोकेंगे। ऐसा ही किया गया। मूर्त्ति वहीं पत्थर पर पटक कर फोड़ दी गई।

सिपाही भयभीत हो गए। वे सोचने लगे--इस घटना को सुनकर महारानीजी कुपित हो जाएगी तो आजीविका से भी चले जाएगे। मगर भाग्य से ऐसा नहीं हुआ।

दूसरे दिन दूसरी मूर्ति म्याने में रख कर ले जाई गई। आज पहले दरवाजे वाले ने नहीं रोका, किन्तु दूसरे दरवाजे के पहरेदार ने उसे रोक दिया। दासियों ने यहा भी वही किया। मूर्त्ति को फोड़ दिया गया।

इसी प्रकार सात दरवाजों पर सात मूर्तिया फोड़ दी गई। कुल सात ही द्वार थे। वे समझ गये कि हमने व्यर्थ रोकटोक की और व्यर्थ मूर्त्ति तुड़वाई। उन्हें किसी अज्ञात अमगल का भी भय सताने लगा।

मगर रानी अब निश्चित थी। उसे विश्वास हो गया कि अब कोई रोक करने वाला नहीं है।

कार्त्तिक मास में एक वनमहोत्सव होता था। सेठ सुदर्शन ने उस दिन घर रह कर पौषध करने का निश्चय किया था। राजा और रानी तथा नगरनिवासी जन उद्यानविहार करने के लिए नगरी के बाहर उद्यान में गये। रानी ने पता लगा लिया था कि आज सुदर्शन सेठ अपने घर पर ही हैं। अतः उद्यान मे आकर वह अपना राजा से कह दिया-मेरी

राजा ने चिन्तित होकर पूछा—प्रिये ! अस्वस्थता का क्या कारण है ?

रानी—मैं प्रतिदिन देवता का पूजन किया करती थी, किंतु आज नहीं कर सकी। शायद इसी कारण मेरा जी खराब हो गया है। मैं अभी महल में जाना चाहती हूँ और वहा जाकर देवता की पूजा करूंगी। आज्ञा दीजिए, मैं लौट जाऊँ।

राजा ने उसी समय रानी को महल में भेज दिया। वहा आकर उसने सोलह शृङ्गार किये और दासियों से कहा—शीघ्र ही 'देवता' को ले आओ। आज पूजा करने का यह उपयुक्त अवसर है।

दासियां सेठ के पास पहुँचीं। उन्होंने कहा—आपको महारानीजी ने याद किया है।

सेठ सुदर्शन उस समय धर्मध्यान में लीन थे। अतएव उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। थोडी देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् दासियों ने उन्हें किसी प्रकार म्याने में बिठला दिया और महल मे ले आईं। दरवाजे वालों ने म्याने को रोका नहीं।

सेठ अब भी धर्मध्यान में लीन थे। रानी ने अपनी सारी कलाएं आजमा लीं। हर प्रकार के हाव भाव दिखलाए। बडे से बडे प्रलोभन दिये। अपनी ओर आकर्षित करने में कोई कसर न रखी। मगर सेठ सुदर्शन ध्यान से विचलित न हुए। उनके हृदय भी कौने में लेश मात्र भी विकार का प्रादुर्भाव नहीं हुआ।

इसे कहते हैं ध्यान ! जिसने जीवन में एक बार भी ऐसा ध्यान लगा लिया, समझ लो उसका बेडा पार हो गया। उसने परमात्मा से भेंट कर ली।

राजा ने चिन्तित होकर पूछा—प्रिये ! अस्वस्थता का क्या कारण है ?

रानी—मैं प्रतिदिन देवता का पूजन किया करती थी, किंतु आज नहीं कर सकी। शायद इसी कारण मेरा जी खराब हो गया है। मैं अभी महल में जाना चाहती हूँ और वहा जाकर देवता की पूजा करूंगी। आज्ञा दीजिए, मैं लौट जाऊँ।

राजा ने उसी समय रानी को महल में भेज दिया। वहा आकर उसने सोलह शृङ्गार किये और दासियों से कहा—शीघ्र ही 'देवता' को ले आओ। आज पूजा करने का यह उपयुक्त अवसर है।

दासियां सेठ के पास पहुँचीं। उन्होंने कहा—आपको महारानीजी ने याद किया है।

सेठ सुदर्शन उस समय धर्मध्यान में लीन थे। अतएव उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। थोडी देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् दासियों ने उन्हें किसी प्रकार म्याने में बिठला दिया और महल में ले आई। दरवाजे वालों ने म्याने को रोका नहीं।

सेठ अब भी धर्मध्यान में लीन थे। रानी ने अपनी सारी कलाएं आजमा लीं। हर प्रकार के हाव भाव दिखलाए। बडे से बडे प्रलोभन दिये। अपनी ओर आकर्षित करने में कोई कसर न रक्खी। मगर सेठ सुदर्शन ध्यान से विचलित न हुए। उनके हृदय के किसी भी कौने में लेश मात्र भी विकार का प्रादुर्भाव नहीं हुआ।

इसे कहते हैं ध्यान ! जिसने जीवन में एक बार भी ऐसा ध्यान लगा लिया, समझ लो उसका बेडा पार हो गया। उसने परमात्मा से भेंट कर ली।

अभिमानी प्राणी ! ध्यान लगाओ ऐसा ईश से ।।टेक।।

हे मन ! मालिक से ऐसा ध्यान लगा कि एक रग हो जाय । ध्यान आत्म शुद्धि का मुख्य साधन है । ध्यान से आत्मा परमात्म-भाव की अनुभूति करने मे समर्थ बनता है । कहा भी है : -

ध्यानमेवापवर्गस्य मुख्यमेक निबन्धनम् ।
तदेव दुरित व्रातगुरुकक्षहुताशनम् ॥

अर्थात्-ध्यान ही मोक्ष का मुख्य साधन है और ध्यान ही पापो के समूह रूपी कक्ष को भस्म करने के लिए आग के समान है।

अनादिविभ्रमोद्भूतं, रागादितिमिरं घनम् ।
स्फुटत्याशु जीवस्य, ध्यानार्क प्रविजृम्भितः ॥

जीव अनादिकाल से मोह और अज्ञान से आवृत्त हैं । इन आत्मिक विकारो के कारण आत्मा रूपी आकाश मे राग द्वेष आदि का घोर अधकार व्याप रहा है उसका विनाश तभी होता है, जब ध्यान रूपी सूय का प्रखर प्रकाश प्रकट होता है । ध्यान रूपी सूर्य के अभाव मे रागादिरूप तिमिर नही हट सकता ।

सुदर्शन सेठ परम प्रभु महावीर के परमभक्त श्रावक थे । उन्हे ध्यान की महिमा भलीभाति विदित थी । अतएव उनका ध्यान अखण्ड बना रहा । यह देखकर अभया रानी बोली–

न तानो ज्यादा कृपा करो अब, बड़ा तुम्हारा लिहाज होगा ।
अगरचेराजी करेंगे मुझको, सफल तुम्हारा, भी काज होगा ॥

रानी कहती है कि मेरी बात को मान लोगे तो तुम्हारी बहुत इज्जत बढ जाएगी। मैं तुम्हे चम्पा का राजा बना दूंगी और मैं तुम्हारी रानी बन कर रहूंगी। राज्य का सम्पूर्ण कोष तुम्हारे अधिकार मे होगा तुम्हारे लिए इसी पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आएगा।

इतने प्रलोभन भी सुदर्शन को धर्म से विचलित न कर सके तो रानी कुछ झुंझला उठी, खीझ उठी। उसने धमकी का आश्रय लिया। बोली-मेरी बात न मानोगे तो मैं नाराज हो जाऊँगी और तुम्हे शूली पर चढवा दूंगी। सारे ससार मे बदनामी उठाओगे और प्राण भी गँवाओगे। प्राण प्यारे हो और आनन्दपूर्वक राजसी सुख भोगना चाहते होओ तो मेरी बात मान लो।

धर्मधीर सुदर्शन अब भी मौन थे। वह सोच रहे थे-रानी प्राणो की धमकी दे रही है, पर उनमे मोह है किसको? आज रख लूंगा तो क्या सदा बने रहेगे? वह तो एक न एक दिन जाने ही वाले हैं। फिर प्राणो के मोह मे धर्म को कैसे त्याग सकता हूँ? धर्म चला गया तो जीवन रखकर भी क्या करना है? सुदर्शन की टेक थी—

जाने न दूं धरम को, चाहे प्राण तन से निकले।
निकले तो एक निकले, जिनवर का नाम निकले ॥

जिदगी भले आज ही समाप्त क्यो न हो जाय, धर्म का त्याग नही करूंगा। सूर्य पूर्व से पश्चिम मे उदित होने लगे तो भले होने लगे, सुदर्शन अपने शील मे धब्बा नही लगने देगा।

रानी के सभी शस्त्र समाप्त हो गये। सुदर्शन पर कोई असर नही पड़ा। तब निराश रानी के अन्तः करण मे प्रतिहिंसा

का भाव जागृत हुआ। उसने अपने कपडे फाड़ने आरम्भ किये और अंग-अंग पर नाखूनो का खरोंच बना ली। इसके बाद उसने चीख पुकार शुरू की।

रानी का चीखना-चिल्लाना सुनकर तत्काल अन्तःपुर के रक्षक दौडे आए और सेठ को पकड कर हिरासत मे ले लिया।

यथासमय राजा आए। रानी बनावटी व्यथा प्रकट करती हुई कहने लगी-प्राणनाथ! आज बडे पुण्योदय से मेरे शीलधर्म की रक्षा हुई। यह दुष्ट पापी अन्तःपुर मे घुस आया और मेरे साथ बलात्कार करने का प्रयत्न करने लगा। मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर इसका प्रतिरोध किया। इसने मेरे कपड़े फाड डाले और जगह-जगह नाखूनो की खरोंच लगा दी। यह बडा आततायी है। इसे शूली पर न चढाया गया तो घोर अत्याचार फैल जाएगा। सती-साध्वी महिलाओं को अपने शील की रक्षा करना कठिन हो जाएगा।

रानी के चिथडे बने वस्त्र और क्षत-विक्षत शरीर देखकर राजा के कोप की सीमा न रही। उसने उसी समय सुदर्शन को शूली पर चढ़ा देने की आज्ञा दे दी।

बिजली के वेग की तरह समस्त चम्पा नगरी मे यह समाचार फैल गया सुदर्शन सेठ नगरी के अग्रगण्य श्रीमत थे। अपनी धार्मिकता के लिए प्रख्यात थे। प्रजाजनो के विश्वासभाजन, आदरणीय और सम्माननीय थे घटित घटना की सत्यता पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। अतएव चम्पा के बडे-बड़े प्रतिष्ठित साहूकार मिलकर राजाके पास आये और बोलेसुदर्शन सेठ कोपूरी छानबीन कियेबिना शूली नही होनी चाहिए, महाराज, आप न्यायनिष्ठ हैं, हम सुदर्शन

की ओर से न्याय की माँग करते हैं। वह बडे ही धर्मप्रिय और शीलवान् पुरुष हैं। विश्वास नही होता कि उनसे यह अकार्य हो सके। अतएव आप अपने आदेश पर पुनर्विचार करें और सत्य को गवेषणा करें।

राजा-मुझे जो प्रमाण मिले है, पर्याप्त गभीर हैं। मेरे रनवास पर कुदृष्टि डालने वाले और अन्दर घुस आने का अतिसाहस करने वाले एक दुश्शील व्यक्ति का आप पक्ष ले रहे हैं, यही आश्चर्य की बात है। आज सुदर्शन को छोड दिया जायगा तो राज्य मे महिलाओ की इज्जत कैसे रहेगी ? अतएव आपकी माग उचित नही है।

एक साहूकार-हमारी माग सुदर्शन को छोड देने की नही है उनके ऊपर लगे हुए आरोप की जाच करने की है।

राजा-क्या आप लोग महारानी पर विश्वास नही कर सकते ? कोई साधारण महिला भी किसी पुरूष पर निष्कारण ऐसा आरोप नही लगा सकती, जिससे उसकी प्रतिष्ठा पर आच आवे ! सोचिए, महारानी का इसमे क्या लाभ है ? ऐसी स्थिति मे जो आदेश दिया जा चुका है, वह अन्तिम है।

दूसरा साहूकार-महाराज की जो इच्छा होगी वही होगा। परन्तु विचार कर लेने मे कुछ हानि नही है दीर्घ और सूक्ष्म विचार करके कार्य किया जाय तो बाद मे पश्चात्ताप करने का अवसर नही आता।

इतना कहने पर भी राजा अपने विचार पर दृढ रहा। उसी मय सुदर्शन की पत्नी ने सन्देशा भिजवाया मैं सेठजी के तोल का ना और जवाहरात दे सकती हूँ, किन्तु सेठजी को प्राणदण्ड न या जाय।

राजा ने उत्तर मे कहला दिया-राजकोष बहुत विशाल है। उसमे न सोने की कमी है न हीरो की।

सब की आशाओ पर पोता फिर गया। राजा ने शूली पर चढ़ा देने का अपना आदेश ज्यो का त्यो रक्खा। आखिर सुदर्शन को शूली पर चढाने के लिए जल्लाद ले जाने लगे। सुदशन अब भी मौन थे। अपने बचाव के लिए उन्होने एक शब्द भी न कहा।

उधर सेठानी ने जब जाना कि राजा का हुक्म नहीं बदल रहा है तो वह पचनमस्कार मत्र का सहारा लेकर बैठ गई। वह धर्म की जानने वाली थी और समझती थी कि एक दिन जीवन का अन्त आता ही है, किन्तु बदनामी के साथ पति की मृत्यु उसे अखर रही थी मगर पचनमस्कार मत्र के अतिरिक्त और कोई सहारा न था उसको विश्वास था कि रक्षा हो सकती है तो धर्म के प्रताप से ही हो सकती है। धम के विषय मे कहा जाता है।-

> तेरे लिये प्राण तजे जिन्होने,
> टूटा उन्ही का यमराजपाश।
> रक्षा सदा जो करता तिहारी,
> तू भी बचाता उनको दु खो से॥
> आराधते निर्मल चित्त मे जो,
> पाते वही जीवनलाभ पूरा।
> जो मूढधी हैं करते विनाश,
> होता उन्ही का जग में विनाश॥

धर्म के लिए प्राण त्याग करने वाले अमर हो

धर्म की रक्षा करते हैं धर्म उनकी सब दु:खो से रक्षा करता है। जो हृदय से धर्म की आराधना करते हैं उन्ही का जीवन सार्थक होता है। जो मूढ पुरुष धर्म का नाश करते है अर्थात् धर्म के विपरीत आचरण करते हैं, उन्ही का विनाश होता है।

सुदर्शन सेठ धर्म के लिए प्राण अर्पित कर रहे थे। वह चाहते तो सत्य घटना प्रकाश मे ला सकते थे और निर्दोष सिद्ध हो सकते थे। किन्तु ऐसा करने पर रानी अभया पर विपत्ति के बादल टूट पडते। स्वय विपत्ति से बचने के लिए दूसरे पर विपत्ति लाद देने की उनके अन्त:करण ने उन्हे आज्ञा नही दी। अतएव वह रानी के बदले स्वय बड़ी से बडो बदनामी और विपत्ति सहने को तैयार हो गए। इस प्रकार जो भक्त अपने धर्म की रक्षा करने को उद्यत हो रहा है, धर्म क्या उसको रक्षा नही करेगा ?

शूली के समीप पहुच कर शीलवान् सुदर्शन ने सागारी सथारा कर लिया। जब उन्हें शूली पर चढाया जाने लगा तो आसमान से देवता आये और उन्होने शूली का सिंहासन कर दिया। सुदर्शन के जयजयकार से गगन गूँज उठा। चारो ओर यह चामत्कारिक समाचार फैल गया।

यह समाचार सुनकर अभया रानी काप उठी। वह जीते जी मुँह दिखलाने योग्य नही रह गई थी। अपनी नजरो मे आप ही गिर गई थी। अतएव उसने आत्महत्या करके प्राण त्याग दिये। राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने सेठ सुदर्शन से अपने ।वच र के लिए क्षमायाचना की। इस प्रकार शीलधर्म की हुई।

सचमुच भक्ति की शक्ति अपार है । जो जन शुद्ध अन्त करण से भगवान् की भक्ति करते हैं, उनके लिए इसलोक मे और पर-लोक मे आनन्द ही आनन्द होता है । 卐

२८-१-४९
झामोला चौकी }

卐 व्याख्यान को सुनकर मुसलमान हवलदार और
हियों ने शिकार [illegible]

धर्मी और अधर्मी

स्तुति :—

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्‌भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिल. किल मधौ मधुरं विरौति ।
तच्चारुचाम्रकलिकानिकरैकहेतुः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएं ?

हे प्रभो ! मैं अल्पश्रुतवान् हूं, अधिक पढ़ा-लिखा नहीं हूं। फिर भी आपकी स्तुति करने को उद्यत हो गया हूं। मेरा यह साहस देखकर पढ़े-लिखे विद्वान् मेरी हसी करेंगे।

कोई कह सकता है कि जब तुममे योग्यता नही है और यह बात तुम्हे मालूम भी है तो फिर स्तुति करते ही क्यो हो, उस प्रश्न का उत्तर यह है कि मैं आप की स्तुति नही करता, किन्तु आपके प्रति मेरी जो भक्ति है वह बलात् मुझसे स्तुति करा रही है। बसन्त ऋतु मे जब आम के मौर आते हैं और कोकिला उन्हे चगल लेती है तो स्वाभाविक रूप से उसका कठ खुल जाता है और 'कुहू कुहू' को सुमधुर ध्वनि उसके कठ से फूट पडती। हे आदिनाथ ! इसी प्रकार आपकी भक्ति की आन्तरिक प्रेरणा से मेरी आत्मा आपके गुनगान के लिए उद्यत हो रही है।

ऐसे भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! अन्त करण मे भक्ति का निर्मल, धवल और वेगवान् निर्झर प्रवाहित न हो रहा हो तो भगवद् गुणगान रूपी कल-कल निनाद होना सभव नही है। अर्थात् भक्ति के अभाव मे स्तुति नही होती। भक्ति मे स्वभावत ऐसी शक्ति होती है जो गुण गान के लिए प्रेरित करती है।

लोक व्यवहार मे भी यही देखा जाता है। जिसे जिसके प्रति अनुराग होता है, उसके गुण उसके ध्यान मे आते हैं और वह उन गुणो का बखान भी करता है। इसके विपरीत, जिनके प्रति अनुराग नही है, उसके गुण प्रथम तो ध्यान मे ही नही आते और कदाचित् आते भी हैं तो उनका बखान नही किया जाता। इसी प्रकार जिसकी अन्तरात्मा मे परमात्मा के प्रति गाढी अनुरक्ति नही है, वह परमात्मा की स्तुति भी नही करता।

दूसरी बात यह है कि जो स्वय गुणवान् होगा,

के सद्गुणो को सद्गुण समझेगा और उनकी कद्र करेगा। कहा भी है :—

गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणो,
बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बलः।
मधोर्गुणं वेत्ति पिको न वायसः,
करी च सिंहस्थबलं न मूषकः ॥

अर्थात्–जो स्वय गुणवान् है वही दूसरे के गुण को जानता है, जिसमे गुण नही है वह दूसरे के गुणो को नही जान सकता। इसी प्रकार बलवान् पुरुष ही बल को समझता है, निर्बल नही। ऋतुराज बसन्त की विशेषता कोयल समझती है, कौवा नही समझ सकता। सिंह के बल-पराक्रम को गजराज जानता है, चूहा नही।

परमात्मा मे अनन्त गुण है, किन्तु उन्हे समझने के लिए मनुष्य को पात्र बनना चाहिए। जो गुणवान् नही है, जिसमे पात्रता नही आई है, वह परमात्मा के गुणमय स्वरूप को नही समझ सकेगा। दुर्गुणी के मुँह से भगवान् के गुण नही निकलते। न साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका के ही गुण निकल सकते है।

जब मनुष्य की दृष्टि दूषित और विकृत होती है तो उसे दूसरो के सद्गुण भी दुर्गुण दिखाई देते है। पीलिया रोग से ग्रस्त को सब वस्तुएँ पीली ही पीली नजर आती है। मगर यह न समझिए कि शरीर मे ही पीलिया की बीमारी होती है। यह बीमारी आत्मा मे भी होती है और आत्मा के पीलिया को ज्ञानीजन मिथ्यात्व कहते है। मिथ्यात्व के प्रभाव से जीव की रुचि विपरीत हो जाती है ोर वह दुर्गुणो को सद्गुण तथा सद्गुणो को दुर्गण समझता

हैं। सत्य मे असत्य का और असत्य मे सत्य का प्रतिभास होना मिथ्यात्व का खास लक्षण है। जब तक जीव की यह स्थिति रहती है, तब तक उसका उद्धार नही हो सकता। उद्धार के लिए ऐसे जीव की इच्छा ही नही होती है और कदाचित् होती भी है तो वह विपरीत प्रयत्न करता है, जिससे उत्थान के बदले अधः पतन के गड्ढे मे गिरता है।

यही तथ्य सामने रखकर ज्ञानी जनो ने बतलाया है कि आत्मा के कल्याण के लिए सर्वप्रथम दृष्टि को विशुद्ध बनाने की आवश्यकता है। जिसकी दृष्टि या रुचि शुद्ध हो चुकी है वही आत्मोत्थान के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

जिसका मिथ्यात्व नष्ट नही हुआ है और जिसकी अन्तरात्मा सम्यक्त्व गुण से विभूषित नही बनी है। उसे भगवान् की वाणी अच्छी नहीं लगती। वह प्रथम तो सुनता ही नही है और सुनता भी है तो समझता नही है। सम्यग्दृष्टि और उत्तम आत्मा ही भगवान् का नाम स्मरण करेगा और वही शास्त्रो का श्रवण करेगा।

बडे-बडे बुद्धिमान् पुरुष, जो हजार दो हजार प्रति मास वेतन पाते है और जिन्हे काम से दिन भर फुर्सत नही मिलती, प्राय प्रतिदिन भगवान् का भजन करते हैं। सवेरे जल्दी जाओ और उनसे मिलना चाहो तो यही उत्तर मिलेगा कि इस समय वे धर्मध्यान मे हैं– नित्य नियम कर रहे हैं। और जिन्हे दिन भर फुर्सत ही फुर्सत है, जो बैठे-बैठे मक्खियाँ मारा करते हैं या डाका डालने का विचार किया करते हैं, उनके मुख से ईश्वर का नाम निकला कठिन है।

सचमुच भाग्यवान् मनुष्य ही, भगवान् का भजन करता

है। अभागा अपने दूर्भाग्य से ग्रस्त है। उसका भवितव्य भी अच्छा नही है तो उसमे भगवन् भजन की भव्य भावना भी उदित नही होती। ऐसे मनुष्य के मुँह से गालिया तो निकल जाएँगी किन्तु ईश्वर का नाम नही निकलेगा। हॉ छोटे दरवाजे मे से निकलते समय खोपडी मे लग जायगी या बुखार चढ आएगा तो भले राम राम करेगा। ऐसे लोग भगवान् की महिमा को नही समझते। उन्होने भगवान् नाम का महत्त्व भी नही जान पाया है।

जिसकी अन्तरात्मा मे भगवान् के प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई है और जिन्होने भगवान् के नाम को अमृत समझ लिया है, जो भगवान् के दास और भक्त है उनकी रुचि स्वभावत: ऐसी सुन्दर बन जाती है कि वे कोई बुरा काम नहीं करते। ऐसे भगवद्भक्तजन सांसारिक कार्य करते हुए भी परमात्मा को विस्मरण नही करते हैं। उनका कोई भी कार्य परमात्मा की आज्ञा के प्रतिकूल नही होता।

भगवान् के भक्त का जीवन धार्मिक दृष्टि से भी ऊँचा हो जाता है और नैतिक दृष्टि से भी। वह किसी प्रकार के नये दुर्व्यसन के वशीभूत नही होता और पहले का कोई दुर्व्यसन हो तो उसका त्याग कर देता है।

भगवद्भक्त पुरुष तमाखू, गाँजा, भग या अफीम जैसे नशा उत्पन्न करने वाले एव मादक पदार्थों का कदापि सेवन नही करना चाहेगा। वह नशा पैदा करने वाले पदार्थ मनुष्य के तन को और मन को दोनो को हानि पहुचाते है। इनसे शरीर खोखला हो जाता है, शरीर मे जहर फैल जाता है, स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है, मानसिक दुर्वलता बढ जाती है और थोड़े ही दिनो मे जिन्दगी भारभूत बन जाती है।

जो तमाखू आदि का सेवन न करेगा, वह मदिरा का सेवन तो कर ही कैसे सकता है? मदिरा-सेवन तो घोर अतिघोर अनर्थो की जड है। वह न केवल मदिरा सेवन करने वाले व्यक्ति को ही, वरन् उसके सारे परिवार को ही मुसीबत मे डाल देता है। इस विषय मे अधिक कहने की आवश्यकता नही है। शराब के कुफल तो प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। शराबी के बाल बच्चे भूखो मरते हैं, उघाडे फिरते हैं और‌त को लाज रखने के लिए भी कपडे मयस्सर नही होते, परन्तु शराबी शराब पीये बिना नही रह सकता। वह अपनी गाढी कमाई को नशे मे नष्ट कर देता है। उसके समस्त सद्-गुण नष्ट हो जाते हैं। इज्जत और आबरू कौडी की नही रहती।

उसे देख-देख कर लोग घृणा करते हैं। शराब के नशे मे पागल होकर लोग गली-कूचो मे गिर जाते हैं, गदी मोरियो मे पडे-पडे अटसट बकते हैं। शराबियो की ऐसी दुर्दशा देखकर कौन भला आदमी शराब पीने की इच्छा करेगा? शराब सौभाग्य रूपी चन्द्रमा के लिए राहू के समान है। लक्ष्मी और सरस्वती को नष्ट करने वाली है।

भगवान् के भक्त ऐसी वस्तुओ का कदापि सेवन नही कर सकते क्योकि ये वस्तुएँ धर्म का नाश करने वाली हैं। भगवद्भक्त तो धर्म को ही सर्वोपरि समझता है और मानता है कि धर्म ही ससार मे एक मात्र कल्याणकारी तत्त्व है। वह धर्म के लिए सर्वस्व का त्याग करता है, परन्तु तीन लोक के राज्य के लिए भी धर्म का परित्याग नही कर सकता।

धर्म का आचरण करने वाला पुरुष इस लोक मे भी शान्ति एव सुख का अनुभव करता है और परलोक मे भी स्वर्ग या मोक्ष के सुख पाता है। अधर्मी, पापी और नास्तिक पर कोई सकट

आ जाता है तो वह अपने को निराधार अनुभव करता है। सान्त्वना पाने का उसे कोई उपाय नही सूझता। उसके सामने अनन्त अन्धकार और असीम निराशा होती है। कहीं से भी प्रकाश की किरण उसे दिखाई नही देती। किसी दुखी को अपनी निराधारता का भान होता है, तब उसका दुःख बेहद बढ़ जाता है। उसकी वेदना अतीव उग्र हो जाती है। अधर्मी और नास्तिक पुरुष को इसी कारण बहुत वेदना होती है।

मगर परमात्मा के भक्त आस्तिक पुरुष को निराशा का स्पर्श नही होता है। उसकी आशा असीम है। अपना भविष्य अतिशय उज्ज्वल प्रतीत होता है, अतएव आशा और आश्वासन का उज्ज्वल आलोक सदैव उसके समक्ष आलोकित और उद्भासित रहता है। उसका परम आधार परमात्मा है और सान्त्वना का सबल केन्द्र धर्म है। अतएव भयानक से भयानक संकट आने पर भी उसे निराशा के दुर्भाग्य का सामना नही करना पड़ता। इस कारण उसकी शारीरिक व्यथा, मनोवेदना का रूप धारण करके उसे सन्तप्त करने मे समर्थ नही होती। उस व्यथा को वह कृत कर्मों का अनिवार्य परिपाक मानकर धैर्य धारण करता है और अपने आपको आर्त्ति से बचाता है।

इस प्रकार धर्मी और अधर्मी को कदाचित् समान कष्ट उत्पन्न हो जाय तो धर्मी को अत्यल्प वेदना और अधर्मी को अत्यधिक वेदना होगी। एक उदाहरण लीजिए।

मान लीजिए, एक व्यक्ति के द्वारा किसी का कोई अनिष्ट हो गया। जिसका अनिष्ट हुआ है, वह परमात्मतत्त्व का ज्ञाता है और धर्मपरायण है। ऐसी स्थिति मे वह यही सोचेगा कि मेरा जो अनिष्ट हुआ है, वह मेरे ही कर्मोदय से हुआ है। कोई किसी का

धर्मी मरेंगे तो उन्हे यमदूतो की यातनाओ का भय नही लगेगा, पापी उस भय से काँप उठेंगे। धर्मी को किस बात का भय है ? वह इस लोक मे है तो सुख मे है और परलोक मे जाएगा तो भी सुख मे रहेगा। जिसने गेहू नही बोये हैं वही गर्मी की चिंता करेगा और जिसने बोये हैं और उन्हाले की फसल खेत मे खडी लहलहा रही है, उसे चिन्ता काहे की ?

इसी प्रकार जो दान नही देगा, शील का पालन नही करेगा, तपस्या नही करेगा और सद्‌भाव नहीं रक्खेगा, उसी को शोक और चिन्ता होगी और उसी को यमदूत परलोक मे कष्ट देगे। धर्मी को कही, किसीसे, कोई डर नही हैं। वह जानता है कि धर्म कभी दु खप्रद अवस्था मे नही गिरने देता। धर्म का स्वभाव सदा सुख देने का है।

धर्म का स्वरूप समझने के लिये, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विवेक प्राप्त करने के लिये, और साथ ही व्यावहारिक कार्यों मे भी कौशल प्राप्त करने के लिये विद्या की आवश्यकता है। विद्या की महत्ता और उपयोगिता प्रकट करने के लिये कहा गया हैं :-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्,
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्,
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः॥

अर्थात - विद्या ही मनुष्य की असली और सच्चा रूप है। विद्या गुप्त धन है, जिसे लाख उपाय करके भी चोर चुरा नही सकते, लुटेरे लूट नही सकते। विद्या के द्वारा ससार के सब तरह

के भोगोपभोग प्राप्त किये जा सकते है। विद्या से यश-कीर्ति और सुख की प्राप्ति होती है। विद्यावान पुरुष गुरुजनो मे भी गुरु बन जाता है। विदेश मे विद्या ही सहायक होती है। विद्या मनुष्य का सब से बडा देवता है। विद्या राजाओ के द्वारा भी सम्मान दिलवाती है। जिसमे विद्या नही है, वह मनुष्य होकर भी पशु के समान है।

यहा कहा गया है-विद्या बन्धुजनो विदेश गमने।' अर्थात परदेश मे विद्या ही मनुष्य के लिए मित्र का काम देती है। विद्वान् कही भो जाय,सर्वत्र उसका सत्कार होता है। उसकेलिए कही किसो बात की कमी नही रहती।

एक मनुष्य बडा ही दरिद्र था और ऊपर से ऋणी भी हो गया था। उसकी पत्नी प्रसव करने की तैयारी मे थी। किन्तु था वह पढा लिखा। एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहा-घर मे खाने का ढग नही है। बाहर निकलता हु तो साहूकार लोग पल्ला पकडते है ऐसी स्थिति मे मैं परदेश चला जाऊँ तो क्या उचित नही होगा। भाग्य आजमा कर देखना चाहिए। अनुकूल पासे पड गये तो सब का ऋण भी चुका दूगा और महीने के महीने तुम्हे भी खर्च-पात भेजता रहूगा। यहा रहा तो चिता ही चिता मे मर जाऊगा। देना तो सगे बाप का भो बुरा है। आखिर किसी भी उपाय से भार हल्का करना पडेगा।

पत्नी ने कुछ-कुछ चिन्तित भाव से कहा-मै यहाँ किस के सहारे रहूगी ! मुझे भी साथ लेते चलिये।

पति-प्रथम तो प्रसव का समय सन्निकट है। परदेश में उसकी व्यवस्था होना कठिन है। फिर कही निश्चित ठिकाना भी तो नही है। न जाने कहा कहाँ भटकना होगा।

पत्नि-तो फिर ठीक है। आप भले जाइये। मेरा जो होना होगा सो हो जायगा।

पति ने जैसे तैसे खाने पीने की सामग्री की व्यवस्था कर दी। फिर एक दिन शुभ मुहूर्त दिखलाकर चल दिया। मद्रास जैसे बडे नगर मे पहुँचा। बाजार मे फिरते-फिरते सोचता है जाऊँ तो किसकी दुकान पर जाऊँ ? किसी से मेरी जान पहचान नही है अनजान को कौन नौकरी देगा ? कौन विश्वास करेगा ?

इस प्रकार सोचता-विचारता वह जा रहा था कि एक दुकान पर कुछ नौकर बैठे बात कर रहे थे। यह भी उनके पास जाकर बैठ गया नौकरो मे से एक ने पूछा कहाँ से आ रहे हो भाई ?

सयोग की वात है कि आगन्तु ने अपना जो गाँव बतलाया, उसी गाव के वह लोग भी थे। दूर देश मे जब एक गाव के दो आदमी मिल जाते है, तो उनमे बडी प्रीति हो जाती है। आगन्तुक का भी उनके साथ गहरा प्रेम हो गया। अब वह प्रतिदिन उनके पास आकर बैठने लगा। करीब १५ दिन हो चुके थे। नवागत को कही आजीविका नही मिली थी।

एक दिन झाडू देने वाला नोकर बीमार हो गया और उसे कुछ अधिक दिनो तक विश्राम की आवश्यकता हुई। सेठ ने कहा-अस्थाई रूप से कोई आदमी मिल जाये तो ले आओ। तब नौकरो ने कहा--एक आदमी हमारी नजर मे हैं। बहुत सीधा है। पन्द्रह दिनो से हमारे पास आकर बैठता है।

सेठ ने उसे बुलवाया। पूछा—झाडू निकालने का काम करोगे ?

आगतुक-क्यो नही साहब ! जो आज्ञा होगी वही करूँगा

सेठ - क्या लोगे ?

आगन्तुक - जो आप देगे वही ले लूगा ।

सेठ - ठीक है, रोटी, कपडा और पाच रुपया महीना देगे।

आगन्तुक को विश्वास था कि मनुष्य यदि प्रामाणिकता और वफादारी के साथ काम करे तो उसकी कद्र अवश्य होती है। ईमानदार और परिश्रमी व्यक्ति जरूर तरक्की करता है। अतएव उसने यह वेतन स्वीकार कर लिया। उसने सोचा - एक बार पैर टिकने का जगह मिलनी चाहिये। फिर तो मैं जगह बना लूंगा।

वह आदमी मेहनत के साथ अपना काम करता। शाक भाजी लाने को पैसे दिये जाते तो बराबर शाक ले आता। मुनीम साहब जो काम बतलाते वह भी प्रेम के साथ कर लेता। और कोई कुछ काम करने को कहता तो वह भी करता। कभी काम मे आलस्य न करता, मुह न बिगाडता और चाव से काम करता। उसकी फुर्ती और ईमानदारी देखकर मुनीम और सेठ दोनो प्रसन्न थे। क्योकि -

मेहनत कर रे मानवी, मेहनत पावे मान।
मेहनत से सिद्धि मिले, मेहनत से भगवान ॥१॥

भाइयो! मेहनत सब को अपना बना लेती है! कहावत है - काम प्यारा होता है, चाम नही।

इस प्रकार काम करते करते दो महीने बीत गये। एक दिन मुनीमजी के हिसाब मे कुछ उलझन पड गई। बहुत प्रयत्न करने पर भी हिसाब नही बैठ रहा था। उधर रसोई जीमने का बुलावा आया तो उन्होने कहा - थोडी देर बाद आउगा। थोडी

फिर बुलावा आया तो कहा-अभी नही, थोडा और ठहर जाओ। हिसाब बैठा नही है।

यह देख झाडू निकालने वाले ने हिसाब देखा और कहा-मुनीम साहब, हिसाब मे यहा भूल मालूम होती है। इसी से ठीक नही बैठ रहा है। उसकी बात ठीक थी। मुनीम ने आश्चर्य के साथ पूछा तू पढा लिखा भी है?

मुनीम ने बही उसे दे दी और आप भोजन करने चले गये। इसने सारा हिसाब बिठला दिया। मुनीम वापिस आये तो हिसाब तैयार था। वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने सेठजी से कहा-यह आदमी पढा लिखा होशियार है। इसे दस रुपये मासिक देकर मै अपने यहा रखना चाहता हू।

सेठ ने कहा--एक रुपया रोज दो और जिसका काम अटके उसी का काम किया करे।

मुनीमजी ने यह बात स्वीकार ली। उसे तीस रुपया मासिक, भोजन और कपडा मिलने लगा। वह झाडू निकालता और हिसाब का काम भी करता था।

एक दिन सफाई करते समय कचरे मे उसे कुछ मोती मिले सेठ के यहा जवाहरात का धधा था वह उन मोतियो को लेकर सेठ के पास पहूचा। पूछा-यह मोती किस कीमत के होगे? सेठ ने हा पाच-पाच रुपये के होगे।

इसके बाद उसने उन मोतियो को साफ करके रेशमी डोरे मे पिरो दिये और सेठ से कीमत पूछी। इस बार सेठ ने उनकी कीमत सौ रुपया बतलाई। सेठ ने पूछा-यह मोती कहाँ से लाये? उसने कहा यह वही है जो कचरे मे मिले थे।

सेठ वहुत प्रसन्न हुआ। वह समझ गया आदमी बहुत होशियार है। सेठ की बाहर दिशावर मे अनेक दूकानें थी। वहा के मुनीम जब कभी छुट्टी पर जाते तो सेठ इसे उनकी जगह भेज देता। अब उसे एक हजार रुपया प्रतिवष वेतन मिलने लग गया।
ठीक ही है –

विद्या ही एक मनुष्य का जीवन में सार है।
विद्या बिना मनुष्य का जीवन धिक्कार है ॥१॥

सचमुच परदेश मे विद्या ही मनुष्य का मित्र है। विद्या ही स्त्रियो का सच्चा शृ गार है। विद्या के बिना मनुष्य को धर्म और कर्म नही सूझता है।

धीरे-२ वह आदमी सदर मुनीम बन गया। रकम इकट्ठी होने पर उसने निजी धधा भी किया। इस प्रकार उसके पास दो-तीन लाख की सम्पत्ति हो गई। तब वह सेठ से विदाई लेकर घर आया। सब का ऋण चुकाया और आनन्द से रहने लगा।

इस प्रकार परदेश मे विद्या मित्र है और घर मैं स्त्री मित्र है बुद्धिमती स्त्री हो तो वह मित्र के समान होती है। चिन्ता के प्रसग पर बुद्धिमती पत्नि पुरुष को धैर्य बँधाती है और मार्ग बत-लाती है। ऐसी पतिव्रता और बुद्धिशालिनी पत्नी पुण्यवान पुरुष को ही मिलती है। मूर्ख पत्नि पति को परेशान किया करती है पति पूर्व मे जाय तो पत्नि पश्चिम मे जाती है।

आदमी बीमार हो जाय तो दवा उसके लिये मित्र का काम देती है। परन्तु मरने पर धर्म मित्र होता है। मनुष्य मर कर जब परलोक की महा यात्रा करता है तो धर्म के अतिरिक्त और कोई सहायक नही होता। मरते समय मनुष्य को सुनाया जाता है –

अरिहन्त भगवान का, सिद्ध भगवान का, गुरु महाराज का और केवलि प्ररूपित दयामय धर्म का शरण है। जो मनुष्य धर्म का आचरण करके जायगा वह परलोक मे सुखी रहेगा। जिसने जीवो पर दया न की होगी, परोपकार नही किया होगा, समभाव न रक्खा होगा, भगवान का गुणगान एव स्तवन न किया होगा, वे दुखी होगे, उन्हे किसी का शरण नही मिलेगी। यहा वह लखपति है, करोडपति है, राजा महाराजा है, परन्तु शरीर त्याग कर जाने के बाद क्या है! कुछ भी तो नही!

भाइयो! पापी जीव मर जायगा, लाखो करोडो की सपत्ति छोड जायगा, परन्तु उस सम्पत्ति के उपार्जन मे जो पाप किये है उन्हे साथ अवश्य ले जायगा। उन पापो का फल भोगने के लिए वह नरककुण्ड मे गिरेगा। वहा सारी अकड निकल जायेगी। वहा की यातनाएँ बडी गजब की है। पहले तो वहा की भूमि ही इतनी दु खप्रद है कि मत पूछो बात! एक हजार बिच्छू एक साथ शरीर मे काट खाएँ तो जैसी वेदना होती है, वैसी ही वेदना नरक की भूमि का स्पर्श करने पर होती है। फिर सर्दी-गर्मी भी इतनी कि जिसकी कल्पना करना भी कठिन है।

जिस नरको मे गर्मी पडती है, वहाँ की गर्मी का अनुमान इसी से लगा लीजिये कि वहा से नारकी जीव को निकाल कर यहाँ डभूजे के भाड मे डाल दिया जाय तो उस गर्मी मे भी उसे चैन [illegible], वह शान्ति का अनुभव करेगा और उसे नीद आ जाएगी। तात्पर्य यह है कि भाड की गर्मी नरक की गर्मी के सामने नगण्य है।

सर्दी का भी ऐसा हाल है। पौष माघ के महीने मे, खुले [illegible]ाश मे, नारकी को वहा से लाकर बर्फ से चारो ओर से ढक [illegible]ाय तो उसे आराम मालूम होगा।

भूख प्यास की वेदना भी वहाँ असीम है। इतनी भूख लगती है कि अगर तीन लोक का समस्त धान्य खा जाय तो भी भूख न मिटे। मगर मिलता नही एक दाना भी नारकी प्यास से पीडित होकर बिलबिलाता है पर एक बूद भी पानी नही मिलता हाँ परमाधामी नामक देवता उकले हुए शीशे का रस जबरदस्ती मुह फाडकर पिला देते है और कहते है-ले अपनी प्यास बुझाले ! वेचारा नारकी तडफ कर रह जाता है।

नारकी जीव आपस में बैरभाव रखते हैं और एक दूसरे के साथ ऐसा वर्ताव करते है, जैसे एक कुत्ता नये आये कुत्ते के साथ करता है कुत्ता कुछ देर मे हिलमिल जाते है, परन्तु नारकी निरन्तर लडते हो रहते है। ऊपर से परमाधामी सदैव मारते पिटते और तरह २ से कष्ट देते रहते है।

सच तो यह है कि नरक के दुस्सह कष्ट इतने उग्र होते हैं कि शब्दो द्वारा व्यक्त नही किये जा सकते। यह दु ख लम्बे समय तक सहन करने पडते है। नरक मे कम से कम दस हजार वर्ष तक तो रहना ही पडता है। वहुत से वहुत तेतीस सागरोपम का आयु है। इतने लम्बे समय तक ऐसी भयानक यातनायें सहन करना कोई साधारण वात नही है।

भाइयो ! आज तुम स्वाधीन हो। नरक में जाने योग्य काम करने या न करने की स्वतन्त्रता तुम्हे प्राप्त है। कर्म उपार्जन करने के लिए कोई विवश नही करता। परन्तु जव वुरे कर्म उपार्जन कर लोगे तव नरक मे जाने को विवश हो जाओगे। फिर वहा जाने से कोई नही रोक सकता। इस कारण मैं चेतावनी दे रहा हूँ पहले से सावधान हो जाओ। जरा गहरा विचार करके तो देखो कि किस प्रयोजन के लिये पापाचार करते हो ? पाप का आचरण

न करोगे तो क्या जीवन-निर्वाह नही होगा ? पाप न करने वाले क्या भूखे रहते है ? पाप करके सम्पत्ति इकट्ठी करना चाहते हो तो अपनी इस दुष्कामना को त्याग दो। सम्पत्ति परलोक मे सुखी नही कर सकेगी। यही नही, सूक्ष्म विचार करोगे तो स्पष्ट झलकेगा कि वह इस लोक मे सुख नही दे सकती। सम्पत्ति चित्त में शांति का स्रोत नही बहाती, व्याकुलता की आग सुलगाती है ऐसी सपत्ति के लिये क्यो आत्मा का अहित करते हो ? क्यो अपने आपको सकटो के काटो मे घसीटते हो ? क्यो घोर अमगल करते हो ? समझो भाइयो ! मेरी बात पर कान दो, ध्यान दो और अपने कल्याण के मार्ग पर चलो। बडे बडे ज्ञानियो ने जो बात कही है, वही मै तुमसे कह रहा हू।

कितने ही लोग इकट्ठे होकर जानवरो का शिकार करते है। उनकी रक्षा करने वाला कोई नही है। भैरोजी और माताजी के सामने बकरे का गला काटते है तो कौन उसका रक्षक है ? इसी प्रकार हे पापी जीव ! तेरा वहाँ कौन रक्षक होगा ? कौन तेरी सहायता करेगा ? ऐ मेरे भाइयो कोई तुम्हारा रक्षक नही होगा !

शिकार करना अत्यन्त निर्दयतापूर्ण और अमानवीय कार्य है। मनुष्य भी प्राणी है और पशु पक्षी भी प्राणी है। मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है, इस कारण उसे सब प्राणियो का बडा भाई कहा जा सकता है पशु पक्षी, मनुष्य के छोटे भाई हैं। क्या यह कर्त्तव्य है कि वह अपने कमजोर छोटे भाई के गले पर छुरा चलावे ? नही बडे भाई का काम रक्षण करना है, भक्षण करना नही।

यह धरती प्रकृति की देन है। मनुष्य के बाप ने इसका पट्टा नही लिखा लिया है। इस पर मनुष्य को रहने का अधिकार है तो पशुओ और पक्षियो को भी रहने का अधिकार है। मनुष्य न जाने

कितनी सामग्री पर अधिकार कर रखता है, परन्तु जानवर तो छोटीसी झौंपडी भी बना कर नही रहते। खाने के भण्डार नही भरते। पेट मे जितना समाता है, उतना खाते हैं वह भी मिल गया तो खा लिया और न मिला तो भूखे ही रह जाते हैं। ऐसे दीन, हीन, गरीब, असमर्थ प्राणियो के प्राण लेना मनुष्य के लिए घोर से घोर कलक की बात है। यह उसके जगलीपन की निशानी है। शिकार करना मनुष्य मे रहे हुए राक्षसीपन का चिह्न है। इससे अधिक अमानुषिकता और क्या हो सकती है कि मनुष्य अपने ही समान चेष्टाएँ करने वाले, चलते फिरते, बोलते, देखते-सुनते प्राणी की जीवनलीला क्षण भर मे समाप्त कर देता है। और वह भी बिना किसी अपराध के केवल अपनी प्रसन्नता के लिए, मनोरजन के लिए अथवा जीभ की लोलुपता को चरितार्थ करने के लिए ! धिक्कार है ऐसे मनुष्य को ! शिकारी मानवजाति का कलक है।

शिकार के सम्बन्ध मे कहा है:

स्याह दिल हो जायगा, शिकार करना छोड़ दे।
कातिल बने मत अय दिला, शिकार करना छोड़ दे॥

क्यो जुल्म कर जालिम बने, पापो से घट को क्यो भरे ?
दिन चार का जीना तुझे, शिकार करना छोड़ दे॥

तेरा तो एक खेल है, और उनके जाते प्राण हैं।
मत खून का प्यासा बने, शिकार करना छोड़ दे॥

बेकसूरो को सतावे, खौफ तू लाता नही।
बदला फिर देना पडे, शिकार करना छोड़ दे॥

जैसो प्यारो जान तुझको, ऐसी गैरों की भी जान।
रहम ला दिल मे जरा, शिकार करना छोड दे ॥
जितने पशु के बाल है उतने जनम कातिल मरे।
'मनुस्मृति' को देख ले, शिकार करना छोड़ दे ॥
हैवान आपस मे लडाना, निशाना लगाना जान का।
'हदीस' मे लिखा मना, शिकार करना छोड़ दे ॥
गर्भवती हिरनी को मारी, भूप श्रेणिक तीर से।
वय नर्क के अन्दर गया, शिकार करना छोड़ दे ॥
खून से होता नरक, श्रीवीर का फरमान है।
'चोथमल' कहे समझ लो, शिकार करना छोड दे ॥

भाइयो! शिकार करना, धर्म के नाम पर बली करना, क्रोध, लोभ, अथवा भय से प्राणी के प्राण लेना तुम्हारे हक में अच्छा नही है। यहा से पाप करके जाओगे तो मा बाप, भाई कुटुम्ब, परिवार आदि कोई भीआडा नहीं आएगा धन की थैलिया भी काम नही आएँगी। इसलिए पाप से बचो किसी भी प्राणी को कष्ट मत पहुँचाओ। परोपकार करो। शील पालो। दीन दुखी को देखकर दिल मे दया लाओ। उसके प्रति सहानुभूति दिखलाओ। उनके दुख को दूर करो।

लोभ लालच मत करो। अभिमान से मत अकडो। निर्दयता का कोई काम मत करो। यमदूतो की याद करो। यमदूत मारेंगे, काटेंगे औ शरीर के टुकडे-टुकडे करेंगे और वैतरणी नदी मे ेंगे और कहेंगे कि तुमने जानवरो को मार-मार कर खाया

है। लो अब उस करतून का फल चखो। शीशा उबाल उबाल कर पिलाएंगे और ताना मारेंगे कि लो, मदिरा पीने का स्वाद लो! शराब बहुत प्यारी लगती थी। अब उसके बदले शीशे का रस पीओ।

कोई चोरी करता है और पुलिस पकड कर ले जाती है और पीटती है। चोर कदाचित् कहे कि मुझे क्यो मारते हो? तो पुलिस के सिपाही यही कहेगे कि तू ने चोरी क्यो की? चोरी न करता तो क्यो मार खाता? यह उत्तर सुनकर चोर को चुप हो रहना पड़ेगा इसी प्रकार यमदूतो की मार खाकर पापी नार की जीवो को चुप्पी साधनी पडती है।

भाइयो! नरक लोक मे एक शाल्मली वृक्ष होता है। उसके पत्ते तलवार की धार से भी तीखे होते है। पापी जीव धूप और गर्मी से सतप्त होकर ठडी छाया मे जाने को कहता है, तो यमदूत उसे उस वृक्ष के नीचे ले जाते हैं। नीचे खडा कर देते है और वृक्ष को हिला देते है। शाल्मली वृक्ष के पत्ते उसके शरीर पर गिरते हैं और शरीर टुकडे टुकडे हो जाता है। यमदूत उसकी हँसी करते हैं, कहते हैं—क्यो कैसी बढिया ठडक है। अच्छा लग रहा है? अरे पापी! पाप करके आया है और आराम चाहता है।

ऐसे गाढे समय मे कोई सहानुभूति भी नहीं दिखलाता। कोई आडा नही आता। भला, धर्म के सिवाय और कौन आडा आने वाला है? भाइयो! अपनी भलाई चाहते हो तो पाप से बचो। किसी प्राणी को कष्ट न पहुचाओ। असत्य भाषण न करो चोरी न करो। पराई स्त्री पर बुरी नजर मत डालो-उसे माता और बहिन के समान समझो।

जैसी प्यारी जान तुझको, ऐसी गैरो की भी जान।
रहम ला दिल मे जरा, शिकार करना छोड दे ।।
जितने पशु के बाल है उतने जनम कातिल मरे।
'मनुस्मृति' को देख ले, शिकार करना छोड़ दे ।।
हैवान आपस मे लडाना, निशाना लगाना जान का।
'हदीस' मे लिखा मना, शिकार करना छोड़ दे ।।
गर्भवती हिरनी को मारी, भूप श्रेणिक तीर से।
वय नर्क के अन्दर गया, शिकार करना छोड दे ।।
खून से होता नरक, श्रीवीर का फरमान है।
'चोथमल' कहे समझ लो, शिकार करना छोड दे ।।

भाइयो! शिकार करना, धर्म के नाम पर बली करना, क्रोध, लोभ, अथवा भय से प्राणी के प्राण लेना तुम्हारे हक मे अच्छा नही है। यहा से पाप करके जाओगे तो मा बाप, भाई कुटुम्ब, परिवार आदि कोई भी आडा नहीं आएगा धन की थैलिया भी काम नही आएँगी। इसलिए पाप से बचो किसी भी प्राणी को कष्ट मत पहुँचाओ। परोपकार करो। शील पालो। दीन दुखी को देखकर दिल मे दया लाओ। उसके प्रति सहानुभूति दिखलाओ। उनके दुख को दूर करो।

लोभ लालच मत करो। अभिमान से मत अकडो। निर्दयता का कोई काम मत करो। यमदूतो की याद करो। यमदूत मारेंगे, काटेंगे और शरीर के टुकड़े-टुकड़े करेंगे और वैतरणी नदी मे डालेंगे और कहेंगे कि तुमने जानवरो को मार-मार कर खाया

है। लो अब उस करतून का फल चखो। शीशा उबाल उबाल कर पिलाएंगे और ताना मारेंगे कि लो, मदिरा पीने का स्वाद लो! शराब बहुत प्यारी लगती थी। अब उसके बदले शीशे का रस पीओ।

कोई चोरी करता है और पुलिस पकड कर ले जाती है और पीटती है। चोर कदाचित् कहे कि मुझे क्यो मारते हो? तो पुलिस के सिपाही यही कहेगे कि तू ने चोरी क्यो की? चोरी न करता तो क्यो मार खाता? यह उत्तर सुनकर चोर को चुप ही रहना पडेगा। इसी प्रकार यमदूतो की मार खाकर पापी नारकी जीवो को चुप्पी साधनी पडती है।

भाइयो! नरक लोक मे एक शाल्मली वृक्ष होता है। उसके पत्ते तलवार की धार से भी तीखे होते हे। पापी जीव धूप और गर्मी से सतप्त होकर ठडी छाया मे जाने को कहता है तो यमदूत उसे उस वृक्ष के नीचे ले जाते हैं। नीचे खडा कर देते ह और वृक्ष को हिला देते हे। शाल्मली वृक्ष के पत्ते उसके शरीर पर गिरते हैं और शरीर टुकडे टुकडे हो जाता है। यमदूत उसकी हँसी करते हैं, कहते हैं—क्यो कैसी वढिया ठडक है। अच्छा लग रहा है? अरे पापी! पाप करके आया है और आराम चाहता है।

ऐसे गाढे समय में कोई सहानुभूति भी नहीं दिखलाता। कोई आडा नही आता। भला, धर्म के सिवाय और कौन आडा आने वाला है? भाइयो! अपनी भलाई चाहते हो तो पाप से बचो। किसी प्राणी को कष्ट न पहुचाओ। असत्य भाषण न करो चोरी न करो। पराई स्त्री पर बुरी नजर मत डालो-उसे और बहिन के समान समझो।

भाइयो ! एक भी शुद्ध सामायिक कर लोगे तो नरक मे नही जाओगे और सद्गुरु का एक भी वचन ग्रहण कर लोगे तो बेडा पार हो जायगा । नीच गति मे जाने से बच जाओगे । एक नवकार मन्त्र जप लोगे तो भी सुखी हो जाओगे जो कुछ भी धर्म क्रिया कर लोगे, वही साथ जायगी । वह सब तुम्हारी आत्मा के कल्याण के लिए ही होगी । रुपयो पैसो मे तो दूसरो का बटवारा हो जायगा, किन्तु धर्म का बँटवारा नही होगा । एक भी बात सद्गुरु की मान लेने से भी किस प्रकार लाभ हो सकता है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए :-

एक किसान ने उपदेश सुनकर मैथी की भाजी का त्याग कर दिया । घर आया तो रात्रि मे भोजन करने बैठा । सयोग से उस दिन उसके घर मेथी की भाजी ही उबाली गई थी । पत्नी भाजी परोसने लगी तो किसान ने लेने से इकार कर दिया पत्नी ने हठ पकड ली । कहने लगी-भाजी बन चुकी है इसे क्या फेंक दू ? नही खाना है तो अब से नही पकाऊगी । आज तो खाना ही पड़ेगा ।

आप लोगो को अनुभव होगा कि कभी-कभी बहुत मामूली-सी बात मे झगडा हो जाता है । बात साधारण होती है या होती ही नही है, फिर भी पति पत्नी मे चखचख हो जाती है । दोनो मे से एक भी अगर गभीर और शान्त प्रकृति का हुआ तब मामला ठडा पड जाता है और यदि दोनो का मिजाज गर्म हुआ तो भगवान् ही मालिक है । कभी-कभी तो इस प्रकार के सघर्ष के फल स्वरूप जीवन व्यापी कटुता उत्पन्न हो जाती है ।

किसान भाजी खाना नही चाहता था इसमे उसकी पत्नी का क्या बिगडता था ? परन्तु उसने यह नही सोचा और झगडना

आरम्भ कर दिया बात बढ गई और किसान क्रोध मे आकर भोजन किये बिना ही घर से निकल कर चल दिया। वह घर से बाहर ही नही गया, गांव से बाहर भी चला गया और रेत के टीले का रेत हटाकर उसमे बैठ गया।

इधर चार चोर सोने की गाठे लेकर आये। पास मे भैरोजी का स्थान था। वे वही ठहर गये। उन्होने सोचा—आज गहरा माल हाथ लगा है, अत भैरोजी को नारियल चढाना चाहिये। उन्होने नारियल निकाला, और फोडना चाहा, किन्तु कोई पत्थर नही मिला। इधर उधर नजर फैलाई तो उसी किसान का सिर दिखलाई दिया। चोरो ने उसे पत्थर समझा और वही नारियल फोड लेने का विचार किया। किसान उस समय नीद मे मस्त था। चोर ने ज्यो ही किसान की खोपडी पर नारियल फोडा, वह जाग उठा और हडबडा कर बोला — खाऊ खाऊ' !

चोर भयभीत हो गया। उसने सोचा — भूत है। वह प्राणो को हथेली पर लेकर भागा और उसके भूत-भूत' चिल्लाने के कारण शेष तीन चोर भी भाग खडे हुए। किसान उस जगह आया तो उसे सोने को चार गाँठें देखकर अपार प्रसन्नता हुई। वह एक गाठ लेकर घर आया। स्त्री को आवाज दी।

स्त्री ने कहा— भाजी खाओ तो किवाड खोलूँ !
किसान बोला जल्दी खोल, तुझे खुश कर दूगा।
किसान—बोल मत ऐसी तीन और पडी है।
किसान उल्टे पाव गया और शेष तीन गाँठे ले

भाइयो ! किसान ने एक भाजी न खाने की प्रतिज्ञा की तो वह निहाल हो गया। तुम भी धर्म करोगे तो निहाल हो जाओगे यह लोक भी सुधर जायगा और परलोक भी सुधर जायगा। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द हो जायगा। *

३०-१-४६ }
आसीन }

* यह व्याख्यान सुनकर अनेक अजैन ग्रामीण श्रोताओं ने
।, चोरी, शराब आदि का त्याग किया।

जहा लाहो तहा लोहो

स्तुति :—

नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥

भगवान ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएं ?

आचार्य महाराज ने इस पद्य में बड़ा ही सुन्दर भाव प्रदर्शित किया है। वे कहते हैं–हे जगत् के भूषण ! हे नाथ! जो भव्य पुरुष आपका गुणगान करता है, आपकी उपासना करता है, अपने निर्मल हृदय मे आपको स्थापित करता है, आपकी भक्ति

मे तल्लीन बन जाता है और आपके द्वारा प्रदर्शित मुक्तिपथ पर गमन करता है, वह आपके समान ही बन जाता है। इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है। आखिर ऐसे स्वामी का आश्रय लेने से क्या लाभ है जो अपने आश्रितजन का वैभव से अपने समान नही बना लेता ?

भाइयो ! धनवान पुरुष की सगति करने वाला यदि कगाल ही रह गया तो उसने वास्तव मे धनवान को सगति ही नही की है या वह धनवान वास्तव मे धनवान ही नही है। सेठ अपने वफादार मुनीम को सेठ बना देता है। मुनीमी करते करते कुछ दिनो मे वह भी सम्पत्तिशाली बन जाता है। ऐसा होने मे ही सेठ का गौरव है और मुनीम की वफादारी की सार्थकता है। जीवनपर्यन्त सम्पूर्ण निष्ठा के साथ सेठ की सेवा की और मुनीम ज्यो का त्यो बना रहा तो इसमे सेठ का कोई गौरव नही है।

पारस के ससर्ग से लोहा भी सोना बन जाता है, किन्तु रांगा सोना नही बनता अब विचारणीय बात यह है कि इसमे दोष किसका है। रांगा के सोना न बनने का उत्तरदायित्व पारस का है या रांगे का ?

दर्शनशास्त्र का नियम है कि इस जगत् मे कभी कोई अभूतपूर्व पदार्थ उत्पन्न नही हो सकता। यही नही, बल्कि किसी पदार्थ मे सर्वथा नूतन कोई शक्ति भी उत्पन्न नही हो सकती। पदार्थों का केवल रूपान्तर होता है। आज कोई वस्तु एक रूप मे है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि सामग्री मिलने पर वह दूसरा रूप ग्रहण कर लेती है। इसे जैनदर्शन मे पर्यायो का पलटना कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ मे क्षण-क्षण मे यह पर्याय परिवर्तन होता रहता है। जगत्

मे जो परिवर्तनशीलता दिखलाई देती है जो रूपान्तर होते नजर आते है उन सब का कारण यही है। पदार्थ मे स्वत परिवर्तित होने का धर्म है। ऐसा न होता तो लाख कारण मिलने पर भी उसमे परिवर्तन नही हो सकता था।

दो प्रकार के कारण है-उपादान कारण और निमित्त कारण। जो कारण आगे चलकर स्वय कार्य का रूप ग्रहण कर लेता है वह उपादान कारण कहलाता है। जैसे-कुभार मिट्टी से घडा बनाता है, जुलाहा सूत से कपडा तैयार करता है, रसोईया आटे से रोटी बनाता हैं और लुहार लोहे से अनेक प्रकार के औजार बनाता है। इन सब कार्यों को करने मे मिट्टी, सूत, आटा और लोहा आदि अपेक्षित है। क्योकि मिट्टी ही घडे का रूप धारण कर लेती है, सूत कपड़े के रूप मे आ जाता है, आटा रोटी की शक्ल ग्रहण कर लेता है और लोहा औजारो के रूप में परिणत हो जाता है। यह सब उपादान कारण है।

उपादान कारण के अतिरिक्त शेष जो भी कारण हैं, सब निमित्त कारण कहलाते है। निमित्त कारण कार्य की उत्पत्ति मे अपेक्षित तो अवश्य है, मगर वह उपादान कारण की भाति स्वय कार्य नही बन जाता, वरन् कार्य से जुदा का जुदा ही रहता है।

प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति मे दोनो ही प्रकार के कारणो की आवश्यकता होती है। एक के भी अभाव मे कार्य नही हो सकता।

दूसरे शब्दो मे इसका तात्पर्य यह है कि उपादान कारण मे कार्य रूप मे परिवर्तित होने का सामर्थ्य होता है और निमित्त कारण उसे उस रूप में परिवर्तित होने मे सहायक हो जाते हैं

मे यह शक्ति न होती तो कार्य-कारणभाव की नियत व्यवस्था, जो हम सर्वत्र देख रहे है, विलुप्त हो जाती। फिर तो किसी भी वस्तु से कोई भी पदार्थ बनने लग जाता। कीचड मे से मक्खन निकाला जा सकता था, रेत से तेल निकालना सभव हो सकता था सूत से घडा बन जाता और मिट्टी से वस्त्र बनने लगता। मगर ऐसा होना त्रिकाल मे सँभव नही है। एक ही उपादान कारण से सभी कार्य नही हो सकते।

इसीप्रकार निमित्त कारण के अभाव मे भी कोई कार्य नही होता। दूध मे घी विद्यमान है। उसे निकालने के लिये सहायक कारण तो चाहिये ही। अपने आप दूध, घी नही निकाल देता। अपने आप मिट्टी से घडा नही बन जाता। कुम्हार मिट्टी को गीला करता है, चाक पर चढाता है, चाक को घुमाता है, दूसरो-दूसरी चेष्टाएँ करता है, तब कही घडा बनता है।

मतलब यह है कि इस जगत मे जो भी कार्य उत्पन्न होते हैं, उनके लिये उक्त दोनो कारण अनिवार्य रूप से आवश्यक है। किसी भी एक के अभाव मे कार्य नही हो सकता। यह एक ऐसा सिद्धात है, जिसके सम्बध मे मतभेद को कोई अवकाश नही है। चाहे वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय और चाहे किसी भी दर्शनशास्त्र की दृष्टि से, कार्यकारण का यह नियम अकाट्य ही सिद्ध होता है

हा यह हो सकता है कि कोई किसी कार्य का उपादान कारण गलत स्वीकार कर ले, किन्तु उपादान कारण उसे भी स्वीकार करना पडता है। इस बात को स्पष्ट रूप से समझने के लिये दो उदाहरण लीजिये। भारत का चार्वाक दर्शन आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नही करता, फिर भी प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाली चेतना को वह कैसे अस्वीकार कर सकता है? चेतना को स्वीकार

किये बिना उसके लिए भी कोई चारा नही है। अतएव जब यह प्रश्न चार्वाक के सामने उपस्थित हुआ कि अगर आत्मा नही है तो चेतना किसका धर्म है ? किस पदार्थ का गुण है ? अथवा चेतना कहा से आई ? और यह क्या चीज है ?

वास्तव मे चार्वाक के पास इस प्रश्न का कोई सही उत्तर नही है। उत्तर तो आत्मा का अस्तित्व मानने पर ही ठीक बैठ सकता है,परन्तु उसने आत्मा को स्वीकार नही किया। तब फिर विवश होकर उसे यही कहना पडा कि भूतो के सयोग से चेतना का आविर्भाव हो जाता है। अब यहाँ विचार होता है कि पृथ्वी,पानी, अग्नि और वायु, यह चार भूत हैं। आकाश को मिलाकर कोई-कोई पाँच भूत भी स्वीकार करते हैं। लेकिन भूत चार हो या पाच, हैं वे जड ही। उनमे चेतना नही प्रतीत होती। ऐसी स्थिति में उनके सयोग से चेतना किस प्रकार उत्पन्न हो सकती है ?

दूसरा उदाहरण वेदान्तदर्शन का लीजिए। वेदान्तदर्शन मे एक मात्र चेतन की सत्ता अगीकार की जाती है। चेतन से भिन्न जड पदार्थों का कोई अस्तित्व नही है। यद्यपि वह माया को स्वीकार करते हैं,परन्तु उसके सबध मे वे निश्चित बात कहने मे असमर्थ हैं। वेदान्ती माया को सत मानें तो उनका अद्वैतवाद-जो उनके दर्शन का मूल आधार हैं, खत्म हो जाता है। अगर असत् शून्यरूप-मानें तो आशय यह होता है कि माया कुछ है ही नही। तब प्रश्न उपस्थित होता है कि जगत में यह जो विविधता दृष्टिगोचर होती है,वास्तव मे क्या है? यह असख्य और अनन्त पदार्थ क्या हैं ? किस आधार पर इन्हे असत लानें और किस प्रकार एक मात्र चेतन का ही अस्तित्व स्वीकार कर जड़ की सत्ता से इनकार कर दे।

तब वेदान्तदर्शन कहता है—यह सब जड पदार्थ चेतन से ही उत्पन्न हुए है, अतएव चेतन से भिन्न नही है।

इसप्रकार चार्वाकदर्शन चेतन को जड का उपादान मानता है। परन्तु तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो दोनो की मान्यता भ्रम पूर्ण है। क्योकि जड और चेतन की शक्तिया और उनके स्वभाव सर्वथा भिन्न हैं, अतएव किसी भी एक से दूसरी वस्तु नही उत्पन्न हो सकती।

इतना होते हुए भी यह असदिग्ध है कि उपादान कारण तो उन्होने भी स्वीकार किया ही है।

उपादान और निमित्त कारणो को सामने रखते हुए अब हमे यह देखना है कि आत्मा किस प्रकार परमात्मा के रूप को पा सकती है ? आत्मा का परमात्मा बनना भी एक कार्य है। यह कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है जब दोनो कारण हो। अर्थात प्रथम तो आत्मा मे परमात्मा बनने की क्षमता होनी चाहिये और फिर-निमित्त कारण मिल जाने चाहिये।

जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति विद्यमान है। अतएव निमित्त मिलने पर वह परमात्मा बन सकती है। भगवान ऋषभदेव आत्मा की उस शक्ति के आविर्भाव मे निमित्त कारण बनते हैं। अतएव यहां कहा गया है कि ऋषभदेव की भक्ति करने से स्वय भगवान् बन जाता है।

जिन नाभिनन्दन भगवान आदिनाथ की उपासना से उपासक स्वय उपास्य की पदवी प्राप्त कर लेता है, उन प्रभु को ही हमारा वार वार नमस्कार है।

वह पारस क्या पारस है, जो लोहे को नहीं सोना कर दे ।
वह शक्ति है भगवान् में जो आतम को परमातम कर दे ।

पारस पाषाण लोहे को सोना बना देता है। प्रश्न यह है कि वह राँगा को सोना क्यो नही बनाता? लोहे को ही क्यो बनाता है? उत्तर यह है कि लोहे मे सोना बनने की शक्ति है और राँगे मे वह शक्ति नही है। इसी प्रकार जिसमे परमात्मा बनने की शक्ति है अर्थात जिसमे भव्यत्व शक्ति है, वही परमात्मा की उपासना के द्वारा परमात्मा बन सकता है। जो अभव्य है अर्थात राँगे के समान है, वह परमात्मा नही बन सकता। इसमे परमात्मा की कोई त्रुटि नही है, क्योंकि आखिर उपादान स्वय शक्तिहीन है तो निमित्त कारण क्या करे?

यहा एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि पारस लोहे को सोना तो बनाता है, किन्तु पारस नहीं बनता। अर्थात वह अपने समान नही बनाता। किन्तु परमात्मा का यह असाधारण गुण है कि वे अपने भक्त को पूरी तरह अपने ही समान बना लेते है।

भाइयो! भगवतीसूत्र मे अधिकार चलता है कि एक बार गौतम स्वामी ने भगवान महावीर स्वामी से पूछा- भगवन्! मेरे दीक्षित होने के बाद दीक्षा लेने वाले कई मुनि केवलज्ञान पाकर मुक्त हो गये, परन्तु मै आपका अनन्य भक्त होने पर भी अभी त केवल ज्ञान से वचित हू। इसका क्या कारण है?

भगवान् ने कहा-गौतम! तुम्हारे अन्त करण मे मेरे प्रति मोह है। यह मोह ही तुम्हे केवलज्ञान मे वचित कर रहा है। तुम मोह को जीत लो तो केवलज्ञान रूप लक्ष्मी प्राप्त हो जाएगी ।

भाइयो! गौतम स्वामी चार ज्ञान के धनी, परमोत्कृष्ट तपस्वी और ध्यानी थे। उन्हे भगवान् के ऊपर प्रशस्त मोह था। इस मोह के कारण भी जब वे केवलज्ञान प्राप्त न कर सके तो जगत के जड पदार्थों पर ममता रखने वालो का कैसे कल्याण होगा? वास्तव मे यह मोह आत्मा का बडा बलवान बैरी है। इसे जीते बिना आत्मा का कल्याण नही हो सकता।

मरुदेवी माता का ऋषभदेव के प्रति मोह था। जब वह दीक्षा ले कर तप करने लगे तो माताजी का हृदय उन्ही को रटता रहा। वह यही कहा करती थी कि मेरा ऋषभ कब लौटेगा? कब लौटेगा? कभी-कभी अपने पौत्र भरत को उपालम्भ दिया करती थी कि तू मेरे बेटे को बुलाता नही है। उसके समाचार भी मगवाता नही है। भरत महाराज दादीजी को आश्वासन दिया करते थे। इस प्रकार मरुदेवी माता दिन-रात ऋषभदेव को ही याद करती रहती थी।

आखिर एक दिन, केवली होकर भगवान लौट आए। भरतजी सपरिवार मरुदेवी माता के साथ भगवान के दर्शन करने गये। उन्हे देखकर माता का हृदय उमड पडा। वात्सल्य का झरना वेग के साथ बह उठा। बोली--

ऋषभजी मूंडे बोल,
बोल बोल आदीश्वर वाला! कांई थारी मरजी रे!
मांसूं मूंडे बोल।
बोल बोल म्हारा ऋषभ कन्हैया! कांई थारी मरजी रे!
मांसूं मूंडे बोल ॥टेर॥

सुनी आज मारो लाल पधारियो, विनितां बाग के मांहि रे ।
तुरत गज असवारी करने, आई उमाही रे ।। १ ।।
रह्यो मजा में है सुख साता, खूब किया मन चायो रे ।
एक कहन या थांसू लाल, मोडो क्यों आयो रे ।। २ ।।
खैर हुई अणहुई न होवे, एक बात भली नहीं कीधी रे ।
गया पाछे कागज नहीं भेज्यो, मोरी खबरां न लिधी रे ।। ३ ।।
वार त्यौंहार भोजन भांणे, ताता कोई आता रे ।
थारी याद में ठण्डा होता, पूरा नहीं भाता रे ।। ४ ।।
खोलो खोलो जल्दी मौन ने, खोलो खोलो बोलो रे ।
बोलो बोलो मांसू बोलो, बोलो बोलो बोलो रे ।। ५ ।।
थे निर्मोही मोह नहीं आयो, मैं मोह कर कर हारी रे ।
मोरा देवी गज होदे गई, मोक्ष मझारी रे ।। ६ ।।
समत उगणीसे साल चौसटे, भोपाल सेखे कारी रे ।
गुरू प्रसादे चोथमल कहे, धन्य मेहतारो रे ।। ७ ।।

मरुदेवी माता अपने लाडले लाल के प्रति इस प्रकार कह रही थी । उनके वचनो मे मोह का पुट था । जब तक मोह बना रहा, केवलज्ञान नही हुआ । किन्तु अचानक परिणामो की धारा ने दूसरा मोड ग्रहण किया । ससार की असारता की ओर भावना चली गई । उसी समय मोह के मेघ वैराग्य की प्रबल वायु के झोंके से छिन्नभिन्न हो गये । मोह के हटने पर हाथी के हौदे पर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया ।

हा, तो भगवान महावीर ने गौतम से कहा - गौतम ! जब मोह समूल हट जाएगा तो मुझ मे और तुझ मे कोई अन्तर नही रहेगा ।

भाइयो ! जब तक दुविधा है तब तक पूर्ण आत्मनिष्ठा नही हो सकती । ससार के, सुख भी चाहो और मोक्ष की कामना भी करो तो यह नही बन सकता । जैसे कमल पानी मे रहता हुआ भी उससे अलिप्त रहता है, उसी प्रकार सँसार मे रहते हुए भी जो ससार से विरक्त रहता है, उसमे आसक्त नही होता, उसी का कल्याण होता है ।

सम्यग्दृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल ।
अन्तर से न्यारो रहे, ज्यो धाय खिलावे बाल ॥

बच्चे की मा मर जाती है तो उसे दूध पिलाने के लिये धाय रखी जाती है । बडे आदमी अन्यान्य कारणो से भी धाय की व्यवस्था करते हैं वह धाय बालक को दूध पिलाती है, खिलाती है हसती है और लाड करती है । देखने वाले को यह भान नही हो सकता कि यह बालक दूसरे का हैं । किन्तु धाय अपने अन्तःकरण मे अनुभव करती है कि वह बच्चा मेरा नही है । इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष ससार मे रहता हुआ और परिवार के बीच रहता हुआ भी अन्तस् मे समझता है कि मै किसी का नही हूँ और कोई मेरा नही है। उसे विश्वास होता हैं कि ससार और है, मे और हूं

वास्तव मे जो वस्तु अपनी नही है, उसे अपनी समझना ही अज्ञान है और यही मोह है । मोह के वश मे होकर प्राणी जो अपना नही है, उसे अपना मान लेता है ।

औरत पानी भरने गई और बच्चा रोने लगा तो बाप उसे गोदी मे लेकर पुचकारता है और कहता है - रोओ मत, अभी अपनी माँ आती है। और आने पर कहता है–देख, मा आ गई! कहिये वह यह नही समझता कि यह किसकी माँ है और किसकी नही ?

आदमी शराब पी लेता है और नशे मे बेभान हो जाता है तो पत्नि को माता और माता को पत्नि कह देता हैं। इसी प्रकार मोह मे पता नही चलता। यही कारण है कि मोह को मदिरा की उपमा दी गई है। यद्यपि मोह एक जबर्दस्त विकार है और उसने आत्मा को अभिभूत कर रक्खा है, फिर भी आत्मा को निजी शक्तिया भी कम बलवती नही है। आत्मा जब दृढ सकल्प लेता है तो मोह को पराजित होना ही पडता है। सबसे पहले आत्मिक शक्तियो मे समीचीन दृष्टि (सम्यग्दर्शन) का उन्मेष होता है और उसका उन्मेष होने पर मोह का एक जबदस्त व्यूह, जिसे अनन्तानुबन्धी मोह कहते है, छिन्नभिन्न हो जाता हैं। इस मोह के नष्ट होने पर सम्यग्दृष्टि प्राणी समझने लगता हैं कि मै और ही हूँ और ससार और ही है। मैं सबसे अस्पष्ट और निराला हू। वास्तव में आत्मा का किसी भी परपदार्थ के साथ कुछ भी लगाव नही है।

ऊपर - ऊपर से ज्ञानी और अज्ञानी मे कोई अन्तर दिखलाई नही देता। प्राय. ज्ञानी भी वही साँसारिक कार्य करता है जो अज्ञानी करता है। दोनो समान रूप से कुटुम्ब का पालन करते हैं, आजीविका के लिये व्यापार-धन्धा करते हैं. शादी विवाह करते हैं और दूसरे-२ कार्य भी करते हैं। मगर उन कार्यो के पीछे भावना मे महान् अन्तर होता है। इसी अन्तर को समझाने के लिये धाय का उदाहरण दिया गया है। धाय बालक के साथ वैसा ही व्यवहार

करती है, जैसे बालक की माता । फिर भी दोनो की भावना मे महान् अन्तर है । धाय मे बालक के प्रति आसक्ति नही देती, जब कि माता के अन्त करण मे आसक्ति होती है । इसीप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अनासक्त भाव से क्रिया करता है और मोही-मिथ्यादृष्टि आसक्ति पूर्वक क्रिया करता है । इस भावना भेद के कारण दोनो की क्रियाओ के फल मे आकाश पाताल का अन्तर पड जाता है ।

सम्यग्दृष्टि जीव सकट आने पर विचार करता है कि पूर्वोपार्जित कर्म ही उदय मे आए है तो इन्हे भोगना पडेगा । इस प्रकार विचार करके वह समभाव से उनको सहन करता है । अज्ञानी जीव पर जब सकट आ पडता है तो भोगना तो उसे भी पडता है, किन्तु वह हाय हाय करता है और रामजी को गालियां दे देकर कोसता है । कहता है-अरे रामजी ! तुम्हारा सत्यानाश हो ।

इस प्रकार विषमभाव धारण करने से अज्ञानी नवीन कर्मो का बध करता है किन्तु ज्ञानी जीव कर्मो का बन्ध नही करता । अज्ञानी की आत्मा भारी हो जाती है, ज्ञानी की आत्मा हल्की बनती जाती है । कहा कि—

ज्ञानी भुगते समभाव से, मूरख भुगते रोय ।

मान लीजिये, एक आदमी ने कोई अपराध किया । न्यायालय से उसे कारागार की सजा मिली । कारागार मे जाकर वह हाय हाय करता है, रोता है, बिलखता है और जेलर को गालियां देता है । इससे क्या सजा कम हो जायगी ? नही, उल्टे उसे सख्त सजा का भागी होना पडेगा । जेलर ने काल कोठरी मे बन्द न किया होगा तो बन्द कर देगा या दूसरी तरह से सख्ती करेगा ।

गालियाँ देने के अपराध मे न्यायालय के द्वारा उसकी सजा को अवधि और भी बढ सकती है । इस प्रकार ऐसा करने से हानि ही हो सकती है, लाभ कुछ नही हो सकता ।

अब कल्पना कीजिए, एक समझदार व्यक्ति है और उसे किसी कारण जेलखाने की सजा मिल गई । जेल मे जाकर वह बराबर जेल के कायदो का पालन करता है, अपने दोष के लिए तो पश्चात्ताप करता है परन्तु न्यायाधीश या जेलर को गालिया नही देता । ऐसी स्थिति मे जेलर उससे सन्तुष्ट रहेगा । उसके सदाचार के कारण उसे छूट मिलेगी और नियत अवधि से कुछ पहले ही वह छुटकारा पा लेगा ।

इन दोनो उदाहरणो से समभाव और विषमभाव के अन्तर को भलीभांति समझा जा सकता है । समभाव से सदैव आत्मा की रक्षा होती है । समभाव सुख का कारण है । फिर भी अज्ञानी जीव उसका आश्रय न लेकर विषयभाव की धारा मे ही बहते देखे जाते हैं पाप का फल भोगते हुए परमात्मा को गालिया देते है— रामजी का खोज जाय ! उसने मेरी लुगाई को मार डाला !

कहो भाई ! रामजी के छोरे छोकरिया हैं क्या ? हो भी तो क्या राम किसी को मारने आते हैं ? सब अपने-अपने कर्मो से जीते और मरते हैं । कर्म ही जीवन मरण के अन्तरग का कारण है कर्मोदय के विरुद्ध न कोई किसी को मार सकता है न जिला सकता है । कहा भी है :—

राम किसी को मारे नहीं, सबसे मोटा राम ।
खुद ही वह मर जायगा, कर कर खोटे काम ॥१॥

भाइयो ! राम किसी को नही मारता। वह तो सबसे बडा है। मनुष्य स्वय ही खोटे काम करके मरता है। जब आदमी डाकू बन जाता है, जुल्म करता है और जब पाप प्रकट हो जाते हैं, तो वही पाप उसे खा जाएँगे। जिस रोज आ गया सरकार के कब्जे मे कि उसी दिन खत्म हो जायगा। आज ही अखबार मे पढा था कि चार जागीरदारो को कारागार की सजा मिली और एक भागकर बीकानेर रियासत में चला गया। जब किसी भी चीज की अति हो जाती है तो उसका फल अच्छा नही निकलता। सीता मे रूप की अति थी तो रावण उसे चुराकर ले गया। रावण को अपने बल का अत्यन्त घमण्ड था तो वह मारा गया। इस प्रकार अति की इति भी शीघ्र हो जाती है। रिश्वत खाते-खाते, चोर बाजार करते-करते मनुष्य जब पकडा जाता है तो सब खाया-पिया निकल जाता है। कहा है--

तुलसी हाय गरीब की, कबहुँ न निष्फल जाय।
मरे बैल के चाम से, लोह भस्म हो जाय ॥१॥

जिस लोहे के छुरे से बैल काटा जाता है, उसी की निर्जीव चमडी से वह लोहा भी भस्म हो सकता है, यह बात भूलना नही चाहिए। आज तुम समझो अथवा न समझो, मगर एक दिन समझना पड़ेगा कि गरीब की हाय व्यर्थ नही जाएगी। गरीबो की हाय मे वह आग है कि श्रीमतो की बडी-बडी हवेलिया भी उससे भस्म हो जाएँगी।

आज पुराना युग बीत रहा है और नूतन युग का सूत्रपात हो गया है। आज मानवजाति की धारणाएँ और भावनाएँ एक नवीन दिशा ग्रहण कर रही है—नया मोड़ ले रही हैं। इसके फलस्वरूप

गरीब लोग अपने असन्तोष को प्रकट रूप मे व्यक्त ही नही करने लगे हैं, बल्कि अपने हितो और स्वार्थो की पूर्ति के लिए संघर्ष करने पर भी उतारू हो रहे हैं। उनका संगठन दिनोदिन व्यापक और सुदृढ बन रहा है और इसी कारण उनकी शक्ति भी बढ रही है। यह सब बाते हवा का रुख स्पष्ट रूप से प्रकट कर रही है। समय रहते श्रीमंत लोग अगर सावचेत हो जाएँगे और गरीबो के असन्तोष को उचित ढंग से दूर कर देंगे तो यह बात उनके पक्ष मे ही लाभदायक होगी। कदाचित ऐसा न हुआ और अकड की अति बनी रही तो परिणाम बडा भयंकर होगा। दूसरे-दूसरे देशो मे जो क्रान्तियाँ हुई हैं खूनी इन्किलाब आये हैं, उनसे बचने का यही तरीका हैं कि हम गरीबो की हाय को शीघ्र शान्त कर दें। उसे अधिक उष्ण न होने दें। उस हाय मे से विनाशकारी लपटें निकलने से पहले ही उसे बुझा दें। आखिर हिंसा और रक्तपात से जो क्रान्ति होगी, वही अहिंसा से क्यो न हो? भारत तो अहिंसा का पुजारी रहा है और आज भी वह अहिंसा की ही नीति का अवलम्बन कर रहा है। अतएव किसी भी वर्ग को ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नही होने देना चाहिए, जिससे यहाँ भी हिंसा की बीमारी फैले।

भाइयो! अधिक स्वार्थ परायणता कभी लाभप्रद नहीं होती। अतएव सदैव न्यायोचित व्यवहार करो और स्वार्थान्ध होकर किसी के प्रति अन्याय मत करो। निश्चित समझ लो कि तुम अपने अन्याय के शिकार आप ही बनोगे। अत्याचारी को अत्याचार का फल भोगना ही पडेगा। अतएव समदृष्टि को अपनाओ। जैसे अपने हित को महत्त्व देते हो, उसी प्रकार दूसरो के हितो को भी महत्त्व दो। यही अहिंसा का संदेश है। इसी में जगत की शान्ति निहित। जुल्म और अत्याचार किसी के हक मे अच्छे नहीं है। कहा है--

भाइयो ! राम किसी को नही मारता। वह तो सबसे बडा है। मनुष्य स्वय ही खोटे काम करके मरता है। जब आदमी डाकू बन जाता है, जुल्म करता है और जब पाप प्रकट हो जाते हैं, तो वही पाप उसे खा जाएँगे। जिस रोज आ गया सरकार के कब्जे मे कि उसी दिन खत्म हो जायगा। आज ही अखबार मे पढा था कि चार जागीरदारो को कारागार की सजा मिली और एक भागकर बीकानेर रियासत से चला गया। जब किसी भी चीज की अति हो जाती है तो उसका फल अच्छा नही निकलता। सीता मे रूप की अति थी तो रावण उसे चुराकर ले गया। रावण को अपने बल का अत्यन्त घमण्ड था तो वह मारा गया। इस प्रकार अति की इति भी शीघ्र हो जाती है। रिश्वत खाते-खाते, चोर बाजार करते-करते मनुष्य जब पकडा जाता है तो सब खाया-पिया निकल जाता है। कहा है--

तुलसी हाय गरीब की, कबहुँ न निष्फल जाय।
मरे बैल के चाम से, लोह भस्म हो जाय ॥१॥

जिस लोहे के छुरे से बैल काटा जाता है, उसी की निर्जीव चमडी से वह लोहा भी भस्म हो सकता है, यह बात भूलना नही चाहिए। आज तुम समझो अथवा न समझो, मगर एक दिन समझना पडेगा कि गरीब की हाय व्यर्थ नही जाएगी। गरीबो की हाय से वह आग है कि श्रीमतो की बडी-बडी हवेलिया भी उससे भस्म हो जाएँगी।

आज पुराना युग बीत रहा है और नूतन युग का सूत्रपात हो रहा है। आज मानवजाति की धारणाएँ और भावनाएँ एक नवीन रूप ग्रहण कर रही हैं—नया मोड़ ले रही हैं। इसके फलस्वरूप

गरीब लोग अपने असन्तोष को प्रकट रूप मे व्यक्त ही नही करने लगे हैं, वल्कि अपने हितो और स्वार्थों की पूर्ति के लिए सघर्ष करने पर भी उतारू हो रहे है। उनका सगठन दिनोदिन व्यापक और सुदृढ बन रहा है और इसी कारण उनकी शक्ति भी बढ रही है। यह सव बाते हवा का रुख स्पष्ट रूप से प्रकट कर रही है। समय रहते श्रीमत लोग अगर सावचेन हो जाएँगे और गरीबो के असन्तोष को उचित ढग से दूर कर देंगे तो यह बात उनके पक्ष मे ही लाभदायक होगी। कदाचित ऐसा न हुआ और अकड की अति बनी रही तो परिणाम बडा भयकर होगा। दूसरे-दूसरे देशो मे जो क्रान्तियाँ हुई हैं खूनी इन्किलाब आये हैं, उनसे बचने का यही तरीका हैं कि हम गरीबो की हाय को शीघ्र शान्त कर दें। उसे अधिक उष्ण न होने दें। उस हाय मे से विनाशकारी लपटें निकलने से पहले ही उसे बुझा दे। आखिर हिंसा और रक्तपात से जो क्रान्ति होगी, वही अहिंसा से क्यो न हो? भारत तो अहिंसा का पुजारी रहा है और आज भी वह अहिंसा की ही नीति का अवलम्बन कर रहा है। अतएव किसी भी वर्ग को ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नही होने देना चाहिए, जिससे यहाँ भी हिंसा की बीमारी फैले।

भाइयो! अधिक स्वार्थ परायणता कभी लाभप्रद नहीं होती। अतएव सदैव न्यायोचित व्यवहार करो और स्वार्थान्ध होकर किसी के प्रति अन्याय मत करो। निश्चित समझ लो कि तुम अपने अन्याय के शिकार आप ही बनोगे। अत्याचारी को अत्याचार का फल भोगना ही पडेगा। अतएव समदृष्टि को अपनाओ। जैसे अपने हित को महत्त्व देते हो, उसी प्रकार दूसरो के हितो को भी महत्त्व दो। यही अहिंसा का सदेश है। इसी मे जगत की शान्ति निहित। जुल्म और अत्याचार किसी के हक मे अच्छे नही है। कहा है--

पाप करना छोड़ दे जालिम खुदा के वास्ते।
है ये हरकत नारवां अहले वतन के वास्ते।

ऐ जालिम ! यह हरकते ठीक नही। जितनी बुरी हरकते है, वे उन्हे करने वाले के हक मे ही बुरी साबित होती हैं। बुरे काम तुम्हारे हक मे ही बुरे साबित होगे।

बुरा पहले सुख पाएगा,
आखिर तो वह पछताएगा ।।टेर।।
बुरा करता जो काम,
आखिर होता बदनाम ।
जेल खाने की ठंडी हवा खाएगा ।।१।।

भाइयो ! बुरे कर्म करने वाले को आखिर पछताना पडता है। पहले तो वह समझता है कि हमने अपनी होशियारी से इतना द्रव्य उपार्जन कर लिया, यो धोखा दे दिया, यह कर लिया, वह कर लिया ! मौज मे हो गये ! किन्तु जब पाप प्रकट हो जाता है तो सुख समाप्त हो जाता है ! अतएव अगर अपने भविष्य को कटकाकीर्ण नही बनाना चाहते हो तो बुराई से बचो।

वह अमिट सत्य है कि जो पुरुष पाप का आचरण करेगा उसे इस लोक मे अथवा परलोक मे अवश्यमेव फल भोगना पडेगा।

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।

अर्थात्—किये कर्मो का फल भोगे बिना छुटकारा नही है।

वैद्यराज ने बीमार से कहा तेरे शरीर मे विकार है, अतः तेल और खटाई का परहेज रखना। किन्तु बीमार कहता है कि इन चीजो के बिना तो मे रह नही सकता। जब परहेज नही रखा तो दोनो घुटने चिपक गये और सूजन आ गई। बीमार फिर वैद्य के पास पहुचा। वैद्य कहता है–तुमने हमारा कहना नही माना। अब मेरी दवा लेनी है तो दो बातें करनी पडेगी। अलोनी रोटी और अलोनी मूग की दाल खानी होगी।

बीमार विचार करता है–पहले वैद्यराज ने कितना सरल परहेज बतलाया था। यदि मान लेता तो आज मजे मे सब चीजें खाता। किन्तु हाय, मैंने माना नही तो आज यह दुख भोगना पड रहा है।

तो जैसे यह बीमार पश्चाताप करता है, उसी प्रकार मोह-ग्रस्त जीव को भी पश्चाताप करना पडता है। अभी तो यो ही घर-घर भटकता है और औरतो पर खोटी नजर डालता है और कोई मना करता है तो उत्तर देता हैं हम तो नही मानेगे, किन्तु जब जेल की हवा खानी पडती है तो कहता है - हाय, मैने कहना नही माना तो आज यह कुफल भोगना पडा !

ऐ मनुष्यो ! अपना भला चाहो तो बुरे काम मत करो। बुरा काम क्या है ? किसी को कष्ट देना,पीडा पहुँचाना,झूठ बोलना चोरी करना, परस्त्री की तरफ घूरना, लालच बढाते जाना, क्रोध करना, घमण्ड करना, छल कपट करना आदि। यह सब पाप में हैं, किन्तु अधिकाँश पापो का मूल लालच है। लालच से प्रेरित होकर ही प्रायः लोग अनेक पापो मे प्रवृति करते हैं। लालच के जाल मे फँसा हुआ मनुष्य उसमे से निकल नही पाता। लालच का कही अन्त नही आता और मनुष्य पागल होकर उसके प पीछे

फिरता है। लालच के सबध मे शास्त्र मे एक उदाहरण दिया गया है। वह इस प्रकार है —

एक गरीब ब्राह्मण का लडका था। उसे केवल माता का ही सहारा था। माता ने लडके से पढने के लिये कहा परन्तु स्वर्थ विना कौन किसकी सहायता करता है ?

एक दिन माता ने लडके से कहा - बेटा उज्जैन मे तुम्हारे पिताजी के एक मित्र हैं और वे अध्यापक हैं। उनके पास जाओ। वहाँ तुम्हारी शिक्षा की व्यवस्था हो जायगी।

लडका उज्जैन गया और उस अध्यापक से मिला। लडके का परिचय पाकर अध्यापक ने कहा-अहा, तुम मेरे मित्र के लडके हो मैं तुम्हे पढा तो दू गा किन्तु भोजन नही करा सकता। और माँग कर पडोगे तो पढाई मे चित्त नही लगेगा। इसलिये मैं किसी गृहस्थ के यहा तुम्हारे भोजन की व्यवस्था कर दू गा

एक परोपकारी गृहस्थ उस लडके को भोजन कराने के लिये तैयार हो गये। लडका वहा भोजन करता और अध्यापक के पास रहकर पढने लगा। उस गृहस्थ के यहाँ एक सुन्दर नवयुवती दासी थी और यह लडका भी नौजवान था। धीरे-धीरे उन लोगो का अनुचित सम्बन्ध हो गया। उसका मन पढाई से उचट गया। जब वह न पढने लगा तो अध्यापक ने पढाना बन्द कर दिया। वह दासी के साथ अलग रहने लगा और माग - माग कर जीवन निर्वाह करने लगा।

जब हृदय मे विषयवासना प्रबल हो उठती है तो विद्या की आराधना होना सम्भव नही रहता। नीतिकार कहते है —

काकचेष्टा बकध्यान, श्वान निद्रा तथैव च।
ब्रह्मचारी गृहत्यागी, विद्यार्थी पञ्चलक्षणः ॥

विद्यार्थी को कौवे को तरह रटन करना चाहिए बगुले की तरह एकाग्रता रखनी चाहिए, कुत्ते के समान सोना चाहिए, ब्रह्मचर्य की आराधना करनी चाहिए और घर त्याग गुरुकुल मे निवास करना चाहिए। जो इन पाच बातो का पालन करता है, वही ठीक तरह से विद्योपार्जन करने मे समर्थ हो सकता है।

एक बार कोई त्यौहार आया। स्त्रिया बगीचे मे गई तो यह दासी भी गई। अन्यान्य स्त्रिया खूब सजधज के साथ गई थी,मगर दासी के पास न आभूषण थे, न उत्तम वस्त्र ही। दूसरी स्त्रियो ने उससे कहा–अरी,तू ऐसी मैली कुचैली क्यो आई है? दासी लज्जित हो गई। वह अनमने भाव से घर आई और पति से बोली–मेरे लिए जेवर और नवीन वस्त्रो का प्रबन्ध करना ही होगा। तब तक इस हालत मे रहूँ। मेरी वेषभूषा देखकर स्त्रियाँ टोकती है।

पति-अभी तो पेट भरना भी दूभर हो रहा है। ऐसी स्थिति मे, तुम्ही कहो कि जेवर और वस्त्रों का प्रबध किस प्रकार हो सकता है?

स्त्री राजाजी प्रतिदिन दो माशा सोना ब्राह्मण को दान करते है। जो सबसे पहले पहुच जाता है, वही सोना पा लेता है। तुम जल्दी जाओगे तो तुम्ही को मिल जायगा।

ब्राह्मण रात को सोया तो उसे नीद नही आई। बारह बजे उठ बैठा और सोने के लोभ मे राजमहल की ओर रवाना हो गया राजमहल के निकट आया तो देखा कि द्वार बद है। वही पानी निकलने की एक मोरी थी। उसने सोचा- इसमे होकर भीतर चला जाऊ तो सबसे पहले पहुच जाऊगा। उसने ऐसा ही किया। मगर सिपाहियो ने उसे देखा तो चोर समझ कर पकड लिया। पहले तो उसकी मरम्मत की और फिर हिरासत मे ले लिया।

ब्राह्मण सोचता है-सोना लेने आया था परन्तु सोना तो एक किनारे रह गया मार खानी पडी और कारागार की विडम्बना भोगनी पडी। हाय मार भी खाई और सोना भी हाथ न आया।

प्रात काल हुआ। यह ब्राह्मण तो हिरासत मे रह गया और दो माशा सोना दूसरा ब्राह्मण ले गया। कचहरी का समय हुआ तो ब्राह्मण राजा के सामने उपस्थित किया गया। सिपाहियो ने कहा--पृथ्वीनाथ यह चोर है, वदमाश है। इसने मोरी की राह से राजमहल मे प्रवेश किया है।

राजा ने गौर से ब्राह्मण की सूरत देखी तो उसे लगा कि यह मनुष्य चोर नही है,तब उससे पूछा-सच सच कहो, तुम कौन हो? किस इरादे से तुमने महल मे गैर कानूनी तौर से प्रवेश किया है।

ससार मे सत्य एक बडी शक्ति है। सत्यवादी हाकीम के हृदय मे भी अपना स्थान बना लेता है और सहानुभूति का भाव जगा लेता है इसके विपरीत दगाबाजी करने वाले को बडा भय रहता है। उसके मन मे सदैव यही आशका बनी रहती है कि कही मेरी पोल न खुल जाय। सत्यवादी को ऐसी कोई आशका या चिन्ता नही होगी। सत्य का बल मनुष्य के हृदय को आश्वासन और शक्ति देता है। अतएव सत्यवादी निर्भय रहता है। झूठ बोलने वाला एक बार झूठ बोलकर अपना काम बनाने का प्रयत्न तो अवश्य करता है, परन्तु उसके हृदय मे खटका बना रहता है वह अपने असत्य को छिपाने के लिए जाल रचता है और डरता रहता है कि कही मेरी पोल न खुल जाय। उसे एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ गढने पडते है। उसकी आत्मा गिरती ही चली जाती है। वह सदैव बेचैन रहता है, सशक रहता है और आप ही अपनी नजरो मे गिरा रहता है।

सत्यवादी की वाणी मे अनोखा ही बल होता है। उसके चेहरे पर निर्भयता होती है। सत्य उसे निडर बनाता है।

हाँ, तो राजा ने ब्राह्मण से कहा—सब बात सच-सच कह दो। ब्राह्मण ने आदि से अन्त तक की सब कथा राजा को सुना दी कि वह किस लिए और कैसे दो माशा सोने के लिए आया और पकडा गया और पीटा गया।

राजा को ब्राह्मण की बात पर विश्वास हो गया। अतएव राजा ने कहा—तुझे दो माशा सोने के लिए कष्ठ उठाना पडा है। अतएव जो मागना हो सो माग ले।

राजा की बात सुनकर ब्राह्मण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगा—क्या माँगना चाहिए? राजा प्रसन्न हो गये हैं और मुँह माँगा देने को तैयार हैं तो फिर दो माशा माँग कर क्या करूँगा? एक तोला क्यो न माँग लूँ? मगर एक तोले से भी क्या होगा? पच्चीस अशर्फियाँ क्यो न माँग लूँ? लेकिन जब यह अशर्फियाँ समाप्त हो जाएँगी तो फिर भिखारी का भिखारी हो जाऊँगा। इससे अच्छा तो यही होगा कि एक हजार मोहरो की माँग कर लूँ। फिर भी सोचा—जब मुँह माँगा मिल रहा है तो हजार क्यो, पाँच हजार मोहरे क्यो न माँग लूँ?

काहए लोभ का कही अन्त है? इसीलिए शास्त्रकार कहते है:—

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।
दोमासकयं कज्जं, कोडिए वि न निट्ठियं॥

उत्तराध्ययन अ. ८-१७

अर्थात्–ज्यो-ज्यो लाभ होता जाता है त्यो-त्यो लोभ बढता जाता है। लाभ से लोभ की वृद्धि होती है।

पहलेपहल मनुष्य सोचता है कि अमुक मात्रा मे सम्पत्ति मिल जायगी तो मुझे तृप्ति हो जायगी। परन्तु उस मात्रा मे जब मिल जाती है तो फिर वही हाल होता है। मनुष्य फिर सोचने लगता है. इतना तो मिल गया है, पर इससे क्या पूरा पडेगा? इतना और मिल जाय तो काम चल सकता है। इस प्रकार अभिलाषाओ का कही अन्त नही आता और मनुष्य जिन्दगी भर व्यर्थ ही उनकी पूर्ति के लिए मरता-पचता रहता है। जिन्दगी का जब खात्मा होता है तो सब कुछ छोडकर चल देता है।

भाइयो! ब्राह्मण का यह लडका दो माशा सोने की इच्छा करके घर से निकला था। लेकिन अब देखिए, इसका क्या हाल हो रहा है! लोभ के पूर मे बहता ही चला जाता है। कही रुकने का ठिकाना नही पा रहा है!

किसी भिखारी को एक पैसे के बदले एक रुपया मिल जाय तो भी उसको तृप्ति नही होती। वह दस की इच्छा करता है। दस वाले से पूछो कि तुम्हे तो सन्तोष है? वह कहेगा-नही जी, दस मे क्या होता है। कम से कम बीस तो हो! अब बीस वाले से पूछो कि भाई, तुम्हे तो अधिक तृष्णा नही है? सन्तुष्ट हो? तब कहता है–वाह साहब! बीस किस गिनती मे हैं! सौ तो चाहिए ही चाहिए! इस तरह सौ वाला हजार हजार वाला लाख, और लाख वाला करोड की इच्छा करता है। लाभ से किसी को भी तृप्ति नही होती। तृप्ति तो सन्तोष से ही सभव है।

जब तक हृदय में तृष्णा है, तब तक सन्तोष नहीं होता।
आयु का नाश हो जाता है, तृष्णा का नाश नहीं होता॥

किसी ने कितना सुन्दर कहा है —

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।

सच है-आयु का नाश हो जाता है, तृष्णा का नाश नही होता। मनुष्य बूढा हो जाता है परन्तु तृष्णा बूढी नही होती। वह जब अंतिम सास ले रहा होता है तब भी कहता है - बाजार-भाव क्या है?

जिन लोगो को गरीबी सता रही थी, वह भी इस महगाई के समय मे मालामाल हो गये हैं। उनके पास कई गुनी सम्पत्ति हो गई है लेकिन उन कजूसो से कोई कहे कि परोपकार के लिए कुछ करो तो वे कहते हैं-हमारी शक्ति नही है।

भाइयो! सवत १९९५ में मैं भीम आया था। उस समय से आज आपके पास पैसा बढा ही है, घटा नही है। मगर देखना यह है कि आपकी उदारता उसी परिमाण मे बढी है अथवा नही? मन मगता तो नही बन गया है? सब लोग अपनी अन्तरात्मा से यह प्रश्न पूछो। अगर आपकी उदारता नही बढी तो धन के बढने से आपका क्या हित हुआ? धन के साथ आपकी ममता बढ गई। इसका अर्थ यह हुआ कि आपका पाप बढ गया है। उस धन की सार सभाल करने की चिता बढ गई, व्याकुलता बढ गई और आरभ-समारभ बढ गया। यह सब पाप का ही बढना है। ऐसी सम्पत्ति से आपका कुछ भी हित नही होने वाला है बल्कि अहित ही है। हित तभी हो सकता है जब धन पाकर आपके अन्त करण मे उदारता उत्पन्न हो, परोपकार करने की भावना उत्पन्न हो, दीन दुखी और अनाथ को देखते ही आपकी त्यागवृत्ति उमड पड़े और अपने साधनो से उसके दुख को दूर कर दो।

अगर पैसे के साथ कजूसी बढती है तो तुम भले ही उस सम्पत्ति को पुण्यरूप समझो, ज्ञानी पुरुष उसे पाप के रूप मे ही देखते हैं।

भाइयो! सम्पति के साथ मन का बढना बडा कठिन है। जिसके पुण्य का उदय होता है, उसी का मन बढता है। तृष्णा, लोभ और कजूसी का मिटना साधारण बात नही है। अभी जिसके पास पचास हजार हैं, उसे कहा जाय कि दो हजार परोपकार मे लगा दो तो उसकी छाती पर साप लोट जायगा। यो भले डाकू ले जाए, चोर ले जाए या जेब मे से नोट गिर जाएं! इसे वह सहन कर लेगा, मगर मू जी की पू जी परोपकार मे नही लगेगी।

एक सेठानी थी। कोई भिखारी उसके द्वार पर भिक्षा के लिए पहुचा। मगर सेठानी ने भिखारी की आवाज सुनकर भी अनसुनी कर दी। मानो उसने कुछ सुना ही नही है। तब पडौसिन बोली-सेठानी जी, बेचारा कबका खडा है आस लगाए! कुछ तो दो।

सेठानी- पैसा है तो क्या उडाने के लिये है? यो ही नही आ जाता है। बडी मुश्किल से कमाया जाता है।

इस प्रकार उस सेठानी ने कभी किसी अनाथ या गरीब को एक पैसा भी नही दिया। कुछ दिन बाद यम के दूत आये और सेठानी को ले गये।

सेठ ने दूसरी शादी की। नयी सेठानी आकर घर की मालकिन बन गई। पहली सेठानी का सारा जेवर उसके अधिकार मे आ गया। एक दिन फिर कोई भिखारी आया। पडौसिन ने उसे देने के लिये कहा तो इस सेठानी ने भी वही उत्तर दिया। सयोग से यह दूसरी सेठानी भी थोडे दिनो मे मर गई।

सेठ ने तीसरी बार विवाह किया। वही जेवर तीसरी सेठानी ने पहना। फिर एक भिखारी आया। पडोसिन ने सेठानी से फिर कहा बहिन, इसे कुछ दो। बडी हवेली देखकर आया है। इसे निराश मत करो।

सेठानी अपनी मौज मे मस्त। उसने कुछ भी ध्यान नही दिया। तब वह गरीब पडोसिन कहने लगी-सेठानीजी! तुम तीसरी हो। तुमसे पहले दो आई और चली गई।

कहो भाई! आप तो सब धन अपने साथ ही ले जाओगे न? एक पैसा भी पीछे नही छोडोगे?

खेद है कि यह मोह से ग्रस्त जीव अपनी आत्मा की ओर किंचित भी लक्ष्य नही देता। सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न होगा तो भले ही किसी को गोद ले लेगा और उसे सर्वस्व समर्पित कर देगा, किन्तु धर्म के कार्य मे व्यय नही करेगा। अरे भाई, कहावत है आप मरे और जग प्रलय! तू चला गया तो तेरे लिये दुनिया ही कहाँ रही?

ऐ मनुष्य! जब तक तू जीवित है, लाखो और करोडो का स्वामी कहलाता है। किन्तु मरने के पश्चात फूटी कौडी का भी स्वामी नही रहेगा। यह शरीर ही जब छूट जायगा तो धन सपत्ति कैसे साथ रहेगी? कौन वहा सम्पतिशाली होने के नाते तेरी खुशामद करेगा? अतएव जरा विचार करो। मगर लालच का पर्दा आखो पर ऐसा जबर्दस्त पडा हुआ है कि लालची को सत्य सूझता ही नही है। लालच उसके हृदय को और मस्तिष्क को कुण्ठित कर देती है। मनुष्य महासागर का पार पा सकता है मगर लोभ का पार नही है।

वह ब्राह्मण का बेटा सोचता है-मोहरे माग लू गा तो थोडे दिनो मे ही समाप्त हो जायगी । ऐसी चीज मॉगनी चाहिये कि जो मेरी जिदगी भर और मरने पर बाल बच्चो के भी काम आ सके। ऐसी चीज राज्य है । राजा ने कह दिया है जो मागोगे सो मिलेगा फिर ऐसी-वैसी वस्तु क्यो मागू ? सारा राज्य ही क्यो न मांगू ?

भाइयो ! जरा विचार करो कि लालच कितनी बुरी बलाय है ! कहाँ दो माशा सोना और कहाँ राजा का सारा राज्य !

मगर उसी समय उसकी विचार धारा ने पल्टा खाया । वह सोचने लगा-वाह रे लोभ ! कही थमने का नाम ही नही लेता ! दो माशा सोने के लिए तो इतने डडे खाने पडे और इतनी मुसीबत उठानी पडी, अगर सारा राज्य ले लू गा तो न जाने कितनी व्यथा भुगतनी होगी ! कितनी दुर्दशा होगी ! अफसोस ! तृष्णा के वशीभूत होकर मेरी नियत बिगड गई! राजाने मुझ पर अनुग्रह किया। वह मुझे कष्ट से मुक्त करके यथेष्ट दान देना चाहता है और मै ब्राह्मण होकर इतना पतित हो गया हूँ इसका सारा का साराराज्य ही हडप लेना चाहता हू । भलाई के बदले यह बुराई ! मैं राज्य मॉग लू और कदाचित् वचनबद्ध राजा ने दे भी दिया तो भविष्य मे कौन इस प्रकार की उदारता प्रदर्शित करेगा ?

इस प्रकार विचार करते करते कपिल ब्राह्मण ने अपने आपको बहुत धिक्कारा । उसकी दुर्बुद्धि का अन्त आ गया। अन्तरात्मा मे सद्विचारो का प्रसार हुआ । जैसे भोजन करके आकठ तृप्त मनुष्य को कोई मिष्ठान खाने के लिए कहे तो वह कहता है— नाम न लो मिठाई का, नही तो कै हो जाएगी । इसी प्रकार उस ब्राह्मण को भी ससार की सम्पत्ति घृणास्पद प्रतीत होने लगी उसने सोचा — यह ससार की समस्त सामग्री मनुष्य को चक्कर मे

डालने वाली है। आत्मा के वास्तविक स्वरूप को भुलाने वाली है। अनन्त सुख की उपलब्धि मे बाधा डालने वाली है। जन्म-मरण के अक्षय स्रोत मे बहने वाली है इसकी माया मे पडने वाला जव कभी कल्याण का भागी नही बन सकता।

भाइयो ! कपिल ब्राह्मण के चित्त मे जो विमल विचारधारा प्रवाहित हुइ है उस पर आप भी विचार करो। जो बात उसके सबध मे है, वही सब के सबँध मे है। अगर आप आज सावधान नही होते और धन-वैभव के लोभ मे ही फँसे-फँसे सारा जीवन यापन कर देते है तो याद रखना कि अतिम समय मे आपको पश्चाताप की आग में जलना पडेगा। मृत्यु के समय आप सोचेंगे कि हाय ! आगे के लिये मैंने कुछ भी नही किया। मुझे कहने वाले मिले थे कि दान दो, शील पालो, तपस्या करो और शुद्ध भावना रक्खो, किन्तु मैंने इनमे से कुछ भी नही किया। उनकी बात पर कान नही दिया ! उस समय मैंने सोचा-यो ही बकते रहते हैं। इनका धधा यही है ! यह बकते रहेगे, अपने को सुन लेना है और अपने रास्ते चलना है। किन्तु आज ऐसा जान पडता है कि उनका कथन सोलह आने सत्य है। मैं अठारह पाप करके उपार्जित धन-राशि को यही छोडकर जा रहा हू। अब इस पर मेरा कोई अधिकार न होगा ! मर कर कुत्ते की योनि मे उत्पन्न हुआ और इस घर में प्रवेष करना चाहा तो कोई प्रवेश नही करने देगा। यही नही डडो से मेरा स्वागत किया जायगा ! मेरे परिश्रम का यह पुरस्कार।

हा, तो कपिल ब्राह्मण विचार करता है-मैं राजा का राज्य ले लूगा तो क्या वह दासी मुझे स्वर्ग मे ले जायगी ? हाय मैं कितना पतित हो गया हू ! मैं राजमान्य पुरोहित का पुत्र गिरते-गिरते कितना गिर चुका हू ? मैं कितनी नीच विचारश्रेणी मे जा

इस प्रकार की उज्जवल विचारधारा के उत्पन्न होते ही उसे ज्ञान उत्पन्न हो गया और ज्ञान होते ही वैराग्य हो गया !

राजा ने कहा ब्राह्मण ! क्या सोच रहे हो ? माँग लो जो मागना हो ! मैं देने को तैयार हू ।

कपिल ने हल्की मुस्कराहट के साथ कहा—राजन ! यही सोच रहा था कि क्या मागना चाहिए ! मगर अब समझ मे आ गया है। ससार की कोई भी वस्तु मेरे काम की नही है, क्योकि सब वस्तुए अस्थिर हैं और आत्मकल्याण की विघातक हैं। अन्त मे कोई भी वस्तु साथ नही जाएगी। हाथ मे पहनी हुई अगूठी भी घर वाले निकाल कर रख लेगे। ऐसी वस्तुओ के फेर मे पडना कोई बुद्धिमत्ता नही है।

ब्राह्मण ने कुछ रुक कर कहा—राजन् ! यह न समझिए कि मुझे कुछ नही मिला है ! मुझे बहुत कुछ मिला है। जिसके मिलने पर ससार मे कुछ भी पाना शेष नही रहता, वही वस्तु मुझे मिल गई है। अब मेरी आत्मा शान्त है, सन्तुष्ट है और प्रकाशमय हो गई है। मुझे ब्रह्मज्ञान मिल गया है ! इसके सामने सारा ससार तुच्छ है। जिसे ज्ञान मिल गया, उसे क्या पाना बाकी रह गया ! आज तीनो लोको की सम्पदा मेरी दृष्टि मे तुच्छ है ! भोग भुजग के समान भासित हो रहे है। विषय विष के रूप मे दिखाई देते हैं। सम्पत्ति विपत्ति जान पडती है। अब तक मैं जगत् के स्वरूप को ठीक तरह नही समझता था, अब समझने लगा हू। मैं अब इस ज्ञानानन्द को छोड कर दुनिया के चक्कर मे नही पडू गा तपस्या करके आत्मा का कल्याण करने मे ही दत्तचित्त हो जाऊगा।

यह कह कर कपिल ब्राह्मण अपने घर न जाकर सीधा जगल ओर चला गया। राजा और राजसभा के दूसरे लोग चकित रह

गये। ब्राह्मण की तीव्र विरक्ति भावना ने सबको प्रभावित किया।

भाइयो! कपिल ब्राह्मण ने अपना कल्याण साधन कर लिया। वह एक वार पथभ्रष्ट हो गया था। मोह के फँदे मे पड गया था। मगर उसकी आत्मिक शक्ति ने प्रबल रूप धारण किया और मोह की सघन घटाओ को छिन्न भिन्न कर दिया। इस घटना से आप यह समझ सकते हैं कि कोई कितना ही पतित क्यो न हो गया हो अगर चाहे तो अपना परम कल्याण कर सकता है। आत्मोन्नति का द्वार सभी के लिये सदा काल खुला रहता है। अतएव किसी को निराश होने की आवश्यकता नही है। आवश्यकता इस बात की है कि आत्मा मे सुदृढ सकल्पबल उत्पन्न किया जाय और उन्नति के पथ पर सबल कदमो से चला जाय!

जैसे कपिल ने मोह को पराजित करके आत्मसाधना को उसी प्रकार आप भी मोह को पराजित करो। इतना न बन सके तो कम से कम उसे सीमित ही करो। सीमित करने पर एक दिन आपका बल बढ जायगा और आप पूर्ण रूप से मोह को जीत सकेगे। हमारा यह कहना न मानोगे तो अन्त मे पछताना पडेगा और उस समय पछताने से कोई लाभ नही होगा। 'अतएव भाइयो? समय रहते चेतो। सावधान हो जाओ। पाप से बचो और धर्म की शरण लो। धर्म की शरण मे जाने से आप अक्षय अव्याबाध आत्मिक सुख के अधिकारी बन जाएँगे और आनन्द ही आनन्द हो जायगा ❀

५-२-४६
भीम

❀आज का प्रवचन सुनने के लिए डिप्टी कलेक्टर, आबकारी कलेक्टर और अनेक हिन्दू तथा मुसलमान भाई आये थे।
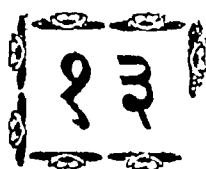
श्रेयस्करी श्रद्धा

स्तुतिः—

> दृष्ट्वाभवन्तमनिमेषविलोकनीयम्,
> नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
> पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः,
> क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाए जाएं ?

हे आदिदेव ! हे नाभेय प्रभो ! आप अनिमेष विलोकनीय हो, आपका मुखचन्द्र देखने वाले की यही इच्छा होती है कि जितनी देर आपका दर्शन हो, उतनी देर तक पलक नही गिरना चाहिये । बीच-बीच मे पलक गिरने से देखने मे विघ्न होता है और देखने

का लाभ चला जाता है। अपूर्व और अद्भुत वस्तु को देखते समय आख के पलक गिरते भी नही हैं। जिस वस्तु को देखते-देखते पलक झप जाएँ, समझना चाहिए कि उसमे कुछ न कुछ खामी है। भगवान् का बाह्य सौन्दर्य असाधारण और आतरिक तो उससे भी अधिक असाधारण है। उसे देखकर कौन नही चाहेगा कि मैं भगवान को अपलक नयनो से निहारता रहू !

रुचिकर वस्तु का सेवन करके इन्द्रिया चटोरी हो जाती हैं, प्रभु का रूप देखकर आंखे उनके रूप की चटोरी बन जाए तो क्या आश्चर्य है ! एक देहाती शहर मे जो रहता है और वहा तरह-तरह की स्वादिष्ट चीजें खाता है, तो उसकी जीभ चटोरी हो जाती है। फिर छोटे गाँव मे उसे मजा नही आता। इसी प्रकार हे नाभिनन्दन ! मेरी आखें आपके रूप की चटोरी बन गई हैं। अब उन्हे किसी दूसरे को देखना नही सुहाता।

जिसने क्षीरसागर के मधुर जल का आस्वादन किया है, उसे साधारण समुद्र-लवणसमुद्र का पानी पसद नही आ सकता। इसी प्रकार जिसे भगवान् आदिनाथ की परमसौम्य वीतराग निर्विकार छवि निहारने का परम सौभाग्य प्राप्त हो गया, उसे किसी दूसरे का रूपसौन्दर्य आकर्षित नही कर सकता।

भगवान् की छवि अनूठी होती है। प्रधान और जगत् के सर्वोत्तम परमाणुओ से उनके शरीर का निर्माण होता है। अलौकिक दीप्ति देदीप्यमान उनका मुखमण्डल बडा ही सुहावना होता है। इस सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। हृदय की भावनाओ का भी चेहरे से घनिष्ठ सबध होता है। कहा भी है—

वक्त्रं वक्ति हि मानसम्।

अर्थात्—चेहरा मनोभावनाओ को बतला देता है।

अन्त करण मे,यदि प्रशस्त भावनाएँ हैं तो चेहरा सौम्य और सुन्दर होगा। उसे देखकर दूसरो को प्रसन्नता होगी। इसके विपरीत जिसके मन मे पाप भरा रहता है, जो निर्दय, क्रूर और कुटिल होता है, उसका चेहरा भी विकृत होता है। इस प्रकार अन्त करण की कलुषित भावनाएँ चेहरे को भी कलुषित कर देती है।

इस दृष्टि से विचार करे तो स्पस्ट ज्ञात हो जायगा कि भगवान जिनेन्द्र का चेहरा कितना भव्य, कितना प्रशस्त, कितना सौम्य और कितना मनमोहक न होगा ? जिनका चित्त अनन्त करुणा से ओतप्रोत हो और जिन्होने समस्त आन्तरिक विकारो का समूल उन्मूलन कर दिया हो, उनकी मनोहारिणी छवि को कोटि-कोटि जिह्वाएँ भी नही कह सकती। ऐसे भगवान ऋषभदेव है। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार हो !

भाइयो ! दर्शन शब्द बहुप्रचलित शब्द है। उसका अर्थ होता है देखना। कहा जा सकता है कि भगवान् के समकालीन भव्य जीव तो भगवान् की मुखमुद्रा का दर्शन करके अनन्त पुण्य का उपार्जन कर लेते थे, किन्तु आज भगवान् मौजूद नही है। हम किस प्रकार उनका दर्शन कर सकते ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि हाकिम चला जाता है, परन्तु उसका हुक्म कायम रहता है। वैद्यराज चल देते है परन्तु उनके नुस्खे विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार यद्यपि आज भगवान् नही हैं, तथापि भगवान् के सिद्धात, उनके उपदेश, आज भी शास्त्रो मे सुरक्षित हैं। भगवान का सिद्धान्त भी दर्शन कहलाता है। वह आपको और हम को सुलभ है। उसी के सहारे हम अपनी आत्मा का उत्थान कर सकते हैं।

भगवान जब स्वयं इस धरातल पर विराजमान थे, तब भी आपका हाथ पकड कर मोक्ष मे नही भेज सकते थे । उस समय भी भगवान् के उपदेश पर चलने से ही आत्मा का कल्याण हो सकता था । वही उपदेश आज भी हमे प्राप्त हैं । भगवान् के प्रति जिसके हृदय मे शुद्ध श्रद्धा है, जो भगवान द्वारा प्रदर्शित पथ को ही एक मात्र कल्याण का पथ मानते है, वे तो आज भी अपना कल्याण कर सकते है । अतएव भगवान का क्षरदेह (नाशवान् शरीर) न होने पर भी उनके अक्षरदेह से ही लाभ उठाना चाहिए और अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिए ।

दर्शन शब्द के अनेक अर्थ है । उनमे एक अर्थ श्रद्धान करना भी है । सम्यक् श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं । सम्यग्दर्शन मोक्ष-मार्ग की पहली सीढ़ी है । जब तक सम्यग्दर्शन नही होता तब तक न सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है और न सम्यक्चरित्र ही । सम्यग्दर्शन का स्वरूप शास्त्र मे इस प्रकार कहा है—

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इह सम्मत्तं मए गहियं ॥

अर्थात्-वीतराग देव ही मेरे आराध्य प्रभु हैं, पाच महाव्रतो का पालन करने वाले, निरारंभ, निष्परिग्रह सच्चे साधु ही मेरे गुरु हैं और जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित तत्त्व ही धर्म है इस प्रकार के सम्यग्दर्शन को मैं धारण करता हूं ।

अन्यत्र कहा है—

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।
वावण्ण-कुदंसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ॥

भाइयो ! प्रथम तो अनादिकालीन अज्ञान के कारण जीव को शुद्ध श्रद्धा प्राप्त होना ही कठीन है। इस ससार में अनेक प्रकार के मत-मतान्तर प्रचलित है तरह-तरह की मान्यताएँ फैली हुई हैं। उन सबसे बचकर शुद्ध सिद्धान्त को समझना और उस पर श्रद्धा करना बडा ही कठिन कार्य है। जब अन्तरग कारण पूर्ण रूप से मिल जाते हैं और बाह्य निमित्त उपस्थित हो जाते हैं तब, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन का अन्तरग कारण अनन्तानुबधी कषाय और दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम होता है। अनन्तानुबधी कषाय की चार प्रकृतियाँ है—क्रोध मान, माया और लोभ। तथा दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियाँ है-मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय। यह सात प्रकृतिया सम्यक्त्व की बाधक है। उनके सातो के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। क्षायिक सम्यक्त्व अतिशय निर्मल होता है और एक बार प्राप्त होने पर फिर कभी नष्ट नही होता। वह सादि अनन्त है।

मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का शान्त हो जाना उपशम कहलाता है। जैसे आग को राख मे ढँक देने पर वह ऊपर से शान्त हो जाती है किन्तु नष्ट नही हो जाती, उसी प्रकार उक्त सातो प्रकृतियो के उपशान्त होने पर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। वह औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। उपशान्त हुई मोह की प्रकृतियाँ थोडी ही देर उपशान्त रहती हैं। तत्पश्चात् उदय मे आ जाती हैं। इस कारण औपशमिक सम्यक्त्व की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है। अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् इस सम्यक्त्व का नाश हो जाता है।

सम्यग्दर्शन की महिमा यहाँ ध्यान देने योग्य है। यद्यपि यह सम्यक्त्व अडतालीस मिनिट से भी कम समय तक रहता है, तथापि

आत्मा पर ऐसा प्रभाव छोड जाता है कि वह जीव मिथ्यादृष्टि हो जाने पर भी अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल तक ही मिथ्यादृष्टि रहता है। इसके पश्चात् सम्यग्दृष्टि होकर मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

तीसरा मम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक है। पूर्वकथित सात प्रवृतियो मे मे कुछ का क्षय और कुछ का उपशम होने पर इस सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन का अन्तरग कारण मोहनीय कर्म का क्षय, उपशम और क्षयोपशम समझना चाहिए।

वहिरंग कारण अनेक प्रकार के हो सकते हैं। किसी को तीर्थंकर भगवान के दर्शन से, किसी को तीर्थ कर की वाणी श्रवण करने से किसी को तीथ कर का अतिशय देखने से, किसी को निर्ग्रन्थ साधु के दर्शन या उपदेश से, किसी को जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होने से, किसी को वेदना के अनुभव से और किसी को और ही किसी कारण से सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है। पर यह ध्यान मे रखना चाहिए कि अन्तरग निमित्त मिले विना अकेले वहिरग कारण से सम्यक्त्व का लाभ कदापि नही हो सकता। सम्यक्त्व पाने के लिए अनन्तानुवधी कषाय को जीतना ही होगा और दर्शन मोहनीय को भी क्षीण या उपशान्त करना होगा।

भाइयो! इस प्रकार से प्राप्त हुआ सम्यक्त्व अपूर्व प्रभावशाली होता है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि सम्यक्त्व के अभाव मे, कितना ही ज्ञान क्यो न हो, मिथ्याज्ञान ही रहता है। कठोर से कठोर तपश्चर्या भी ससार का ही कारण होती है। सम्यक्त्व का उदय होते ही ज्ञान और चारित्र सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के रूप मे परिणत हो जाते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव यदि चारित्र की आराधना न करे तो भी वह नरकगति, और तिर्यञ्चगति की आयु नही बांधता। वैमानिक निकाय के अतिरिक्त अन्य देवनिकायो मे भी जन्म नही लेता। दुष्कुल में उत्पन्न न होकर सुकुल मे उत्पन्न होता है। अल्पायुष्क नही होता। आशय यह है कि सम्यक्त्व के प्रभाव से जीव आगामी भव मे सद्गति का और उच्च स्थिति का अधिकारी बनता है। कहा भी है.—

अन्तर्मुहूर्त्तमपि यः समुपास्य जन्तुः,
सम्यक्त्वरत्नममलं विजहाति सद्यः।
बम्भ्रम्यते भवपथे सुचिरं न कोऽपि,
तद् बिभ्रतश्चिरतरं किमुदीरयामः॥

अर्थात्–जो जीव अन्तर्मुहूर्त्त के लिए भी निर्मल सम्यक्त्व रूपी रत्न की उपासना करके, शीघ्र ही उसे त्याग देता है, वह भी चिरकाल तक ससार रूपी अटवी मे नही भटकता है। ऐसी स्थिति मे लम्बे समय तक सम्यक्त्व को धारण करने वालो का तो कहना ही क्या है ? वे तो शीघ्र ही समस्त दुःखो से मुक्त हो जाते हैं। और भी कहा है :—

विनैकमंकं शून्यगणा वृथा यथा,
विनाऽर्कतेजो नयने वृथा यथा।
विना सुवृष्टिं च कृषिर्वृथा यथा,
विना सुदृष्टिं विपुलं तपस्तथा॥

अगर आपने एक, दो, तीन, चार, पाँच या और भी ज्यादा

बिंदियाँ लगा दी, किन्तु एका नही लगाया तो उन बिंदियो का क्या मूल्य है ? वह किसी गिनती मे नही आ सकती। तो एका के विना शून्य-राशि व्यर्थ है । इसीप्रकार आँखो के बिना सूर्य का तेज व्यर्थ है । मध्याह्न का सूर्य भले तप रहा हो, मगर आँखो मे तेज न होगा तो वह किस काम का ? इसी तरह किसान बीज बो दे किन्तु अनुकूल वर्षा न हो तो वह कृषि व्यर्थ हो जाती है । ठीक इसी प्रकार यदि सम्यग्यदर्शन प्राप्त नही हुआ है तो घोर से घोर तप भी मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से बिलकुल बेकार है । अर्थात सम्यग्यदर्शन के अभाव मे मोक्ष की मजिल एक भी कदम नजदीक नही आती हैं ।

यही कारण है कि आचार्यो ने बडे ही महत्त्व पूर्ण और सुन्दर शब्दो मे सम्यक्त्व का महत्त्व प्रकट किया है । एक आचार्य कहते हैं --

अप्राप्ते बोधिरत्ने हि, चक्रवर्त्यपि रङ्कवत ।
सम्प्राप्ते बोधिरत्ने तु, रंकोऽपि स्याततोऽधिक ॥

चक्रवृत्ती चौदह असाधारण रत्नो का स्वामी होता है परन्तु उसे अगर सम्यक्त्व रूपी रत्न प्राप्त नही है तो उसके वह चौदहो रत्न व्यर्थ हैं । वह चौदह रत्नो नौ निधियो और सम्पूर्ण भरतक्षेत्र का अधिपति होने पर भी रक दीन हीन और गरीब के समान है इनके विपरीत जिसे सम्यक्त्व रूपी रत्न प्राप्त है, वह पौद्गलिक दृष्टकोण से रक होने पर भी आन्तरिक वैभव की अपेक्षा चक्रवर्ती से भी बढा चढा है । चक्रवर्ती भी सम्यग्दृष्टि रक के सामने तुच्छ है । दूसरे आचार्य कहते है--

वरं नरकवासोऽपि, सम्यक्त्वेन समायुत! ।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य, निवासो दिवि राजते ॥

सम्यक्त्व से युक्त होकर नरक में निवास करना अच्छा, किन्तु सम्यक्त्व से रहित होकर स्वर्ग मे निवास करना ही अच्छा नही है !

इन सब उल्लेखो से स्पष्ट है कि सम्यक्त्व धर्म की प्रथम सीढी है। सम्यक्त्व के अभाव मे कोई कैसी भी कठोर क्रिया क्यो न करे, किसी भी वेष को धारण क्यो न कर ले, भव सागर से उसका निस्तार नही हो सकता।

जब अन्तरग मे सम्यक्त्व की अभीव्यक्ति होती है तो अन्तानुबधी कषाय नही रहता। इस कषाय का विनाश होने से आत्मा मे अपूर्वशान्ति उदित होती है। क्रोध, मान, माया और लोभ की तीव्रतम स्थिति का अन्त आ जाता हैं। समभाव जागृत हो जाता है ऐसा जीव चाहे पापो का त्याग न करे, फिर भी वह उन्हे त्याज्य अवश्य समझने लगता है। उसे हेय-उपादेय का विवेक हो जाता है सासार को त्याज्य और मोक्ष को उपादेय मानने लगता है। उसका विभ्रम नष्ट हो जाता है। दृष्टि निर्मल हो जाती है। आत्मा मे अपूर्व ज्योति जागने लगती है। सम, सवेग, निर्वेद, अनुकपा और आस्तिक्य प्रकट हो जाते है। वह प्राणी मात्र पर अनुकम्पा का भाव धारण करता हैं। स्वर्ग-नरक, पुण्य-पाप, और आत्मा-परमात्मा पर उसको प्रगाढ प्रतीति हो जाती है। सम्यग्दृष्टि मे अनिवार्य रूप से यह पाच लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकार के होते हैं। कोई बड़े विचक्षण, तत्त्वज्ञ, वादविवाद मे मिथ्यावियो को पराजित करने वाले और अपने सिद्धात पर सुमेरु की तरह अटल होते हैं। कोई-कोई अज्ञानी, भोले और कच्ची बुद्धि के भी होते हैं। वे मिथ्यादृष्टियो ससर्ग मे, आकर अपने सम्यक्त्व-रत्न को गवा न दें, इस अभि-

प्राय से यह आवश्यक समझा जाता है कि वे मिथ्यात्वी जनो के सम्पर्क से बचते रहें। उनके साथ अत्यन्त घनिष्ठता-अपनापन स्थापित न करें। क्योकि—

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।

अर्थात्--सगति से दोष भी उत्पन्न होते हैं और गुण भी उत्पन्न होते हैं दोषी की सगति से दोष और गुणी की सगति से गुण आते हैं।

जो स्वय श्रद्धाभ्रष्ट है वह आप भी डूबेगा और दूसरो को भी ले डूबेगा। श्रद्धाहीन सोचता है-ईश्वर नही नरक और स्वर्ग नही, तथा पुण्य और पाप भी नही है! मगर उसकी समझ मे यह सब न होने से ही इनका अभाव नही हो जाता। अन्त मे उसे अपनी कुश्रद्धा का कुफल भुगतना पडेगा। वह परलोक मे दुखी होगा। उसे पश्चात्ताप करना पड़ेगा कि हाय, मैंने सदगुरुओ की बात न मानी और अपनी हेकडी मे ही मस्त रहा! अब कौन मुझे यमदूतो की ताडना से बचाएगा?

भाइयो! विश्वास बहुत बडी चीज है। सस्कृत भाषा मे एक उक्ति है--'विश्वास फलदायक:' अर्थात विश्वास रखने से ही फल की प्राप्ति होती है। जिसको धर्म,ईश्वर और गुरु पर विश्वास नही है, वह मनुष्य किस काम का है? औरतो मे ही देख लो कि जो स्त्री एक अपने पति पर ही विश्वास करती है उसके बच्चा बच्ची होते हैं और सब ठाठ लगा रहता हैं किन्तु वेश्याएँ अनेक पति करके भी एक सन्तान नही पा सकती, क्योकि उनके हृदय मे विश्वास नही है।

गीता मे कहा है,—

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम् ।

अर्थात–ज्ञान उसी को प्राप्त होता है, जो शुद्ध श्रद्धा वाला होता है

अब यह बात स्पष्ट है कि सबसे बडी श्रद्धा है। जिसके अन्त करण मे देव, गुरु और धर्म के प्रति श्रद्धा है। उसका कल्याण होता हैं और यदि श्रद्धा नही है तो कल्याण भी नही हो सकता। शास्त्र मे कहा है :—

नादंसणिस्स नाणं णाणेण विणा न होन्ति चरण गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं

—श्रीउत्तराध्ययन, अ. २८

अर्थात— जिसके सम्यग्यदर्शन नही है, उसे ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नही हो सकते। चारित्र गुण के अभाव में आत्मा के साथ बद्ध कर्म अलग नही हो सकते और कर्मो के अलग हुए बिना निर्वाण की प्राप्ति सँभव नही है।

सम्यग्दर्शन के सबध मे शास्त्रो मे बहुत विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। उस सबको कहने का समय नही है। तथापि आपके सामने जो मुख्य-मुख्य और मूलभूत बाते रखी गई हैं, उन्हे ध्यान मे रखते हुए आपको अपनी आत्मा टटोलनी है। आपको देखना है शास्त्रोक्त सम्यक्त्व आप मे है अथवा नही ? यो तो किसी न किसी सन्त-मुनिराज से आपने समकित ग्रहण की होगी किन्तु मैं असली समकित की बात कह रहा हू। आपकी ली हुई •••त व्यवहार-समकित है। वह तभी सफल और सार्थक हो ... है, जब आपको निश्चयसम्यक्त्व प्राप्त हो जाय।

जैसा कि ऊपर के कथन से स्पष्ट है, समकित लेने और देने की वस्तु नहीं है। न कोई किसी को सम्यग्दर्शन दे सकता है, न कोई किसी से ले सकता है। वह तो अनन्तानुबंधी और दर्शनमोह का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम होने पर ही प्राप्त हो सकती है। अतएव अगर आपके अन्तःकरण में एक वर्ष से अधिक कषाय नहीं ठहरता है और समभाव, अनुकम्पा आदि प्रकट हो गये हैं, तो आपको समकित प्राप्त हो गया, यह माना जा सकता है। अगर आपके हृदय में कषाय की तीव्रतम ज्वालाएँ निकलती रहती हैं, आपके दिल में दया नहीं है, आपको संसार त्याज्य प्रतीत नहीं होता, गृहस्थी में रहते हुए भी संसार से आपकी मनोवृत्ति अलिप्त नहीं है, अगर आपकी वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामय जैनधर्म पर सुदृढ आस्था नहीं है और तत्त्व पर श्रद्धा नहीं है, तो समझना चाहिए कि आपका अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करना शेष है। आप भले ही जैनकुल में उत्पन्न हुए हैं और लोकाचार के अनुसार या कुलपरम्परा का निर्वाह करने के लिए कोई क्रिया करते हो मगर वह क्रिया मोक्षमार्ग की गणना में नहीं आएगी।

भाइयो! मेरे कहने का अर्थ उलटा मत लेना। मेरा आशय यह नहीं है कि आप व्यवहार से जो क्रियाएँ कर रहे हैं, उनका त्याग कर दें। मेरे कहने का आशय यह है कि अगर आप में वास्तविक सम्यक्त्व के लक्षण नहीं है तो उन्हें प्राप्त करें। क्योंकि सम्यग्दर्शन के अभाव में ऊपरी क्रियाएँ मृतक शरीर को सजाने के समान है। जिस शरीर में प्राण होते हैं, उसी का शृंगार शोभा देता है। अतएव आप सम्यग्दर्शन रूपी प्राण को जागृत करें। तभी आपका अनुष्ठान फलदायी होगा।

जिसकी अन्तरात्मा शुद्ध श्रद्धा से जगमगा रही होगी, वह

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम् ।

अर्थात-ज्ञान उसी को प्राप्त होता है, जो शूद्ध श्रद्धा वाला होता है

अब यह बात स्पष्ट है कि सबसे बडी श्रद्धा है। जिसके अन्त करण मे देव, गुरु और धर्म के प्रति श्रद्धा है। उसका कल्याण होता है और यदि श्रद्धा नही है तो कल्याण भी नही हो सकता। शास्त्र मे कहा है :—

नादंसणिस्स नाणं णाणेण विणा न होन्ति चरण गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं

—श्रीउत्तराध्ययन, अ. २८

अर्थात— जिसके सम्यग्यदर्शन नही है, उसे ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नही हो सकते। चारित्र गुण के अभाव मे आत्मा के साथ बद्ध कर्म अलग नही हो सकते और कर्मो के अलग हुए बिना निर्वाण की प्राप्ति सँभव नही है।

सम्यग्दर्शन के सबध मे शास्त्रो मे बहुत विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। उन सबको कहने का समय नही है। तथापि आपके सामने जो मुख्य-मुख्य और मूलभूत बाते रखी गई हैं, उन्हे ध्यान मे रखते हुए आपको अपनी आत्मा टटोलनी है। आपको देखना है शास्त्रोक्त सम्यक्त्व आप मे है अथवा नही ? यो तो किसी न किसी सन्त-मुनिराज से आपने समकित ग्रहण की होगी किन्तु मैं असली समकित की बात कह रहा हू। आपकी ली हुई समकित व्यवहार--समकित है। वह तभी सफल और सार्थक हो सकती है, जब आपको निश्चयसम्यक्त्व प्राप्त हो जाय।

जैसा कि ऊपर के कथन से स्पष्ट है, समकित लेने और देने की वस्तु नही ह । न कोई किसी को सम्यग्दर्शन दे सकता है, न कोई किसी से ले पकता है । वह तो अनन्तानुवंधी और दर्शनमोह का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम होने पर ही प्राप्त हो सकती है । अतएव अगर आपके अन्त करण मे एक वर्ष से अधिक कषाय नही ठहरता है और समभाव, अनुकम्पा आदि प्रकट हो गये हैं, तो आपको समकित प्राप्त हो गया, यह माना जा सकता है । अगर आपके हृदय से कषाय की तीव्रतम ज्वालाएँ निकलती रहती हैं, आपके दिल मे दया नही है, आपको ससार त्याज्य प्रतीत नही होता, ग्रहस्थी मे रहते हुए भी ससार से आपकी मनोवृत्ति अलिप्त नही है, अगर आपको वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामय जैनधर्म पर सुदृढ आस्था नही है और तत्त्व पर श्रद्धा नही है, तो समझना चाहिए कि आपको अभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करना शेष है । आप भले ही जैनकुल मे उत्पन्न हुए हैं और लोकाचार के अनुसार या कुल परम्परा का निर्वाह करने के लिए कोई क्रिया करते हो, मगर वह क्रिया मोक्षमार्ग की गणना मे नही आएगी ।

भाइयो ! मेरे कहने का अर्थ उलटा मत लेना । मेरा आशय यह नही है कि आप व्यवहार से जो क्रियाएँ कर रहे हैं, उनका त्याग कर दें। मेरे कहने का आशय यह है कि अगर आप मे वास्तविक सम्यक्त्व के लक्षण नही है तो उन्हे प्राप्त करें । क्योकि सम्यग्दर्शन के अभाव मे ऊपरी क्रियाएँ मृतक शरीर को सजाने के समान है । जिस शरीर मे प्राण होते हैं, उसी का शृगार शोभा देता है । अतएव आप सम्यग्दर्शन रूपी प्राण को जागृत करें । तभी आपका अनुष्ठान फलदायी होगा ।

जिसकी अन्तरात्मा शुद्ध श्रद्धा से जगमगा रही होगी, वह

परमात्मा के अतिरिक्त किसी भूत, पिशाच आदि को तथा कुदेवो को मस्तक नही झुकाएगा। इसी प्रकार कुगुरु के आगे नही झुकेगा। भय से, आशा से, अनुराग से या लोभ-लालच से किसी को धर्म भाव से सिर नही नमाएगा। वह तो यही समझेगा कि परमात्मा ही सब से बडे हैं।

किसी किसी के दिमाग मे नाना प्रकार के तर्क वितर्क शकाएँ और प्रशकाएँ उठती रहती है। वह सोचता है-कौन जाने परलोक है या नही ? नरक और स्वर्ग है अथवा नही ? लोगो को ठगने के लिए ही तो यह सब कल्पनाएँ नही कर डाली गई हैं ? इस प्रकार का सशय जिसके मस्तिष्क मे बना रहता है, उसकी अन्तरात्मा शुद्ध नही है और वह कभी दृढता के साथ आत्मा के कल्याण की ओर अग्रसर नही हो सकता। उसकी शुद्ध श्रद्धा इस प्रकार के सदेहो के कारण नष्ट हो जाती है।

एक आचार्य के चार चेले थे। सब से छोटा चेला बच्चा ही था। अत: आचार्य उस पर विशेष प्रीति रखते थे। चार चेलो मे से एक चेला बीमार हो गया। आचार्य ने उसकी चिकित्सा की व्यवस्था की, परन्तु कोई विशेष लाभ होता न दिखाई दिया। तब बीमार चेला बोला--गुरुजी, यह चोला तो आखिर बदलना ही पडेगा। ऐसी स्थिति मे औषध आदि के प्रपच मे पडने से कोई लाभ नही हैं। हजार वैद्य भी आयु पूर्ण होने पर मनुष्य को बचाने में समर्थ नही हो सकते।

राजा स्नान करके नूतन, सुन्दर और मूल्यवान् वस्त्रो से अलकृत होकर, आभूषणो से भूषित होकर, सोने की मूठ वाली तलवार हाथ मे लेकर अभिमान के साथ कहता है, यह सारी पृथ्वी मेरी है। तब यह पृथ्वी उसका उपहास करती है और मानो कहती

है-अरे ढेले। मुझमे मिलने वाले। तू क्या घमण्ड करता है। तेरे जैसे असख्य-अनन्त भूपति मेरे उदर मे समा गये हैं।

भाइयो! इस धराधाम पर कैसे-कैसे नामी राजा महाराजा, सम्राट्, अर्धचक्रवर्त्ती और चक्रवर्त्ती हो चुके हैं? जिनके नाम की ऐसी धाक थी कि शत्रुगण काप उठते थे। जिनके प्रताप के आगे सूर्य का प्रताप भी फीका पड़ा था। भाट और चारण जिनकी बिरुदावली बखानते नहीं थकते थे। वे आज कहां है? है उनकी कहीं खोज? इस विशाल भूतल पर आज उनका एक भी चिह्न नजर नहीं आता। कोई नहीं जानता कि वे किस राह से कहा चल दिये हैं? सदैव अतृप्त रहने वाले पृथ्वी के इस उदर में उनको समा जाना पड़ा। उनमें से कोई भी पृथ्वी को अपने साथ नहीं ले जा सकता। अरे, अपना निज का शरीर भी जो छोड़कर जाता है, वह दुनिया की अन्य वस्तुए कैसे साथ ले जाए?

बीमार पड़ने पर इलाज कराओ और वैद्यों को बुलाओ तो मौत हस कर कहती है-अब तो मैं आ गई हूँ। इजेक्शन लग ने से क्या लाभ होगा? अजमेर से डाक्टर साहब आ रहे थे, तब मौत ने कहा-मैं तुम्हें वहा पहुँचने न दू गी। तुम्हारे पहुचने से पहले ही रोगी को खत्म कर दू गी।

पुरुष अगर अपनी पत्नी को दुराचारिणी समझता है तो उसकी निगरानी रखता है। मगर वह पत्नी अपने पति की इस चेष्टा का उपहास करती है और मन ही मन कहती है-कहा तक और कब तक तुम मेरी निगरानी रक्खोगे। तुम अभी भोजन करके दुकान पर चले जाओगे मैं रहूँगी तो अपने धर्म से रहूँगी। सतीत्व का पालन करूंगी तो अन्तरात्मा से करू गी। तुम्हारी निगरानी काम नहीं आ सकती।

मूंजी अपनी पूंजी को जमीन मे गाड कर रखता है और रात-दिन उसकी रक्षा के लिए चिन्तित रहता हैं। सोचता है-कहीं ऐसा न हो कि बड़े कष्ट से उपार्जित की हुई यह लक्ष्मी कहीं चली न जाय ! इसे चोर न चुरा ले जायं। इस प्रकार निरन्तर चिन्ताकुल रहने वाले उस लोभी धनिक को देखकर लक्ष्मी उपहास करती है। वह मानों ताना मारती है सब गाड़ गाड कर रक्खे जा। गहरे गड्हे में दबा दे। अनेक मजबूत ताले लगा कर तिजोरी में बंद किये रख। किन्तु मैं तेरे साथ जाने वाली नहीं। तू गाड कर रखने का परिश्रम कर रहा है, मगर खोदने वाला कोई और ही होगा। तिजोरी का मालिक तो दूसरा ही बनेगा।

कृपण समझता है—यह पगडी त्यौहार के दिन बांधूंगा, किन्तु उसे पता नहीं कि वह रक्खी रह जाएगी और कृपण अपनी महायात्रा के लिए प्रस्थान कर देगा।

हां, तो वह चेला अपने गुरुजी से कहने लगा—अब आप इस शरीर की चिन्ता छोड़ दीजिए और मुझे परमात्मा का नाम सुनाइए। पंच नमस्कार मंत्र का पाठ सुनकर ही मेरा जीवन सफल होगा। मै इस शरीर के अपनेपन का त्याग करना चाहता हूँ। इससे कोई सरोकार रखने की मेरी इच्छा नहीं है। तब तक संयम निर्वाह में यह सहायक और उपकारक था, तब तक इसका पालन-पोषण और रक्षण किया। अब उसने जवाब दे दिया है तो मुझे भी इससे गरज नहीं है। अतएव मैं अन्न पानी का त्याग करके इस जीवन की चरमसाधना करना चाहता हूँ—अर्थात् समाधि ग्रहण करना चाहता हूँ।

आखिर यही हुआ। चेले ने समाधिमरण अंगीकार कर या।

गुरु ने कहा—देखो शिष्य जो साधु जीवन व्यतीत करते हैं, व्रतों और नियमों का शास्त्रानुकूल पालन करते हैं और अन्त में समाधि के साथ शरीर का त्याग करते हैं, उन्हें देवलोक मिलता है। इस आधार पर समझा जा सकता है कि तुम भी स्वर्ग में जाओगे। जब वहां जाओ तो एक बार मेरे पास अवश्य आना और कह जाना कि तुम वहां किस स्थिति में हो ?

चेला बोला—जैसी आपकी आज्ञा महाराज।

चेला शरीर त्याग कर चल दिया। दिन बीते, सप्ताह गुजरे और आखिर कई मास भी आकर चले गये। गुरुजी अत्यन्त उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे। मगर उन्हें निराश होना पड़ा। शिष्य की आत्मा लौट कर नहीं आई। यह देख गुरुजी विचार मे डूब गये। आखिर चेले ने आकर कुछ भी समाचार नहीं दिये। इसका क्या कारण हो सकता है ? वह तुरन्त लौट कर मिलने को कह गया था।

गुरुजी विचार में ही थे कि संयोगवशात् दूसरा चेला भी बीमार हो गया। उसे भी अन्तिम समय में गुरुजी ने सथारा कराया और उसे आग्रहपूर्वक कह दिया—तू अवश्य वापिस आकर मुझ से मिलना।

उसने कहा—गुरुजी, जरूर आऊंगा।

मगर वह भी नहीं लौटा। गुरुजी का मन पहले ही डगमग होने लगा था। अब उसमे अधिक चंचलता आ गई।

मगर यहीं समाप्ति नहीं हुई। तीसरा चेला भी एक बार बीमार हो गया। उसकी बीमारी ने भी असाध्य रूप ग्रहण कर

लिया। उसे भी गुरुजी ने वही कहा। पर दैवयोग से वह भी लौट कर नहीं आया।

गुरुजी व्यग्र और चिन्तित से रहने लगे। कुछ समय व्यतीत हुआ कि सब से छोटा चेला भी एक दिन रुग्ण हो गया। उसने भी शुद्ध श्रद्धा के साथ परमात्मा का नामकीर्तन करते हुए शरीर का त्याग किया। वह भी स्वर्ग से देव के रूप में उत्पन्न हुआ। किन्तु वह भी गुरुजी के पास समाचार देने नहीं आया।

इस प्रकार चारों चेले चल बसे, परन्तु किसी ने भी अपने गुरुजी की सुधि नहीं ली। इसका गुरुजी के मन पर गहरा प्रभाव पडा। तरह-तरह के सकल्प विकल्प उनके मन मे उत्पन्न और विलीन होने लगे। अन्त मे उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि वास्तव मे स्वर्ग है ही नहीं। स्वर्ग का अस्तित्व होता तो चार चेलों मे से कोई तो आकर कहता। और जब स्वर्ग नहीं तो नरक भी नहीं है। स्वर्ग और नरक की प्ररूपणा करने वाले शास्त्र भी मिथ्या है। यह शरीर पंच भूतों का पुतला है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच तत्त्वों से इसका निर्माण हुआ है। इन्हीं के संयोग से चेतना का आविर्भाव हो गया है। जब यह पाच तत्त्व बिखर जाते हैं तो चेतना भी नष्ट हो जाती है। कोई अलग आत्मा नहीं है। परलोक जाने वाला कोई तत्त्व ही नहीं तो परलोक कहा से आएगा।

गुरुजी सोचते हैं—हाय, इतने वर्षों से व्यर्थ ही लोच कर करके कष्ट पा रहा हूँ! वृथा ही ओघा हिला रहा हूँ। किसी ने भी कह दिया, सब सहन करता आ रहा हूँ। किन्तु इसका परिणाम क्या है? कुछ भी तो नहीं।

यह मुनि पश्चात्ताप करने लगे—निष्प्रयोजन ही मैंने पत्नी का परित्याग किया। घर-गृहस्थी छोड़ी। ससार के प्राप्त सुखों का परित्याग किया। मैंने पहले ही विचार क्यों नहीं किया—

हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया।
को जाणइ परे लोए, अत्थि वा नत्थि वा पुणो॥

उत्तराध्ययन अ. ५-६

अरे! भविष्य के स्वर्ग के सुखों की लालसा में पड़कर हाथ आये सुखों का त्याग करना योग्य नहीं है। कौन जाने परलोक है भी या नहीं?

काश! मैं पहले यह समझ गया होता तो क्यों अपनी जिंदगी वर्बाद करता? मै छला गया! साधु बन कर जीवन का उत्तम काल मैंने बेकार कर दिया। खैर, कहावत है—

यदतीतमतीतमेव तत्।

अर्थात्—जो गया सो गया। जो चला गया है, वह वापिस आने वाला नहीं है। जो शेष है, उसका ही सदुपयोग करना चाहिए। जितनी उम्र बच गई है, उसमें जितना सुख भोगा जा सके, भ ग लेना चाहिए।

भाइयो! जब श्रद्धा बिगड़ जाती है तो सभी त्याग-पच्चक्खाण टूट जाते हैं। इन गुरुजी का नाम अषाढ़ भूति था। जब तक इनकी श्रद्धा शुद्ध थी तब तक निर्मल सयम का पालन कर रहे थे, अब श्रद्धा दूषित हो गई तो त्याग-प्रत्याख्यान आदि सभी क्रियाएं गड़बड़ में पड़ गई—किसी का ठिकाना नहीं रहा।

संसार का अधिकांश व्यवहार भी विश्वास पर ही चल रहा है। विश्वास के अभाव मे जगत् का काम क्षण भर भी नही चल सकता। थोड़ी देर के लिए कल्पना कीजिए कि पति को पत्नी पर कतई विश्वास नहीं है, पत्नी को पति पर विश्वास नहीं, सेवक को स्वामी पर और स्वामी को सेवक पर, सन्तान को माता-पिता पर माता पिता को अपनी सन्तान पर, और प्रजा को शासक पर विश्वास न रहे तो इस जगत् की क्या स्थिति होगी ? पति सोचता रहे कि मेरी पत्नी न जाने कब मुझे जहर दे देगी। पत्नी सोचा करे कि पति न मालूम कब मेरी हत्या कर डालेगा। ऐसी स्थिति में उनका खाना, पीना और सोना भी हराम हो जायगा। दुनिया चार दिन भी न चल सकेगी। किन्तु विश्वास के आधार पर विश्व की व्यवस्था चल रही है।

भाइयो ! संसार-व्यवहार विश्वास के बल पर चलाते हो तो धर्मव्यवहार में विश्वास को क्यों शिथिल होने देते हो ? संसार-व्यवहार श्रद्धा के बिना चलना असभव है तो धर्मव्यवहार कैसे सभव हो सकता है ? बल्कि धर्म के संबंध में तो संसारव्यवहार की अपेक्षा भी अधिक श्रद्धा की आवश्यकता है।

इस देश की बहिनों में आज भी कैसा जीता-जागता विश्वास देखा जाता है। वे एक ही पति पर निर्भर रहती है। उनकी विद्यमानता मे भी अविद्यमानता में भी वे उसी की होकर रहती हैं। दूसरे देशों मे यह बात नहीं है। एक बार एक घटना सुनने मे आई थी। कोई अगरेज मर गया तो उसे कब्र खोद कर दफना दिया गया। उसकी मेम उस कब्र पर पंखा कर रही थी। उधर से कोई हिन्दुस्तानी निकला तो उसने सोचा—लोग कहते हैं कि विलायत मे पतिव्रत धर्म बहुत शिथित है। परन्तु इस रमणी को देखो जो अपने

पति की कब्र पर पखा कर रही है। अहा ! कैसी पतिपरायणा नारी है। सोचती होगी—नीचे हवा नहीं पहुँचती तो मैं हवा करके अपने पति को शान्ति पहुंचाऊ। धन्य है यह सती नारी। इस देश मे भी ऐसी स्त्रिया मौजूद हैं।

हिन्दुस्तानी के हृदय में उस रमणी के प्रति बडी श्रद्धा जागृत हुई। वह उसके पास पहुँचा और बोला—आप क्या कर रही हैं ?

रमणी ने उत्तर दिया—मेरे पति कह गये थे कि जब तक मेरी कब्र न सूखे, तब तक दूसरी शादी न करना। कब्र के सूखने मे देरी मालूम हुई तो हवा करके इसे सुखा रही हू। सोचती हूँ—कब्र कब सूखे और कब मे दूसरी शादी करु।

हिन्दुस्तानी भाई यह उत्तर सुनकर विस्मित रह गये। उनके अन्त करण में जो आदर का भाव उत्पन्न हुआ था, वह सहसा विलीन हो गया और उसके स्थान पर घृणा एव धिक्कार की भावना उत्पन्न हुई।

भाइयो। तुम गोरी चमडी वालों का अच्छा समझते हो, उन्हें आदर्श मानते हो और बात-बात में उसका ही अनुकरण करना पसद करते हो, परन्तु उनका यह हाल है। वे ऐसे मर्यादाहीन हैं। उन्हें धर्म के प्रति विश्वास नहीं है।

हा, तो मुनि की श्रद्धा डावाडोल हो गई। उनके विचार बदल गए। निश्चय कर लिया कि अब साधुजीवन के कष्टों को भोगना वृथा है। जो भूल हो चुकी है, उसे शीघ्र से शीघ्र सुधार लेने मे ही कल्याण है।

मुनि ने फिर सोचा—अभी साधु का वेष त्याग दूंगा तो रास्ते मे रोटी के लाले पड जाएंगे। यह मुहपत्ती माता है। इसी की बदौलत पेटपूर्त्ति होती हैं। यह न रही तो कौन पूछेगा ? घर तक पहुँचना भी कठिन हो जायगा। अतएव रास्ते मे यही साधुवेष रखना उचित है। घर या घर के निकट पहुँच कर इसे उतार फैंकूँगा।

इस प्रकार निश्चय करके मुनि अपने घर की ओर रवाना हुए। इस घटना से उनके विशिष्ट प्रीतिपात्र चौथे चेले का आसन कम्पायमान हुआ। वह देव हुआ था। देवों को जन्म से ही अवधिज्ञान होता है। देवता ने अपने आसन के कांपने का कारण जानने के लिए अवधिज्ञान का उपयोग किया तो उसे मालूम हुआ—मेरे पूर्वभव के गुरुजी मिथ्यादृष्टि हो गए हैं और घर की ओर जा रहे हैं। उन्होंने इतने शास्त्र पढे, किन्तु उन्हें यह भी याद नहीं आ रहा कि देवलोक में, दो घडी के नाटक में ही हजारों वर्ष पूरे हो जाते हैं। तब कोई कैसे आकर मिल सकता है ? अत्यन्त खेद की बात है कि गुरुजी की समझ में इतना फर्क आ गया। लेकिन उनके श्रद्धाभ्रंश का निमित्त उनके शिष्य हैं जिनमे मैं भी एक हूँ। गुरुजी के अनुग्रह से मुझे संयम की महान् निधि प्राप्त हुई थी और उसके प्रताप से आज मैं देवलोक मे स्वर्गीय सुखों का स्वामी बन सका हूँ। यह सब गुरुजी का ही उपकार है। वे मुझे संयम के मार्ग पर अग्रसर न करते और संयमपालन मे सहायक न बनते तो आज मै न जाने किस योनि मे पडा सड रहा होता। इस प्रकार उन्होंने मेरा बडा उपकार किया है तो मुझे इस अवसर पर उसका बदला चुकाना चाहिए। गुरुजी को पतन से बचाना चाहिए।

गुरुजी जिस मार्ग से जा रहे थे, उसी मार्ग मे, कुछ आगे एक जंगल पडता था। देव ने जंगल मे जाकर एक अतिशय रम्य

विशाल एव दिव्य मडप बनाया और उसमे एक सुन्दर नाटकघर का निर्माण किया। देवता नाठक करने लगा।

भाइयो! देवों को हम लोगों की तरह काम नहीं करना पडता। उनको वैक्रियलब्धि प्राप्त होती है। इस लब्धि के प्रताप से वे जैसी चाहे वैसी रचना आनन-फानन मे कर डालते हैं। उनके लिये बडे से बडा काम चुटकियों का खेल है।

आप सोचते होंगे कि देवता तो अकेला आया था और अकेले से नाटक नहीं हो सकता। नाटक के लिए अनेक पात्र चाहिए। फिर उसने नाटक खेलना कैसे आरम्भ कर दिया? इस शका का समाधान यह है कि देव अपनी विक्रियालब्धि के प्रभाव से एक साथ अनेक शरीरों की रचना कर सकते हैं। इस देवता ने भी अनेक शरीर भिन्न-भिन्न प्रकार के धारण किये और नाटक खेलने लगा। यही नहीं, उसने अपनी विक्रियाशक्ति से हजारों दर्शकों की भी रचना कर ली। झुड के झुड नर और नारीवर्ग दर्शक के रूप मे आ रहे थे। अच्छी खासी चहलपहल मची हुई थी।

गुरुजी नाट्यगृह के समीप पहुँचे तो उनका भी नाटक देखने को मन ललचा उठा। विचारधारा बदल चुकी थी। उन्होंने सोचा-अब मैं वास्तव मे साधु नहीं हूँ। केवल साधु का वेष पहन रक्खा है, परन्तु साधु का वेष होने से ही कोई साधु नही होता। फिर यहा कोई जान-पहचान वाला भी नहीं है। अवसर मिल गया है तो क्यों चूकू। इस नाटक को देखकर ही आगे चलूंगा। जाना तो है ही।

ऐसा सोच कर गुरुजी भी नाटकगृह मे प्रविष्ट हो गए और एक स्थान पर बैठ कर नाटक देखने लगे।

नाटक छह महीने तक लगातार चलता रहा। देवता ने गुरुजी के शरीर में ऐसे कुछ पुद्गल डाल दिये कि इतने लम्बे समय तक उन्हें भूख-प्यास की बाधा नहीं हुई। आज भी आबू और हिमालय पहाडों में ऐसे-ऐसे कंद विद्यमान सुने जाते हैं कि जिन्हें एक बार खा लिया जाय तो १५ दिनों तक भूख नहीं लगती।

यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा आहार करके उपवास तपस्या करने का कोई फल नहीं होता। इसी कारण जैन मुनि ऐसा नहीं करते।

हां, तो छह महीने में नाटक समाप्त हुआ। गुरुजी का दिल ठिकाने नहीं आया। उन्हें पता ही नहीं चला कि नाटक देखते-देखते आधा वर्ष व्यतीत हो गया है।

देवता ने विचार किया—जब गुरुजी को छह महीने किस प्रकार व्यतीत हो गए, यह पता नहीं चला तो देवलोक के नाटक में हजारों वर्ष पूरे हो जाएं और पता न चले, यह कौन बडी बात है! अब देखना चाहिए कि गुरुजी के हृदय में करुणा की कितनी मात्रा अवशेष है?

भाइयो! करुणा का अर्थ है दया। भाव दया अरूपी मनोभाव है। अवधि ज्ञान से उसका पता नहीं चलता, क्यों कि वह ज्ञान रूपी पदार्थों को ही जान सकता है, अरूपी को नहीं।

चेला देव ने गुरुजी की करुणा की परीक्षा करने के लिए सात-सात वर्ष के छह बालक बनाए उन्हें वस्त्रों और आभूषणों से सज्जित कर दिया। छहों बालक एकान्त जंगल में खेलने लगे।

चलते-चलते गुरुजी बालकों के पास पहुँचे। बालक छोटे थे ही और आसपास में कोई सयाना आदमी नहीं था जंगल था।

सभावना नहीं थी कि कोई देख लेगा। अतएव उन बालकों को दे कर गुरुजी का मन बिगड गया। हृदय में लालच उत्पन्न हुई। उन्होंने विचार किया—एक एक बालक के शरीर पर हजारों-लाखों का माल है। मैं घर जा रहा हू। घर पर पहुंच कर भी धन के बिना क्या काम चलेगा। आखिर तो गृहस्थी चलाने के लिए धन चाहिए ही। नरक-स्वर्ग कल्पना हैं और पुण्य-पाप ढकोसला मात्र हैं। अब इस सकल्प में विकल्प मे पडने की आवश्यकता नहीं है। धर्म अधर्म का विचार करना नहीं है। किसी भी उपाय से सम्पत्ति हस्तगत करनी चाहिए। पैसा पास न होगा तो घर वाली भी नहीं अपनाएगी। वहा तो बात-बात मे पैसे की मांग होगी। मिहनत मजूरी करू तो साधुपना छोडने का मझा ही क्या रहा ?

इस प्रकार विचार करके साधुजी ने उन बच्चों से पूछा-अरे बच्चों ! तुम्हारे नाम क्या हैं ?

उनमें से एक ने कहा—मेरा नाम पृथ्वीकाय।

दूसरा—मेरा नाम अव्काय।

तीसरा—मेरा नाम तेजस्काय।

चौथा—मेरा नाम वायुकाय।

पाचवा—मेरा नाम वनस्पतिकाय।

छट्ठा—और मेरा नाम त्रसकाय।

बच्चों ने अपने-अपने जो नाम बतलाए, वह अटपटे थे। साधुजी को यह नाम सुनकर चौंक उठना चाहिए था, किन्तु—

विवेकभ्रष्टानाम् भवति विनिपातः शतमुखः।

अर्थात्–एक बार जो विवेक से च्युत हो जाता है, उसका अधःपतन होता ही चला जाता है।

इस उक्ति के अनुसार गुरुजी इस समय विवेकहीन हो चुके थे। अतएव उन्होंने सोचा–साधुपन पालते-पालते मैंने वर्षों व्यतीत कर दिये, पर कुछ भी लाभ नहीं उठाया, बल्कि घाटे में ही रहे। अगर मैं इन बालकों को मार डालूं तो इनका सारा जेवर मेरे हाथ आ जायगा।। यह सोचकर गुरुजी ने एक-एक बालक को पकड़ा और उनकी गर्दन मरोड़ दी। छहों बालकों को मार कर उनका गहना उतारा और अपने पात्र में भर लिया।

साधुजी गहने लेकर चले तो बहुत प्रसन्न थे। सोच रहे थे कि अब सारा जीवन चैन से कटेगा।

देवता ने अपने गुरु का इतना अधिक पतन हुआ देखा तो उसे बहुत दुःख हुआ। फिर उसने सोचा–इनमें कुछ लोकलज्जा भी शेष रही है या नहीं। इसकी भी परीक्षा कर देखना चाहिए।

देवता ने विक्रियालब्धि के द्वारा एक आर्या बनाई। उसके मुख पर मुंहपत्ती और हाथ में ओघा था। साध्वी का पूरा वेष ज्यों का त्यों था। विशेषता थी तो यही कि उसके अंग अंग पर आभूषण सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार का विचित्र वेष बनाये साध्वी गुरुजी के सामने आई। आकर तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना की। उसे वन्दना करते देख वह जोश में आकर कहने लगे—अरी निर्लज्ज! पापिनी! तू आर्या बनी है और इस प्रकार के गहने पहने है? तुझे तनिक भी लज्जा का अनुभव नहीं हो रहा है। खेद है कि ... को कलंकित कर रही है। गहने पहनने थे तो साध्वी क्यों ...। साध्वी बनी तो फिर गृहिणी के समान यह आभूषण क्यों

पहने है ? आखिर यह अनोखा वेष क्यों बनाया है ? तू घोर पाप कर रही है तेरा आचरण धर्म से विपरीत है।

गुरुजी द्वारा की हुई भर्त्सना को सुनकर साध्वी ने कहा—महाराज, मेरी बात सुनिए। मेरी गुरुनीजी ने जब दीक्षा दी तो मैं छोटी-सी ही थी मैंने कभी गहना नहीं पहना था। अचानक मन में आया कि पहन कर एक बार देख तो लू, कैसे लगते हैं। आज मैं एक श्राविका के यहा गई। उसके गहने देख कर जी ललचा उठा। मैंने उससे कहा—मैंने कभी गहना पहना नहीं है। थोडी देर के लिए तुम दे दो तो जगल मे जाकर पहन लू और मन की मुराद पूरी कर लू।

इस प्रकार सफाई देकर साध्वी फिर बोली मैं इसी लिए यहां आई हू और अभी लौटकर यह गहने वापिस कर दूगी महाराज। आप मुझे निर्लज्जा और पापिनी कहते हैं, परन्तु खास भगवान् महावीर के शिष्य अयवता मुनि ने पानी में पात्री तिराई। उस पर भी भगवान् ने कहा—इन्हें कोई बुरा मत कहना। स्वय भगवान् ने भी उनको उपालभ नहीं दिया मगर आप मुझे इतने कठोर शब्द कह रहे हैं।

आर्याजी फिर बोली—महाराज। मैंने गहने अवश्य पहने हैं, किन्तु गहनों के लिए मानव-हत्या नहीं की है। मै मानती हूँ कि साधु-साध्वी को आभूषण नहीं पहनना चाहिए। पहनना दोष है, लेकिन यह तो बतलाइए कि किसी से मांग कर थोडी देर के लिए आभूषण धारण कर लेने मे अधिक पाप है अथवा गहना के लिए बालकों की गर्दन मरोड देना और फिर सदा के लिए गहने ले लेने में अधिक पाप है। आपने छह बालकों की हत्या की है और आभूषणों से पात्र भर लिया है। आप मानते हैं कि यह घटना किसी को मालूम ही नहीं है।

गुरुजी सोच-विचार में पड़ गए। बड़ी व्याकुलता तो हुई कि इस घटना का पता साध्वी को कैसे लग गया ? परन्तु चुपचाप आगे चल दिये। तब देवता ने विचार किया...गुरुजी अब भी नहीं समझे ! इन्हें दूसरे कोई उपाय करके समझाना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके उसी मार्ग मे कुछ आगे चल कर देवता ने एक सुन्दर नगर का निर्माण किया। कहीं स्त्रियां आ रही है, कहीं पुरुष जा रहे हैं। कहीं श्रावक धार्मिक गीत गाते हुए चले जा रहे हैं। चलते-चलते गुरुजी वहां पहुँचे तो नगर को देखकर चकित हो रहे। सोचने लगे-इधर से कई बार आया और गया हूँ ! पहले यहां कोई नगर नहीं था। अचानक आज यह सुन्दर नगर कहा से आ गया ? सोच-विचार में डूबे हुए वह कुछ आगे बढ़े तो बहुसंख्यक नर-नारियों ने गीत गाते हुए और जयजयकार करते हुए, सामने आकर मुनि का स्वागत किया। मुनि के निकट आने पर सबने 'घणी खमा, घणी खमा' के निनाद से आकाश गुंजा दिया। सब लोग उसके चरणों में गिर–गिर करके 'मत्थएण वंदामि' करने लगे ! फिर किसी ने कहा–पधारिए महाराज, आहार-पानी का समय हो गया है। गुरुदेव, कृपा कीजिए, हम पर करुणा कीजिए। इस नगर में विराज कर हमें ज्ञान का प्रकाश दिखलाइए।

मगर गुरुजी हक्के-बक्के से रह गए। उन्हें सूझ नही पडा कि अब क्या करें और क्या न करें ? फिर उन्होंने सोचा मेरे पात्र में गहने भरे हैं। नगर में जाने से पोल खुल जाने का भय है। अतएव नगर मे न जाकर सीधे आगे बढ़ जाना ही उचित होगा। यह सोच कर वे बोले—भाई, अभी अवसर नहीं है। मैं अभी नगर मे नहीं आऊगा। आज मुझे आहार-पानी भी नहीं लेना है। मैने उपवास किया है। आप लोग आग्रह न कीजिए।

श्रावक लोग बड़े जबर्दस्त थे। उन्होंने कहा—यह नहीं होगा महाराज, आपको हमारा गांव पावन करना ही होगा। आज आपको किसी प्रकार भी आगे नहीं जाने देंगे।

इतने पर भी गुरुजी नहीं माने। तब एक श्रावक ने साहस करके उनकी झोली पकड़ली और खींचना आरंभ किया। खींच तान में गुरुजी के हाथ से एक पल्ला छूट गया और पात्र जो नीचे गिरा तो सारा का सारा जेवर जमीन पर बिखर गया। यह हाल देखकर लोग कहने लगे! अरे, यह साधु नहीं है, चोर है, ठग है, धूर्त्त है।

हो हल्ला मच गया। आसपास के और भी बहुत से लोग वहां आकर जमा हो गये। एक ने कहा—अरे, यह तो मेरे लड़के के जेवर हैं। दूसरा बोला—और यह मेरे लड़के के गहने हैं! इस प्रकार कइयों ने अपने २ गहने पहचान लिए।

साधुजी चकरा गये। उनके चेहरे पर लज्जा और दीनता दिखाई देने लगी। आंखें नीची हो गईं। वह एक भी शब्द का उच्चारण न कर सके। चुपचाप ठगे से खड़े रह गए।

देवता ने विचार किया—अब इनकी तबीयत ठिकाने आ गई है।

यह सोचकर देवता ने सारी माया हटाली। वह छोटे चेले के रूप में उनके समक्ष उपस्थित हुआ। उसे देखकर गुरुजी ने पूछा—अरे, कहां से आया चेला?

चेला बोला—गुरुजी, देवलोक से।

गुरु—अगर तू पहले आ जाता तो मुझे इतना दोष न लगता! मैं संयम से और श्रद्धा से भ्रष्ट न होता। मेरी तो जीवन

भर की पूंजी ही स्वाहा हो गई। मैं न इधर का रहा न उधर का मेरा सम्यक्त्व भी चला गया और सम्यक्त्व के जाने पर सयम तो रहता ही कैसे ? क्योंकि—

मूलं नास्ति कुतः शाखा ?

अर्थात्—जड के अभाव में वृक्ष की शाखाए कैसे ठहर सकती हैं। संयम, नियम, तप आदि तो धर्म रूपी वृक्ष की शाखाए हैं। इन सब का मूल सम्यक्त्व है। मूल उखड़ा तो सभी कुछ उखड़ गया।

चेले ने कहा—मैने पहले पहल आपको नाटक दिखलाया। फिर छह लडके बनाये। तब भी आप न समझे तो साध्वी बनाई। फिर भी आप सन्मार्ग पर न आए तो अन्त में नगर का निर्माण किया। इतने पर भी आप को ज्ञान नहीं हुआ।

यह सुनकर गुरुजी ने कहा—शिष्य। यद्यपि तुम विलम्ब से चेते और मेरे पास आये हो, फिर भी मै तुम्हारा आभार मानता हू। ठीक समय पर तुमने मेरी रक्षा की। मेरी आत्मा को अधिक पतित होने से बचा लिया। मै अपनी श्रद्धा और सयम में लगे दोषों के लिए प्रायश्चित लूगा और आत्मशुद्धि करूगा। अब जीवनपर्यन्त कभी संयम का परित्याग करने का विचार नहीं करूंगा।

चेले ने कहा—विलम्ब के लिए क्षमा चाहता हूं। आपकी कृपा से ही मुझे देवलोक के सुख प्राप्त हो सके हैं। मगर क्या करता ? आपको नाटक देखते देखते छह महीने बीत गये और मालूम ही न हुआ। तो मुझे स्वर्ग के नाटक देखने में यदि हजारों वर्ष बीत जाए और समय का पता ही न चले तो क्या आश्चर्य। लिहाज से तो मैने जल्दी ही की है।

आषाढ भूति की श्रद्धा पुन. शुद्ध और प्रगाढ़ हो गई। उन्होने फिर तपस्या की और कर्म खपा कर मोक्ष प्राप्त किया।

आशय यही है कि समस्त धर्मक्रियाओ का प्राण श्रद्धा है। वीतराग भगवान् के वचनो पर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए। इसके बिना जीव का कल्याण कदापि नही हो सकता। कहा है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

—तत्त्वार्थ, १.

अर्थात् 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र, तीनो मिलकर मोक्ष का मार्ग हैं।

यहा ज्ञान और चारित्र से पहले सम्यग्दर्शन को इसीलिए स्थान दिया गया है कि उसके अभाव मे ज्ञान और चारित्र टिक नही सकते। आषाढ भूति का श्रद्धा बिगडी तो ज्ञान और चारित्र भी बिगडते देरी नही लगी। अतएव भाइयो! अपने श्रद्धान को सुदृढ बनाओगे तो तुम्हारा परम कल्याण होगा और आनन्द ही आनन्द हो जायगा।

६-२-४९ |
भीम |

युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वे,
जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला।
अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,
धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः ॥

स्व० दिवाकरजी म० (चौथमलजी म०) सा० के व्याख्यानो का प्रकाशन सुनकर प्रसन्नता हुई। दिवाकरजी म० बडे प्रभाव शाली व यशोनाम प्राप्त महापुरुष थे। जहाँ भी वे पधारते उनके यशोनाम के प्रभाव से अपार जन-मेदिनी उमड जाती थी। उनके उपदेशो का प्रभाव जैन तो क्या अजैन व मुस्लिम जनता पर भी गहरा था। ऐसे महापुरुषो के वचनामृतो का चयन भविष्य मे उपयोगी सिद्ध होगा। मै आशा रखता हूँ कि इस प्रकाशन से जन मानस उज्ज्वल बनेगा यही एक मात्र भावना।

पण्डित रत्न वयोवृद्ध मन्त्री—

मुनि श्री पन्नालालजी महाराज

विषयानुक्रमणिका

जगत्वल्लभ जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित

मुनि श्री चौथमलजी महाराज

जन्म कार्तिक शुक्ला १३ सं० १९३४ रविवार

दीक्षा फाल्गुन शुक्ला ५ सं० १९५२ रविवार

स्वर्गवास मिगसर शुक्ला ९ सं० २००७ रविवार

समान दावानल सुलग रहा हो। उसमे से ऊँची-ऊँची ज्वालाएँ निकल रही हो, चिनगारियाँ उड रही हो। ऐसा जान पडता हो कि यह आग बढती-वढती अखिल लोक को भस्म कर देगी! ऐसी स्थिति मे हे भगवान् आदिनाथ! आपका नामकीर्त्तन करने सामने से आती हुई वह आग तत्काल शान्त हो जाती है।

भाइयो! आदिनाथ की स्तुति की आचार्य महाराज ने जो महिमा बतलाई है, उसे सुनकर आपको आश्चर्य हो सकता है। आप सोचते होगे कि भयानक दावानल भगवान् के नामकीर्त्तन से किस प्रकार शान्त हो जाता है? परन्तु वास्तव मे इसमे आश्चर्यचकित होने की कोई बात नही है। इस महिमा पर अविश्वास करने का तो कोई कारण नही है। भगवत्-नाम का प्रभाव वाणी द्वारा अगोचर है, कल्पनाशक्ति से परे है और हमारी बुद्धि उसे पूरी तरह समझ नही सकती।

भगवान् के नाम के प्रभाव को समझने के लिए मौलिक तात्त्विक चिन्तन की आवश्यकता है। चित्त को विषय-वासनाओ से पृथक् करके प्रभुमय बनाने की आवश्यकता है चित्त जब प्रभुमय वन जाता है, भगवत्स्वरूप के साथ एकाकार हो जाता है, परमात्मा के रग मे पूरी तरह रग जाता है, तब दृष्टि मे एक ऐसी निर्मलता त्पन्न होती है जैसी पहले कभी नही हुई थी। उस निर्मल और आन्तरिक दृष्टि मे अपूर्व प्रतिभास होता है। उसी से तत्त्व का यथार्थ बोध होता है और परमात्मा की महिमा समझ मे आती है।

इस सबध मे एक बात और स्मरण रखनी चाहिए। यह जगत् जड और चेतन मय है यो तो ससार मे असख्य-अनन्त पदार्थ प्रतीति मे आते हैं, परन्तु उनमे मौलिक दो ही है। शेष सब का समावेश दो मे ही हो जाता है। यद्यपि दोनो जड और चेतन

की सत्ता स्वतत्र है, किसी की सत्ता किसी पर निर्भर नही है, तथापि दोनो ही एक दूसरे के प्रभाव से प्रभावित होते है। जड का चेतन पर प्रभाव पडता है और चेतन का जड पर।

साधारणतया जड का चेतना पर पडने वाला प्रभाव तो हमारी समझ मे जल्दी आ जाता है, परन्तु चेतना का जड पदार्थों पर जो प्रभाव पडता है, उसको समझने मे कठनाई होती है। फिर भी ध्यान दिया जाय तो उसे समझना असभव नही है। एक स्थूल उदाहरण लीजिए। मनुष्य जो भोजन करता है, उसमे नाना प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं पेट मे गया हुआ आहार आमाशय मे पहुँचता है। वहाँ उसके दो भाग हो जाते हैं—खलभाग और रसभाग। खलभाग वह भाग है जो बेकार होता है। वह शरीर मे से विभिन्न मार्गों द्वारा बाहर निकल जाता है। रसभाग से रक्त बनता है, रक्त से मास, मास से मेद, मेद से हड्डिया, हड्डियो से मज्जा और मज्जा से शुक्र धातु बनती है। यह सब उसी भोजन के रूपान्तर हैं, जिन्हे मनुष्य खाता है।

अगर किसी मुर्दे के मुँह मे भोजन डाल दिया जाय तो क्या होगा। पहले तो वह स्वत भीतर जायगा ही नही। अगर आप जबर्दस्ती करके किसी प्रकार ठूस देगे तो उसका खल-रस रुप परिणमन होना असभव है। न उसका रस बनेगा, न रक्त आदि धातुएँ ही बनेगी।

तो जीवित शरीर मे यह सब परिणाम न होता है और मृतक शरीर मे परिणमन नही होता। इसका निष्कर्ष यही निकला कि जीव ही भोजन को नाना अवस्थाओ मे परिणत करता है। यही जीव के द्वारा अजीव पर पडने वाला प्रभाव है। इस स्थूल उदाहरण से हम समझ सकते है कि जैसे अजीव अपने असर से जीव

को प्रभादित करता है उसी प्रकार जीव मे भी अपने असर से अजीव को प्रभावित करने का गुण है ।

रह गई प्रभावित करने की मात्रा, अर्थात् जीव किस हद तक जड को प्रभावित कर सकता है, यह बात जीव के सामर्थ्य पर निर्भर है । जीव की शक्तियो का जितना ही विकास होगा, उतनी ही अधिक प्रभावक शक्ति उसमे होगी ।

जिस मनुष्य की इच्छाशक्ति तीव्र है, जिसका सकल्पबल उग्र है, वह अधिक परिवर्त्तन कर सकता है । यहाँ तक कि अपनी सकल्प शक्ति के द्वारा भी वह जड पदार्थों को प्रभावित कर सकता है ।

भक्त जीव का सकल्पबल जब प्रबल होता है तो परमात्मा का नाम भी अधिक प्रभावशाली बन जाता है । उसके माहात्म्य से अग्नि का शान्त हो जाना कोई कठिन बात नही है ।

भगवान् के स्मरण से अग्नि का शान्त हो जाना कोई अनोखी बात नही है । भारतीय साहित्य मे ऐसी अनेक घटनाओ का उल्लेख है । सती सीता की कथा तो अत्यन्त प्रसिद्ध ही है । सीता ने परमात्मा का स्मरण करके आग के कुड मे प्रवेश किया । दर्शको के दिल दहल उठे । रामचन्द्र का हृदय बैठ गया ! ...ाँय धाँय करके आग जल रही थी । उसकी ज्वालाएँ आकाश को स्पर्श कर रही थी । आग की ओर देखना भी कठिन था । मगर सीता अनाकुल भाव से भगवान् का नामस्मरण करके उस धधकते कुड मे कूद पडी ।

सारा वायुमण्डल बदल गया । दर्शको के हृदय मे उल्लास की लहरे उठने लगी । लोग पुकार उठे—धन्य, सीते, धन्य हो ! पतिव्रता की देवी,शील की साकार प्रतिमा, तुम्हारी जय हो, जय हो!

अग्नि का वह भयानक कुंड लहराता हुआ सरोवर बन गया। उसमे एक कमल और कमल पर सिंहासन बना दिखाई दिया। सती सीता उस सिंहासन पर गभीर और शान्त भाव से आसीन थी।

भाइयो ! जरा विचार करो। यह परिवर्त्तन अकस्मात् कैसे हो गया ? यह प्रभु के नामस्मरण का ही प्रभाव है।

अमरकुमार की कथा भी इसी प्रकार की है। अमरकुमार को सोने की मोहरो के लोभ मे आकर उसके ब्राह्मण माता पिता ने, वलिदान के निमित्त राजा को बेच दिया। वह भक्त बालक था। पुरोहितो ने अपने मत्र पढे और बालक को आग की लपलपाती ज्वालाओ मे झोंक दिया। बालक ने णमोकार मत्र का ध्यान किया और परमात्मा मे अपना मन स्थिर किया। परिणाम यह निकला कि उसका आग मे गिरना था कि उसी समय आग शान्त हो गई और ध्यानस्थ बालक सही-सलामत बाहर आ गया।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हमारे यहाँ शास्त्रो मे उल्लिखित है। इन सब के प्रकाश मे आचार्य के इस कथन को पढा जायगा तो स्पष्ट होगा कि उसमे लेश मात्र भी अत्युक्ति नही है।

जिनके नामकीर्त्तन से दावानल भी शान्त हो जाता है, ऐसे भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! इस बाहर की अग्नि से भी अधिक जबर्दस्त अग्नि तृष्णा की है। स्थूल अग्नि से तो स्थूल पदार्थ ही जलते हैं, परन्तु तृष्णा की आग मे आत्मा भी जलती है। तृष्णा की आग व्यापक है। सारा ससार इस आग मे जल रहा है। भगवान् के नामकीर्त्तन से वह आग भी शान्त हो जाती है।

एक आदमी विचार करता है—मेरे पास एक हजार रुपया हो जाय तो मैं सुखी हो जाऊँ। लेकिन जब उसके पास हजार की सम्पत्ति हो जाती है तब उसकी तृष्णा और बढ जाती है। वह सोचने लगता है—मेरे पास दस हजार रुपये हो जाएँ तो मैं सन्तोष धारण कर लूँगा। लेकिन इतने की पूर्त्ति हो जाने पर भी उसकी इच्छा तृप्त नही होती। वह लखपति बनना चाहता है। भाग्ययोग से लखपति बन गया तो करोडपति बनने की अभिलाषा करने लगता है। इस प्रकार तृष्णा बढती ही जाती है। उसका अन्त कही नही दिखाई देता। कहा है—

असुरसुरवराणां यो न भोगेषु तृप्तः,
कथमपि मनुजानां तस्य भोगेषु तृप्तिः।
जलनिधिजलपाने यो न जातो वितृष्ण–
स्तृणशिखरगताम्भः पानतः किं स तृप्येत् ॥

अनादिकाल से नाना योनियो मे भ्रमण करता-करता यह जीव अनेक बार असुरेन्द्र भी हो चुका है और सुरेन्द्र भी हो चुका है। मगर उस पर्याय के भोग भोग चुकने पर भी तृप्त नही हुआ। जब देवलोक के दिव्य भोगोपभोग भी इसे तृप्ति न प्रदान कर सके तो मनुष्य के भोगो से उसे कैसे तृप्ति हो सकती है? देवलोक के भोगोपभोगो के सामने मनुष्य भव के भोग किस गणना मे है? ... । महासागर की तुलना मे एक बूंद की जो स्थिति है, वही स्वर्ग के भोगोपभोगो के सामने मानवीय भोगो की है।

उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार कहते है—जो सागर का जल पी करके भी तृप्त नही हो सकता, वह तिनके की नौक पर ठहरे हुए पानी के एक बूंद को पीकर क्या तृप्ति का अनुभव कर सकता है? कदापि नही।

तात्पर्य यह है कि तृष्णा की आग किसी भी स्थिति मे शान्त नही होती। जैसे जलती हुई आग को बुझाने के लिए ईधन डालना विपरीत प्रयास है, ऐसा करने से आग बुझती नही, उलटी बढती है इसी प्रकार भोगोपभोगो की सामग्री जुटाने से तृष्णा मिटती नही, बढती है।

तृष्णा की आग मे मनुष्य के सभी सद्गुण जल कर भस्म हो जाते हैं। तृष्णा के वशीभूत होकर मनुष्य किसी भी पाप का आचरण करने से नही हिचकता। सच पूछिये तो तृष्णा सब पापो का मूल है। कहा है—

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा, नित्योद्वेगकरी स्मृता।
अधर्मबहुला चैव, घोरा पापानुबन्धिनी ॥

अर्थात्—यह तृष्णा अत्यन्त पापिनी है। रात-दिन मनुष्य के हृदय मे व्याकुलता उत्पन्न करती रहती है। अधर्म की जननी है, बडी ही भयानक और पाप कर्मों का बन्ध कराने वाली है।

हृदय मे जब तक तृष्णा विद्यमान रहती है, मनुष्य कभी निराकुलता, और शान्ति का अनुभव नही कर सकता। तृष्णा बडे से बडे सम्पत्तिशाली को भी दरिद्र के समान दुखी बनाती है। कहा भी है—

को वा दरिद्रो हि ? विशालतृष्णः।

प्रश्न किया गया—दुनिया मे दरिद्र किसे समझा जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि सम्पत्ति के अभाव से कोई दरिद्र नही होता, किन्तु जिसकी तृष्णा बढी हुई है, वही वास्तव मे दरिद्र है, भले ही वह करोडपति ही क्यो न हो ! आशय यह है कि ... ने विपुल सम्पत्ति का स्वामी होकर भी जो मनुष्य तृ...

हो रहा है, लालच के फदे मे फँसा है और रात दिन सम्पदा के लिए दौडधूप और हाय-हाय किया करता है, उसकी सम्पत्ति किसी प्रयोजन की नही। उसमे और दरिद्र मे कुछ भी अतर नही है। इसके विरुद्ध, जिसने तृष्णा पर विजय प्राप्त कर ली है और जो सन्तोष का अमृत पीकर नित्य तृप्त रहते है, वे निर्धन होने पर भी सुखी हैं, समृद्ध है। वे किसी के गुलाम नही, दुनिया ही उनकी गुलाम है। कहा है—

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी, तेषां दासायते लोकः॥

अर्थात्—जो तृष्णा के दास है, वे सारे ससार के दास हैं और आशा को जिन्होने दासी बना लिया है, उन्होने सारे ससार को अपना दास बना लिया है !

अरे मानव ! तू अखिल लोक के वैभव को अपनी तिजोरी मे कैद करके क्यो रखना चाहता है ? वह तेरे क्या काम आएगा ? भै पेट भरने के लिए चार रोटियाँ और सोने-बैठने को चार हाथ मि ही तो चाहिए ? इससे अधिक का क्या करेगा ? साथ तो छ ले नही जा सकता। फिर क्यो दिन-रात आकुल-व्याकुल बना रहता है ? तू शान्तचित्त होकर विचार कर कि तेरे पास जो साधनसामग्री है, वह तेरे लिए पर्याप्त है अथवा नही ? अगर पर्याप्त है तो सन्तोष धारण कर। सन्तोष ही सबसे बडा सुख है।

सन्तोषमूलं हि सुखं, दुःखमूलं विपर्ययः।

सुख का मूल सन्तोष है और दुःख का मूल असन्तोष है।

तू चाहता है मैं अधिक सम्पत्तिशाली होकर सुखी बन

जाऊँगा। परन्तु यह तो देख ले कि जिनके पास अधिक सम्पत्ति है, वे क्या सुखी है ? नही। वे भी तो सुखी नही हैं। वे भी तेरी ही तरह तृष्णा की आग मे जल रहे हैं। ऐसी अवस्था मे तू कैसे सुखी हो जायगा ? सुख के असली साधन तो सन्तोष ही है। अतएव हे भव्य ! अगर तू वास्तव मे ही सुखी बनना चाहता है तो सन्तोष धारण कर।

भाइयो ! जैसे आग को शान्त करने के लिये पानी अपेक्षित है, उसी प्रकार तृष्णा की आग को बुझाने के लिए सन्तोष धारण करने की आवश्यकता है। भगवान् ने फर्माया है कि परिग्रह को कम करोगे और अपनी इच्छा पर नियत्रण करोगे तभी यह आग शान्त हो सकती है। इच्छाओ की पूर्ति करने का प्रयास करोगे तो यह आग शान्त होने के बदले बढती ही चली जायगी।

तृष्णा की अग्नि को शान्त करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। वास्तविक स्थिति को समझे बिना कोई मनुष्य तृष्णा से मुक्त नही हो पाता। ज्ञान आत्मा का धर्म है। आत्मा को ही ज्ञान होता है। श्रीठाणागसूत्र मे भगवान् ने आत्मा को सामान्य की अपेक्षा एक और विशेष की अपेक्षा अनेक कहा है। मगर यह न समझिए कि ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही सिद्धि प्राप्त हो जायगी। नही, प्राप्त ज्ञान के अनुसार क्रिया करने से सिद्धिलाभ होता है। कहा है —

दोहि ठाणेहि सपन्ने अणगारे अणाइय अणवदग्गं दीहमद्धं
चाउरंतसंसारकतारं वीइवएज्जा।
तंजहा विज्जाए चेव, चरणेण चेव।
—श्रीठाणांगसूत्र, २ ठाणा.

भगवान् फर्माते हैं-हे गौतम ! दो स्थानो (गुणो) से सम्पन्न

अनगार अनादि, अनन्त और दीर्घ मार्ग वाले, चतुर्गति रूप ससार अटवी को पार कर सकता है-ज्ञान से और चारित्र से

भगवान् ने दो प्रकार का धर्म फरमाया है—अगारि धर्म और अनगार धर्म। जिसके घर है उसे अगारी अथवा गृहस्थ कहते हैं और जिसके घर नही है, जो घर का त्याग कर चुके हैं, वे अनगार कहलाते हैं। गृहस्थ का धर्म अलग है और अनगार अर्थात् साधु का धर्म अलग है। दोनो के धर्म मे जो भिन्नता है, वह मात्र की भिन्नता है। असल मे तो जो अहिंसा और सत्य आदि साधु के लिये धर्म हैं, वही गृहस्थ के लिए भी है, परन्तु दोनो की कोटियाँ भिन्न-भिन्न है। साधु पूर्ण रूप से जिस धर्म का पालन करते हैं, उसी को गृहस्थ अपूर्ण रूप से, अपनी शक्ति और सुविधा के अनुसार पालते हैं। गृहस्थ जितने अश मे धर्म का पालन करते है, उतना अश ही धर्म है।

जिसके घर है, वह क्या करता है? जो वस्तु मिल जाय उसी को घर मे लाकर रख लेता है। छाने मिल गये तो छाने ही घर मे रख लिये और लकडी, पत्थर, लोहा, गोबर आदि मिल गया तो वह उठा लाया। वह जानता है कि किसी वक्त यह पत्थर भी टेका लेने के काम आ जायगा। यह लोढी किसी समय मसाला पीसने के काम आ जाएगी। यहाँ तक कि वह फटे-पुराने कपडे भी इकट्ठा करने से नही चूकता। रास्ते मे किसी की रकम गिर जाय तो उसे भी उठा लेता है। वह ऐसा क्यो करता है? क्यो कि उसके घर हो गया है। उसने अपनी तृष्णा को जीत नही पाया है। अत एव प्रत्येक वस्तु उठा कर वह घर मे ले जाता है।

इसके विपरीत, जो अनगार है, जिनके घर नही है, वे यह सोचते है कि हम ले जाकर कहाँ रक्खेगे? प्रथम तो उन्होने तृष्णा